अर्थशास्त्र

वा

भारतवर्ष की आर्थिक दशा के सुधार के उपाय

लेखक तथा प्रकाशक

प्रो० बालकृष्ण:, एम० ए०,

एफ़. आर. एस. एस., एफ़. आर. ई. एस.,

एफ़. आर. पी. एस., आदि ।

अर्थशास्त्र महोपाध्याय, गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रथम भाग

धन की उत्पत्ति तथा वृद्धि.

—o—

25799

पञ्जाब प्रिंटिंग वर्क्स लाहौर.

सर्वाधिकार सुरक्षित

१९७१ वि०

प्रथमावृत्ति] १९१४ ई० मूल्य १॥)

ओ३म्

प्रस्तावना

मेरे विचार में भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति और स्वतन्त्रता का आधार सब से पहिले व्यवसाय की वृद्धि पर है, फिर शासन के सुधार पर। इस कारण धन कमाने में भारतीयों के सब प्रकार के दोष दिखाते हुए, आर्थिक सुधार की सैंकड़ों विधियां इस पुस्तक में पाठक के सामने रखी हैं। नव युवकों से मेरी प्रार्थना है कि नीति के मार्ग को छोड़ कर खेती, व्यापार, शिल्प, व्यवसाय, विद्या की उन्नति में अपने सद् जीवनों को लगावें ताकि उन को धन की प्राप्ति हो और अपने भाइयों की भी सच्ची सेवा कर सकें। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की पवित्र वेदी पर अपने प्राणों को अकाल न्यौछावर करना उचित नहीं।

इस पुस्तक में अर्थशास्त्र के एक अंग की ही व्याख्या की है। आशा थी कि धन--व्यय (कमाये हुए धन को किन नियमों के अनुसार खर्च करना चाहिये ?) की व्याख्या भी इस पुस्तक में आ जावेगी किन्तु धनोत्पत्ति के विषय का काफ़ी विस्तार हो गया है-इस लिये धन-व्यय का वर्णन अवसर मिलने पर दूसरे

भाग में पाठकों की भेंट किया जावेगा। भारतवर्ष की आर्थिक अवस्थाओं के बारे में पूर्ण ज्ञान देने के लिये सैंकड़ों ब्यौरे दिये हैं और चित्रों, अङ्कों, प्रश्नों, पतले और मोटे छापों, सारांश, निर्देश और सरल भाषा की सहायता से विषय को सुगम कर दिया है। थोड़ा सा ध्यान देने पर साधारण नर नारी को भी अर्थशास्त्र के अद्भुत् विषय का ज्ञान हो जावेगा, वे भारत की दशा सुधार सकेंगे और धर्म पूर्वक धन कमाते हुए माला माल हो कर सुखी होंगे।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के लिखने में मुझ से अनेक त्रुटियां हुई होंगी क्योंकि हिन्दी का विद्वान् न होते हुए भी मैं ने इस पुस्तक के लिखने का साहस किया है। आशा है कि सज्जन महाशय त्रुटियों को क्षमा करते हुए इस के विचारों को स्वहृदयों में स्थान देंगे।

अन्त में मैं उन सब महाशयों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन की पुस्तकों और समाचार पत्रों की सहायता से मैं ने यह पुस्तक रची है।

गुरुकुल कांगड़ी।

२० वैशाख, १९७०,

बालकृष्ण

व्यौरों की सूची

विषय	पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय		पृष्ठ

विषय

प्रथम खण्ड.
प्रारम्भिक विचार

अध्याय १।

अर्थशास्त्र के नाम तथा लक्षण

भारतवर्ष में अर्थ शास्त्र की विद्यमानता

भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों से यह बात गुप्त नहीं कि प्राचीन आर्यों ने सर्व प्रकार की विद्याओं में अद्भुत उन्नति प्राप्त की थी[१]। अत एव अर्थ शास्त्र से वे अनभिज्ञ न थे। भारत में इस शास्त्रकी विद्यमानता के कतिपय प्रमाण यह हैं:–

---

१. इस विषय पर लेखक का भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास और प्रो० रामदेव कृत भारतवर्ष का इतिहास बहुउपयोगी होंगे।

(क) चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा अर्थवेद, अति प्राचीन काल में बनाए गए थे, जिन में अर्थवेद का नाम स्पष्टतः आया है।

(ख) विष्णुपुराण में लिखा है कि १८ प्रधान विद्याएं भारत में विद्यमान थीं और सर्वाशिक्षित समाज उन का अनुशीलन किया करता था। उन के नाम यह हैः—ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण, मीमांसा न्याय, धर्म शास्त्र, पुराण (इतिहास) आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा अर्थ शास्त्र।

(ग) अमर कोश में अर्थ शास्त्र और दण्डनीति शास्त्र में कोई भेद नहीं किया गया और चाणक्य आदि नीतिशास्त्रों को भी कहीं २ अर्थशास्त्र कह दिया है। किन्तु निम्नलिखित लक्षण में अर्थ शास्त्र का शुद्ध रूप आर्यों ने समझा प्रतीत होता है।

(घ) 'अर्थ शास्त्रम्—अर्थस्य भूमिधनादेः ज्ञापकं शास्त्रम्' अर्थ अर्थात् भूमि धन आदि के विषय में ज्ञान कराने वाला शास्त्र अर्थ शास्त्र है। भूमि की उपजाऊ शक्ति कैसे बढ़ाई जा सकती है और जातीय तथा वैयक्तिक धन की उत्पत्ति, वृद्धि, विनिमय, विभाग तथा भोग कैसे करना चाहिये—इन विषयों की अर्थ शास्त्र में प्राचीन आर्य लोग व्याख्या किया करते थे।

(ङ) शुक्रनीति (जो कि महाभारत काल से भी अतिप्राचीन प्रतीत होती है) में कहीं २ अर्थशास्त्र की बातों की व्याख्या की है। इसी प्रकार चाणक्य अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ तो अब तक उपलब्ध होता है। यह चाणक्य भारत के महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त (३२१–२९७ ई० पूर्व) का महा मंत्री था। वह राज्य नीति में बड़ा निपुण था। उसे भारत वर्ष का मैकियावली समझना चाहिये। उन दोनों पुस्तकों से हम हस्तगत अर्थशास्त्र में प्रमाण देंगे।

इस समय आर्य्य-अर्थशास्त्र की अन्य सर्व पुस्तकों का लोप हो गया है। उस कारण उन से सहायता मिलनी दुर्लभ है।

आज कल अर्थशास्त्र ने पाश्चिम में पूर्ण उन्नति प्राप्त की है। अतः हमें यह देखना आवश्यक होगा कि पाश्चात्य विद्वान् इस शास्त्र के क्या २ नाम रखते हैं और उन विविध नामों में से कौन सा नाम उत्तम है? तथा अर्थशास्त्र का क्या लक्षण किया जाता है?

२-अर्थ शास्त्र के नाम ॥

1.	Social Economics	सामाजिक अर्थ शास्त्र
2.	Civil ,,	माली विज्ञान
3.	Public ,,	सामाजिक विद्या
4.	State ,,	राष्ट्रीय अर्थ शास्त्र
5.	National ,,	जातीय अर्थ शास्त्र
6.	Industrial,,	व्यवसायिक अर्थ शास्त्र
7.	Chrematistics	धन शास्त्र
8.	Chrysology	सुवर्ण शास्त्र
9.	Plutonomy	कुवेर की विद्या
10.	Plutology	कुवेर की विद्या
11.	Ergonomy	श्रम शास्त्र
12.	Catallactics	विनिमय की विद्या
13.	Political Economy	राष्ट्र की मितव्ययता का शास्त्र
14.	Economics	अर्थ शास्त्र

३—सामाजिक अर्थ शास्त्र—फ्रांस तथा इटली के कतिपय लेखक अर्थ शास्त्र का उक्त नाम रखते हैं क्योंकि वे अर्थ शास्त्र को (सामाजिक) शास्त्र Sociology से स्वतन्त्र करना चाहते हैं कान्त तथा इनग्राम महाशयों का मत है कि अर्थशास्त्र की

स्वतन्त्र हस्ति नहीं, उसे सामाजिक शास्त्र का एक अंग समझना चाहिये, (बल्कि) उसी शास्त्र में अर्थ शास्त्र लवलीन हो जाना चाहिये। अतः ऐसे शास्त्रज्ञों के विरुद्ध अर्थ शास्त्र को सामाजिक अर्थशास्त्र कहने से उस की स्वतन्त्रता प्रकट होती है।

(ख) इस नाम से यह दिखाना भी अभीष्ट है कि अर्थ-शास्त्र सामाजिक विद्या है न कि वैयक्तिक, आत्मिक, राष्ट्रिक, ऐतिहासिक व प्राकृतिक विद्या है।

किन्तु 'अर्थ शास्त्र' के पूर्व 'सामाजिक' का विशेषण (सिफ़त) लगाना ऐसा ही है जैसा रसायन या ज्योतिष के पूर्व प्राकृतिक शब्द का प्रयोग करना। जैसे प्राकृतिक शब्द की वहां आवश्यकता नहीं वैसे ही सामाजिक शब्द की अर्थ शास्त्र के पूर्व आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह सामाजिक विद्या तो है ही। अतः Economics 'अर्थशास्त्र' नाम उचित है॥

(४) राष्ट्रीय अर्थशास्त्र—इस में सन्देह नहीं कि अर्थ शास्त्र का सम्बन्ध राष्ट्र के साथ है, यथा—

(i) राज्य की आय के कौन २ साधन हैं?

(ii) करों की कौन सी रीति न्याय युक्त है?

(iii) राष्ट्र मितव्यय किस प्रकार कर सकता है?

(iv) राज्य को व्यापार व व्यवसाय करना चाहिये व न ?

(v) राष्ट्र को एकाधिकार से पदार्थ उत्पन्न करने चाहियें या नहीं ?

(vi) राष्ट्र जातीय व्यापार व व्यवसाय में किसी प्रकार का हस्ताच्येप करे वा न ?

(vii) व्यक्तियों तथा परिवारों का राष्ट्र के साथ अर्थ सम्बन्धी बातों में क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

(viii) प्रजा के व्यय को बाधित करने का अधिकार राज्य को है वा नहीं ।

(ix) शान्ति तथा राज्य रक्षा के क्या लाभ होते हैं ?

(x) युद्धों की आर्थिक हानियां क्या हैं ?

(xi) निज की जायदाद, दायभाग (inheritance) तथा वसीयत (bequest) के कौन से नियम अर्थ शास्त्र के विचारानुसार उत्तम हैं ?

(xii) बाधित व अबाधित व्यापार की लाभ व हानियां क्या हैं ?

(xiii) कङ्गालों के नियम, बीमे की रीति, दिवाले के नियम —इसी प्रकार सर्व अन्य राज नियम

जिन का सम्बन्ध धन की उत्पत्ति, विभाग, विनिमय तथा व्यय के साथ है—उन के प्रभावों को अर्थशास्त्र देखता है ।

(xiv) राष्ट्र की शासन शैली तथा शुद्ध राज्य का धन की उत्पत्ति तथा अर्थ शास्त्र के सिद्धान्तों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(xv) साथ ही फ़ौजदारी नियमों का भी अर्थ शास्त्र से गाढ़ा सम्बन्ध है । इनके संशोधन कराने में इस शास्त्र ने महती सहायता दी है ।

(xvi) सूद की मात्रा राज की ओर से निश्चित होनी चाहिये व नहीं ?

(xvii) पट्टीदारी-टैन्योर, रहन, कम्पनियों के निर्माण, मुद्रा, नोट, बंक, पेटैंट, कापी राइट, यान, तार, डाकखाने, जल और प्रकाश देने वाली कम्पनियों आदि के नियम कैसे होने चाहिए ? यह तथा अन्य नाना प्रकार के राष्ट्रिक प्रश्नों का ठीक २ उत्तर अर्थ शास्त्र ही देता है—इस कारण कई सज्जनों ने इसे माली विज्ञान(Civil,

Public) सामाजिक विद्या तथा राष्ट्रीय अर्थशास्त्र State Economics के नाम दिये हैं।

५—किन्तु यह संकुचित नाम हैं क्योंकि अर्थशास्त्र समाज में रहने वाले मनुष्य के आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन सम्पूर्ण रीति से करता है—केवल समाज में रहने वाले मनुष्य के जो आर्थिक सम्बन्ध राष्ट्र के साथ हैं, जैसे उक्त १७ शीर्षकों में बताए गये हैं—इन्हीं की व्याख्या नहीं करता। धन के विभाग तथा विनिमय के नियमों का आर्थिक सम्बन्ध राष्ट्र के साथ नहीं। इसी प्रकार व्यय में ऐसे नियमों की अर्थ शास्त्र आलोचना करता है जो राष्ट्र से सम्बन्ध नहीं रखते। सत्य तो यह है कि अर्थ शास्त्र के विज्ञान का राष्ट्र से कोई गूढ़ सम्बन्ध नहीं—व्यवहारिक अर्थशास्त्र में राष्ट्र का सम्बन्ध आता है—इस कारण उक्त तीन नाम अनुचित हैं क्योंकि वह संकुचित हैं।

६—जातीय अर्थ शास्त्र—गृहशिक्षा (Domestic Economy) किन्तु विशेषतया सार्वभौम अर्थशास्त्र से विभक्त करने के लिये अर्थ शास्त्र को जातीय अर्थ शास्त्र कहा जाता है। जर्मनी वासी फ्रैडरिक लिस्ट तथा आङ्गल क्रोज़ियर इस नाम के पक्षपाती हैं क्योंकि उनके विचार में अर्थ शास्त्र का उद्देश जाति २ की उन्नति कराने का है, यह मार्ग भिन्न २ जातियों तथा

राष्ट्रों के लिये–भारत, चीन, जापान, इंगलैण्ड आदि के लिये भिन्न २ समयों में भिन्न होते हैं–अतः ऐसे सार्वभौम अर्थ शास्त्र से इसे विभक्त करना चाहिये, जो जातियों की अवस्थाओं का विचार न करके केवल सर्व साधारण सार्वभौमिक उन्नति बताने वाला शास्त्र है

देखिये ! लिस्ट महाशय ने उन दो अर्थ शास्त्रों के लक्षण यूं किये हैं :—

जातीय अर्थ शास्त्र—यह विद्या उन कारणों का निरीक्षण करती है जिन से कोई दत्त जाति (संसार की तत्कालिक अवस्थाओं में) कृषि, व्यापार तथा व्यवसाय द्वारा समृद्धि, सभ्यता तथा शक्ति प्राप्त कर सके।

सार्वभौम अर्थ शास्त्र–यह विद्या उन साधनों का अवलोकन करती है जिन के द्वारा सर्व मानव जाति समृद्धि प्राप्त कर सके. इस में भिन्न २ जातियों की उन्नति के विशेष साधनों को नहीं देखा जाता।

यह अवश्य मानना चाहियें कि एक जाति के हिता तथा सर्व मानव जाति के हितों में भेद हो सकता है क्योंकि सर्व जातियां सभ्यता व समृद्धि के एक तल पर नहीं—

इस कारण निम्न लिखित मोटी बातों में जाति का हित विरोध प्रकट है :—

(i) आयात व निर्यात पदार्थों को बिना रोक टोक के आने देवें वा न ? अर्थात् बाधित व्यापार हो व निर्बाधित ? बहुत से अर्थ शास्त्रवेत्ता मानते हैं कि सब जातियों के लिये सब अवस्थाओं में बाधित वा अबाधित व्यापार हितकारी नहीं, बल्कि देशों की दशाओं के अनुसार यह रीति बदलनी चाहिये । जैसे संसार के सारे देश तो बाधित व्यापार करते हैं किन्तु इंगलैण्ड तथा भारत अबाधित व्यापार करते हैं, व भारत का हितकारी बाधित व्यापार है किन्तु इंगलैण्ड उसे ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता, यहां दोनों जातियों के स्व २ अर्थशास्त्रों में हित भेद है ।

(ii) कई देश विशेष प्रकार की कलाएं अन्य देशों में नहीं भेजते । भारत में यह अवस्था हुई है क्योंकि आङ्गल लोग भारतीयों को सारा शिल्प देकर अपना कार्य्य कम नहीं करना चाहते ।

(iii) भारत वासी अन्य देशों में जाकर वास करना चाहते हैं, किन्तु लगभग सारे देश हमें काला आदमी कह कर धुत्कारते हैं । दक्षिणी अफ्रीका में कई वर्षों से यह हित

विरोध प्रकट हो रहा है। आस्ट्रेलिया तथा कनाडा में भी यही अवस्था है।

(iv) फिर भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है, यहां के निवासी परिवर्तन व स्पर्द्धा के विरुद्ध हैं—इस कारण कला की प्रधानता स्पर्द्धा तथा परिवर्तन के आधार पर जो अर्थ शास्त्र बने हैं वे भारत के लिये, एवं चीन वा ईरान के लिये कैसे सत्य हो सकते हैं?

अतः एक जातीय अर्थ शास्त्र होना चाहिये—ऐसा परिणाम निकलता है। किन्तु (क) यह नहीं भूलना चाहिये कि अर्थ शास्त्र एक विज्ञान है—विज्ञान (रसायन, गणित आदि) सर्व देशीय होते हैं न कि उनके सिद्धान्त देश २ में परिवर्तन होते रहते हैं। एवम् अर्थ शास्त्र का विज्ञानभाग सब देशों के लिये समान है—उसका व्यवहारिक भाग भिन्न २ देशों के लिये अवश्य भिन्न है। इस कारण इस पुस्तक में भारत वर्ष की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। जातीय अर्थ शास्त्र नाम भी व्यवहारिक भाग की भिन्नता के कारण दिया गया है। किन्तु अर्थ शास्त्र के विज्ञान को बीच में नहीं घसीटना चाहिये॥

(ख) परन्तु अर्थशास्त्र के बहुत से नियम सार्वभौम और जातीय अर्थशास्त्रों में समान हैं। उन दो शास्त्रों को पृथक् करने की आवश्यकता नहीं। केवल जिन २ प्रश्नों में सर्वजातीय तथा एक जातीय हितों में भेद आवें, वहां स्पष्टतया बता देना चाहिये अतः यह परिमित नाम भी अर्थ शास्त्र के लिये पर्य्याप्त नहीं है।

७—व्यवसायिक अर्थ शास्त्र नाम जो अर्थ शास्त्र को दिया गया है वह भी इस शास्त्र के क्षेत्र को परिमित करता है। व्यापार सम्बन्धी ही बातें बताना अर्थशास्त्र का काम नहीं है। वह मनुष्यों के सुख साधनों को बताने वाला शास्त्र है। अतः यह नाम कैसे उचित हो सकता है?

८—अर्थशास्त्र को धन उपार्जन कराने वाली विद्या, सुवर्ण शास्त्र, कुबेरकी विद्याका व श्रमशास्त्र कहना भी उचित नहीं, यह नाम अति संकुचित हैं और साथ ही उनमें स्वार्थ की बू आती है। अर्थशास्त्र स्वार्थवर्धक विद्या नहीं जैसा कि इन नामों से प्रतीत होता है—अतः यह नाम नहीं रखने चाहियें।

९—विनिमयकी विद्या—यह नाम भी दूषित है क्योंकि अर्थशास्त्र केवल विनिमय के नियमों की खोज नहीं करता परन्च उत्पत्ति, विभाग, व्यय तथा उन्नति के चार विषयों का

राष्ट्रिक मितव्ययता का शास्त्र (Political Economy)—

इकानोमी—Economy शब्द ग्रीक भाषा में परिवार के प्रबन्ध के विषय में और विशेष करके उस के आय व्यय के सम्बन्ध में आता है। परन्तु चूंकि व्यय करने में मितव्ययता आवश्यक है ताकि नुक़सान कम हो, अतः इकानोमी=Economy शब्द का अर्थ मितव्ययता पड़ गया। और चूंकि घर की आवश्यकताओं तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में बहुत कुछ समानता है अतः पोलिटिकल इकानोमी (Political Economy) के अर्थ राज सम्बन्धी आय व्यय के नियम बताने वाला शास्त्र हो गया है। फिर चूंकि राज्य की आय तभी अधिक हो सकती है जब जाति धनाढ्य हो, अतः पोलिटिकल इकानोमी (Political Economy) के अर्थ बञ्जोव्यापार द्वारा जाति के धनाढ्य होने के नियम बताने वाले शास्त्र के हुए।

१८वीं शताब्दी तक भी यही अर्थ रहे। इस के पश्चात् यह विचार उत्पन्न हुआ कि राजकीय सम्बन्ध के बिना भी जाति की आर्थिक उन्नति हो सकती है और यह भी देखा गया कि आर्थिक उन्नति का अन्य प्रकार की उन्नतियों के साथ सम्बन्ध है। अतः फ़िज़ियोक्रैटस नामीअर्थशास्त्र

वालों ने बलपूर्वक कहा कि वञ्जो॰व्यापार में नियम बनाना राज्य का काम नहीं, किन्तु लोगों को अपनी २ शक्ति के अनुसार काम करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये क्यों-कि वे स्वतन्त्रता से ही पूर्ण उन्नति कर सकते हैं। इंगलैण्ड में अर्थशास्त्र के जन्म दाता एडम स्मिथ ने इस विचार की पुष्टि की। अर्थशास्त्र में इस बात का भी बलपूर्वक आन्दोलन होने लगा कि राज्य को कहां तक व्यवसाय व व्यापार में हस्तान्तेप करना चाहिये।

यद्यपि अर्थ शास्त्र राज की आय तथा व्यय सम्बन्धी बातों पर विचार करता है,तब भी इस में अन्य बहुत विचारों का वर्णन रहता है, अतः इस का नाम इकोनामिक्स=Economics अर्थ शास्त्र रखना ठीक है, जिस में इस विज्ञान को राष्ट्र से सर्वथा पृथक कर दिया गया है। कुछ काल से यही ईकोनामिक्स नाम अधिकतम प्रयुक्त किया जाता है।

अर्थ शास्त्र का लक्षण।

धन सम्बन्धी सब प्रकार की घटनाओं के विषय में अन्वेषण करने वाली विद्या का नाम अर्थ शास्त्र है।

अर्थात् धन की उत्पत्ति, विनिमय, विभाग और व्यय तथा अन्य जातीय आर्थिक उन्नति के साधन बतलाने वाला शास्त्र अर्थ शास्त्र कहलाता है ॥

परन्तु इस लक्षण में दो त्रुटियां रह जाती हैं और वह यह है कि अर्थ शास्त्र में हम वस्तुतः अर्थ, धन वा सम्पत्ति का अध्ययन नहीं करते, प्रत्युत मनुष्य का अध्ययन करते हैं। यह सत्य है कि इस शास्त्र का मनुष्य के उन यत्नों के साथ सम्बन्ध है जो कि धनोपार्जन करने में लगते हैं किन्तु फिर भी इस शास्त्र का लक्ष्य मनुष्य है, अर्थात् उस की आवश्यकताएं, आवश्यकताओं को पूर्ण करने के यत्न, श्रम से उत्पन्न हुए पदार्थों के उपयोग करने की विधि तथा आवश्यकताओं को पूर्ण करने से पूर्व अन्य मनुष्यों के साथ उस के सम्बन्धों का प्रकार-यह बातें आलोचनीय होती हैं। अर्थ शास्त्र के क्षेत्र में धन की बड़ी लीला है किन्तु वह सर्वदा मनुष्य तथा उस के यत्नों की अपेक्षा गौण दृष्टि से ही देखा जाता है।

सार यह है कि अर्थ शास्त्र प्रधानतया ऐसे मनुष्य की व्याख्या करता है जो आवश्यकताएं रखता, श्रम करता, धन प्राप्त करता तथा उस का व्यय करता है-इस के उपरान्त नर नारी की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले धन की व्याख्या करता है। अर्थात् अर्थ शास्त्र का उपर्युक्त लक्षण जो धन को प्रधानता देता और मनुष्य की उपेक्षा करता है, अनाभिमत और

अतएव हेय है। उक्त लक्षण में दूसरा दोष यह है कि उस से यह पता नहीं लगता कि सम्पत्ति शास्त्र का कोई सीधा सम्बन्ध शारीरिक, सामाजिक, आत्मिक, तथा राष्ट्रीय घटनाओं के साथ है वा नहीं। इन से उस का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है बल्कि समाज में रहने वाले मनुष्यों के साथ उस का सम्बन्ध है, इस बात को दिखाने के लिये अर्थ शास्त्र का यह लक्षण अच्छा होगा कि—

Economics is the science which treats of the phenomena, arising out of the economic activities of mankind in society.

समाज में रहते सहते मनुष्य के आर्थिक यत्न जन्य घटनाओं के विषय में अन्वेषण करने वाली विद्या का नाम अर्थ शास्त्र है।

उक्त लक्षण को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि—

i आर्थिक यत्न क्या हैं? और

ii समाज में रहने वाले मनुष्य से क्या अभिप्राय है?

आर्थिक यत्न—प्रत्येक मनुष्य आवश्यकताओं को अनुभव करके धनोपार्जन करने का यत्न करता है। और फिर कमाये हुए धन अथवा आय का उपयोग करता है ताकि उस की आवश्यकताएं पूर्ण हों। अतः स्पष्ट है कि यदि मनुष्य भोजन वस्त्र मकान

आराम व आसाइश के सामान औषधि तथा अन्य नाना प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता न रखता, यदि वह निराहारी जीव होता, यदि उसे शरीर यात्रा के लिये किसी वस्तु की ज़रूरत न होती, यदि उस की मानसिक, आत्मिक तथा धार्मिक ज़रूरतें प्राकृतिक पदार्थों के बिना पूर्ण हो सकतीं, तो इस संसार में मनुष्य कदापि यत्न वा श्रम न करता। किन्तु जगत्पिता का सहस्र धन्यवाद है कि ऐसा कार्य्यशून्य मनुष्य पैदा नहीं हुआ। भारत में वेदान्त ने शिक्षा दी कि मनुष्य आवश्यकताओं को घटा कर संसार को त्याग करके बनों में वास करें। इस घातक कुशिक्षा के कारण भारतवासी कार्य्यशून्य, आलसी, निरुत्साही, भीरू और भिखारी बन गये। शरीरों में घुन लग गया और बुद्धि तथा आत्मा पर भी अन्धकार का पर्दा पड़ गया। दरिद्रता ने भारत में घर कर लिया। क्योंकि आवश्यकताओं को अनुभव करने वाला मनुष्य पदार्थों को उत्पन्न करता; कई वस्तुओं को ख़रीदता और बेचता है; उत्पत्ति करने वाले मनुष्यों में उत्पन्न वस्तुओं को बांटता है और अपने हिस्से में जो पदार्थ आये हों—उन का भोग करता है। पदार्थों के क्षेत्र में सदैव मितव्ययता करता तथा ज्ञान विज्ञान द्वारा उन की वृद्धि करने में निरन्तर यत्नवान होता है। जैसे अब भारत वासियों की आवश्यकताएं कम हैं तो ज्ञान विज्ञान Sciences का भी सम्पूर्णतया अभाव है। आवश्यकता ही इजादों, आविष्कारों, विचित्र २ यत्नों वा कार्य्यों की माता है। जब वेदान्त की शिक्षा के कारण आर्य्यों ने आवश्यकताओं का तिरस्कार किया, तब नाना प्रकार

के ज्ञान तथा आविष्कार भी सुवर्ण भूमि भारत से पखेरु बन कर उड़ गये।

जो यत्न धन की उत्पत्ति, विनिमय, विभाग, वृद्धि और व्यय रूप में प्रगट होते हैं, उन्हें आर्थिक यत्न कहते हैं।

अर्थ शास्त्र सामाजिक विद्या है, अर्थात् यह शास्त्र ऐसे मनुष्यों का वर्णन नहीं करता जो पृथक् २ वा निर्जन बनों में रहते हों, प्रत्युत ऐसे मनुष्यों का वर्णन करता है जो कि समाज में रहते तथा समाज और समाज के प्रत्येक सभ्य के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रखते हैं।

यह सम्बन्ध भिन्न २ प्रकार के होते हैं और उन की व्याख्या करने वाली भिन्न २ विद्याएं हैं:--

सामाजिक विद्याएं

जो कि समाज में रहने वाले मनुष्य के विविध सम्बन्धों की व्याख्या करती हैं

सामाजिक शास्त्र
(सामाजिक सम्बन्धों के व्याप्त तत्त्व)

आचार शास्त्र*	राज्य नियम*	अर्थ शास्त्र*	नीति शास्त्र*
मनुष्य का क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है ?	राज्य का आदेश कि मनुष्य क्या करें और क्या न करें ?	मनुष्य की आवश्यकताएं तथा तज्जन्य यत्न कैसे पूर्ण हों ?	मनुष्य तथा उस का राष्ट्र से सम्बन्ध.

सामाजिक विद्याओं का सम्बन्ध—उपरितन चित्र में सामाजिक विद्याओं का अपना २ क्षेत्र संक्षेप से बताया गया है। इस से ज्ञात होता है कि अर्थ शास्त्र के अतिरिक्त **आचार शास्त्र** (Ethics), **राज्य नियम** (Law or Jurisprudence), **सामाजिक शास्त्र** (Sociology) तथा **नीतिशास्त्र** (Politics) नामक ४ विद्याएं भी सामाजिक विद्याएं हैं क्योंकि उन का उद्भव मनुष्यों के समाज में रहने के कारण ही हुआ है। यदि मनुष्य एकान्त में पृथक् २ रहते तो उन के परस्पर सम्बन्ध भी न होते—अतः उन सम्बन्धों के तत्वों को अन्वेषण करने की आवश्यकता न होती—अर्थात् ५ विद्याओं का भी अभाव होता, किन्तु मनुष्य स्वभावतः सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीव है—उसे पृथक् रहने से स्वभावतः घृणा है—अतः उक्त पांच विद्याओं का भी विकास होता है। इस शास्त्र में हम केवल मनुष्य के आर्थिक सम्बन्धों की व्याख्या करेंगे। किन्तु यतः एक मनुष्य के पांच सामाजिक सम्बन्ध हैं और उन का पारस्परिक सम्बन्ध भी है, अतः अर्थशास्त्र में शेष चार शास्त्रों के भी कुछ विषय आ जाते हैं, और अर्थ शास्त्र उन से सहायता भी लेता है। सत्य तो यह है कि पांचों शास्त्रों में से प्रत्येक शास्त्र शेष चार शास्त्रों की सहायता लेता है और क्यों न ले जब कि एक ही शरीर में शिर, बाहु, उरु, उदर, तथा पद पृथक् २ होते हुए भी एक दूसरे की सहायता के बिना शरीर को धारण नहीं कर सकते ? इसी प्रकार समाज

रूपी शरीर का अन्वेषण करने वाली पांच विद्याएं हैं–उन का एक दूसरे से सर्वथा पार्थक्य नहीं हो सकता। किन्तु यतः संसार के आदि से अब तक आर्थिक–धन सम्बन्धी आवश्यकताएं ही प्रबल रही हैं, उन के पूर्ण हो चुकने पर ही मानसिक तथा आत्मिक आवश्यकताएं उत्पन्न होती हैं–इस कारण उन का अन्वेषण करने वाला अर्थ शास्त्र विशेष महिमा सम्पन्न विद्या है और सामाजिक विद्याओं में इस समय इस का उच्चतम पद है॥

अध्याय का संक्षेप।

१. प्राचीन आर्य्यावर्त्त में अर्थ शास्त्र का प्रचार था क्योंकि अर्थ वेद नाम का एक उपवेद भी इस विषय पर लिखा गया था; १८ प्रचलित विद्याओं में इस विद्या का भी परिगणन किया गया है, बृहस्पति, शुक्र तथा चाणक्यादि आचार्य्यों ने इस विषय पर ग्रन्थ भी लिखे हैं; प्राचीनों के अर्थशास्त्र का लक्षण भी आधुनिक अर्थशास्त्र के लक्षण से मिलता है; किन्तु प्राचीन पुस्तकों का लोप हो गया है।

२. अर्थ शास्त्र अपनी उन्नत दशा में एक पाश्चात्य विद्या है। उसके १४ नाम न्यूनाधिक प्रचलित हैं।

३. अर्थ शास्त्र के पूर्व 'सामाजिक' विशेषण लगाना ऐसा ही व्यर्थ है जैसा कि रसायन शब्द के पूर्व 'प्राकृतिक' शब्द का लगाना।

४. 'राष्ट्रीय अर्थशास्त्र' यह नाम भी ठीक नहीं यद्यपि इस शास्त्र का राष्ट्रीय बातों के साथ सम्बन्ध है तथापि इसका मुख्य विषय राष्ट्र नहीं। इस कारण यह विद्या राष्ट्र से स्वतन्त्र है।

५. लिस्ट तथा क्रोज़ियर महाशय जातीय अर्थ शास्त्र के पक्षपाती हैं और यह विचार ठीक भी है क्योंकि जातियों का परस्पर विरोध है और सर्व जातियों के उन्नति के साधन समान भी नहीं। किन्तु अर्थशास्त्र का विज्ञान सब के लिये समान है— अर्थशास्त्र के व्यवहारिक भाग में प्रत्येक जाति के लिये भिन्न २ यथोचित साधन बताने चाहियें।

६. अर्थ शास्त्र केवल धनोपार्जन करने की विद्या नहीं— अधिकतर उस का सम्बन्ध मनुष्यों के साथ है।

७. अर्थ शास्त्र केवल धन के विनिमय (अदले बदले) की ही विद्या नहीं परञ्च उस में धन की उत्पत्ति, विभाग तथा व्यय विषय का भी विशेषतया समालोचन होता है।

८. 'राष्ट्रीय मितव्ययता का शास्त्र' नाम भी उचित नहीं क्योंकि यह भ्रममूलक और संकुचित है।

९. (Economics) अर्थशास्त्र यही नाम उचित है।

१०. 'अर्थशास्त्र' धन सम्बन्धी सर्व प्रकार की घटनाओं के विषय में अन्वेषण करने वाली विद्या का नाम है—इस लक्षण में दो दोष हैं।

११. अर्थशास्त्र समाज में रहने वाले मनुष्य के आर्थिक यत्नों का अन्वेषण करता है।

१२. आर्थिक यत्नों का अभिप्राय और नवीन वेदान्त का खण्डन।

१३. अर्थ शास्त्र एक सामाजिक विद्या है। सामाजिक विद्याएं पांच प्रकार की हैं, उन का परस्पर सम्बन्ध है। अर्थ शास्त्र शेष विद्याओं से सहायता लेता है किन्तु सब का केन्द्र है।

निर्देश.

L. Cossa.—*Introduction to the Study of Political Economy*, part I chapters I, III, IV, V.

Keynes.—*Scope and Method of Political Economy.*

H. Sidgwick.—*The Scope and Method of Economic Science.*

G. E. Cairnes.—*The Character and Method of Political Economy.*

महा० द्विवेदी—सम्पत्तिशास्त्र० अध्य० १

G. Ranade—*Essays on Indian Economics, Chap. 1.*

अध्याय २

अर्थ शास्त्र की आवश्यकता

मानव जाति के लिये अर्थ शास्त्र की आवश्यकता है, यह प्रथम अध्याय म सिद्ध कर चुके हैं। अब हम मनुष्यों का वर्णानुसार विभाग करके प्रत्येक वर्ण के लिय इस शास्त्र की आवश्यकता दिखलाते हैं:—

श्रमियों तथा शूद्रों के लिये अर्थ शास्त्र की आवश्यकता- इस आवश्यकता के दो रूप प्रतीत होते हैं: —

(क) त्रैकालिक सत्यता के सर्व साधारण लाभ:—हुनर तथा कार्य्य क्षमता बढ़ाने के साधनों का अध्ययन करने के लिये २. रहन सहन का प्रकार यथार्थ है वा नहीं, इस बात को देखने के लिये। ३. भृति यथोचित व ठीक मिलती है वा नहीं तथा (४) यह देखने के लिये कि कितने घन्टे मनुष्य को काम करना चाहिये और वस्तुतः कितने घन्टे काम किया जा रहा है और उस आदर्श को कैसे प्राप्त करें। उक्त चार स्वाहित कारी बातों का ज्ञान करने के लिये श्रमियों को अर्थ शास्त्र का पढ़ना आवश्यक है। इसी हेतु सभ्य देशों में बहुत सी रात्रि—पाठशालाएं श्रमियों को अर्थ शास्त्र पढ़ाने के लिये खोली गयी हैं। फिर उन देशों में चूं-

कि श्रम जीवी—मज़दूर भी शिक्षित होते हैं, अतः वे अर्थ शास्त्र की पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। यही कारण है कि सभ्यदेशों के श्रमी इतनी भूलें नहीं करते और न केवल यही कि वे बहुत से दुःखों से बचे रहते हैं प्रत्युत उत्तरोत्तर उन्नति करते जाते हैं ॥

(ख) आधुनिक समय में श्रमियों को इस शास्त्र की अधिक आवश्यकता है क्योंकि —

१. मज़दूरों को समष्टिवाद की ओर दौड़ने से बचाना चाहिये ॥

२. हड़ताल करने की हानि और लाभ बताने चाहियें ॥

३. यदि यह सत्य हो कि निर्धनी लोग प्रति दिन अधिक अधिक निर्धन होते जाते हैं, तो उन्हे इस दुरावस्था से बचाने के लिये अर्थ शास्त्र पढ़ाना चाहिये ॥

४. किन्तु इस बात की असत्यता देखने के लिये ही श्रमियों को अर्थ शास्त्र का पढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है। हमारा विश्वास है कि सभ्यदेशों में यह घटना कि धनी लोग उत्तरोत्तर धनी और निर्धनी लोग उत्तोत्तर निर्धनी हो रहे हैं—(The Rich are becoming richer and the poor poorer) कभी सत्य नहीं दिखाई जा सकती ॥

***२. व्यवसाय पतियों (वैश्यों) के लिये अर्थ शास्त्र की आवश्यकता ।**

निम्न लिखित बातों के जानने के लिये वैश्यों को इस शास्त्र की आवश्यकता है:-

१. पूंजी एकत्रित करने के कौन से साधन हैं ?

२. व्यवसाय की वृद्धि किन साधनों से हो सकती है ? बोनस, लाभ विभाग की रीतियों के लाभ क्या हैं ?

३. बड़ी तथा छोटी मात्रा की उत्पत्ति के लाभ तथा हानियें क्या हैं ?

४. कलाओं की हानि तथा लाभ।

५. श्रमियों की कार्य्य क्षमता के साधन तथा उस कार्य्य क्षमता का अस्तित्व तथा वृद्धि का व्यवसाय पतियों के साथ सम्बन्ध।

६. विनिमय के साधनों की उत्तमता।

७. मुद्रा किस पदार्थ की अच्छी है और राज्य का उस से क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

८. बैंकों और बीमे का कार्य्य।

९. व्यापारिक दुर्घटनाएं।

१०. एकाधिकार से बनने वाले पदार्थों के मूल्य निश्चित करने के साधन।

११. धन के विभाग की कौनसी रीति ठीक है ?

१२. एकत्रित धन को कैसे व्यय करना चाहिये ?

१३. राज्य का व्यापार के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

१४. कर किस प्रकार के और कितने देने चाहियें ?

इत्यादि विषयों का आलोचन करना वैश्यों के लिये अत्यावश्यक है और उपर्युक्त बातों के जानने का साधन अर्थ शास्त्र है। अतः वैश्यों के लिये इस का पढ़ना अत्यावश्यक ठहरता है।

३. क्षत्रियों और ब्राह्मणों के लिये इस शास्त्र की आवश्यकता।

प्रथम अध्याय के अङ्क में हम दिखा चुके हैं कि राज्य सम्बन्धी किन २ बातों की अर्थ शास्त्र व्याख्या करता है। वे विषय अत्यन्त महान् हैं, यदि राज्य में भाग लेने वाले-प्रबन्धकर्ता न्यायाधीश और नियम बनाने वाले कर्मचारी अर्थ शास्त्र के विद्यार्थी न हों तो उन के सब यत्न निष्फल हो जावें। आजकल तो सभ्य देशों में राज्य सभाओं का अधिकतम समय आर्थिक विषयों के विचार में बीतता है-अतः सब प्रधान राज्य कर्मचारियों को अर्थ शास्त्र में निपुण होना चाहिये। एवम् जाति के सुधारक लोग भी अर्थ शास्त्र के ज्ञान के विना जो यत्न करते हैं, वे रेत पर स्थित भवनों की न्याईं शीघ्र ही गिर जाते हैं॥

*४. प्रोफ़ेसर मार्शल ने जो सूची उन विषयों की दी है जिन्हें कि अर्थ शास्त्र के वेत्ताओं ने बतलाया है-वह नीचे दी

जाती है। उस से हमें पता लगता है कि इस शास्त्र की कितनी आवश्यकता और महानता है।

१. धन की उत्पत्ति, विनिमय, व्यय, विभाग-इन चारों पर कौन २ से कारण प्रभाव डालते हैं? और कृषि, व्यापार और व्यवसाय की क्या २ विधि है?

२. सराफा (Money Market) की क्या रचना है?

३. थोक और फुटकर क्रय।

४. विदेशी व्यापार के तत्व।

५. श्रमियों और व्यवसाय पतियों के सम्बन्ध।

६. धन की बृद्धि से जाति को वास्तविक और बाह्य क्या २ लाभ होते हैं?

७. आय की कमी से जाति को क्या २ हानियें होती हैं?

८. किन किन कारणों से बढ़ाई हुई समृद्धि स्थिर रह सकती है?

९. आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति को कहां तक स्वतन्त्रता होनी चाहिये अर्थात् राज्य का हस्ताक्षेप होना चाहिये वा नहीं?

१०. एकाधिकार (Monopolies क्यों होते हैं और उन के क्या २ प्रभाव होते हैं?

११. कर किस २ प्रकार के होने चाहियें और उन के लगाने से जन समाज को क्या हानि तथा लाभ होते हैं तथा राज्य को क्या हानि वा लाभ होते हैं?

१२. राज्य को कहां तक प्रजा के कामों में दख़ल देना चाहिये ?

१३. न्याययुक्त विभाग के लिये प्रजा की जायदाद और आयों पर या उन के स्वतन्त्रता पूर्वक काम करने पर कहां तक हस्ताक्षेप होना चाहिये ?

१४—श्रमियों की आय को बढ़ाने तथा उन के काम करने के समय को कम करने से क्या सारी जाति का धन कम होगा वा बढ़ेगा ? तथा सारी जाति को क्या हानि वा लाभ पहुंचेगा ?

१५—क्या श्रम विभाग जितना आज कल है उतना ही होना चाहियें या न्यूनाधिक ? जैसे सुई ५० पचासों क्रमों में से गुज़रती है और प्रत्येक मनुष्य सदा एक ही क्रम में नियुक्त रहता है—यह चाहिये वा नहीं ?

१६—क्या श्रमियों को उच्च शिक्षा दी जा सकती है वा नहीं ? उन्हें स्वतन्त्र काम करने की ओर लगाया जा सकता है वा नहीं ?

१७—सहोद्योगी समितियों को कहां तक बढ़ाना चाहिये ?

१८— कौन २ से व्यवसाथ जाति को राज्यद्वारा करने चाहियें ?

१९—आज कल जिस प्रकार धन का व्यय हो रहा है आया वह ठीक है अथवा उस में हस्ताक्षेप करना चाहिये ?

५—जातीय निर्धनता का दूरीकरण ।

संसार में भिन्न २ देशों के पास सम्पात्ति की मात्रा भिन्न २ है निर्धन देश धनवान् देशों की देखा देखी धनवान् होना चाहते हैं और यह इच्छा शुभ, अभीष्ट तथा आवश्यक है क्योंकि धनी देश सदा बलवान् होते हैं और वह सर्वदा ही निर्बलों पर आक्रमण करने को तय्यार रहते हैं। अर्थशास्त्र के द्वारा भिन्न २ जातियों की भिन्न २ समृद्धि के कारण हम देख सकते हैं और निर्धन जातियां किस प्रकार धनयुक्त हो सकती हैं—उन के साधनों का भी अवलोकन कर सकते हैं। निर्धन देश को केवल अपनी रक्षा के लिये ही अर्थशास्त्र का आन्दोलन नहीं करना चाहिये, प्रत्युत अपने जीवन को सुखमय करने के लिये भी उस शास्त्र का अनुशीलन करना चाहिये। हम जानते हैं कि भारत में अत्यन्त दरिद्रता ने घर किया हुआ है। इस के ४ कोटि मनुष्य एक समय ही भोजन प्राप्त करते हैं। अन्य कुछ कोटि मनुष्य दोनों समय पेट भर भोजन नहीं खा सकते। भोजन को छोड़ कर यदि अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं पर दृष्टि डाली जाय, तो पुण्य भूमि भारत दरिद्रता के सागर में डूबी हुई प्रतीत होती है। इस के प्रत्येक निवासी की मध्यम आय का अनुमान १ पा० से २ पौंड तक लगाया गया है परन्तु इस के उलट इङ्गलैण्ड की आय प्रति पुरुष ४२ पाउण्ड वार्षिक है। अतः ऐसी अवस्था में

जीवन को सुखी बनाने के लिये भारत वासियों को अर्थशास्त्र का आन्दोलन करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

६. सभ्यता का मूल कारण धन है।

सभ्यता विषय पर लिखने वाले दार्शनिकों में से कतिपय महाशयों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि संसार के आदि से लेकर अब तक जो सभ्यताएं भिन्न २ देशों में उत्पन्न हुई हैं उन के प्रेरक कारण आर्थिक (Economic motives) थे। इस कथन में रोमादि की गत सभ्यताओं के विषय में अधिकतर सत्यता अवश्य है। परन्तु आधुनिक सभ्यता का आधार आर्थिक प्रेरक कारणों पर ही है और धार्मिक तथा राजनैतिक कारण निरन्तर प्रेरक नहीं है—आर्थिक कारणों से ही प्रेरित होकर लोग आज कल काम कर रहे हैं—यह अधिकांश में सत्य है किन्तु पूर्ण सत्य नहीं। ऐसा होते हुए भी धन की लीला विचित्र है।

७. इतिहास में परिवर्तन।

धन की लालसा ने इस जगत् की काया पलट दी है। संसार के सब इतिहास इसी लालसा का एक परिणाम हैं, इसी धन ने किसी जाति या व्यक्ति को ऊंचा और किसी को नीचा किया है। संसार के आदि से जातियों ने जो सहस्रों आक्रमण

(हमले) एक दूसरे पर किये ह, व कदापि न होते, यदि अर्थ, धन वा सम्पत्ति की लालसा न होती।

प्राचीन आर्य, अपने आरम्भिक निवास स्थान से चल कर पंजाब जैसे उपजाऊ देश में आकर बसे, परन्तु जब पंजाब में खाने पीने की वस्तुएं काफ़ी न हुईं, तब उन्हों ने मध्य भारत, राजपूताना, बंगाल, दाक्षिण और संसार के अन्य देशों में भी जाकर निवास किया, ताकि ठीक तौर पर पेट पूजा हो सके। स्वर्गमय प्रारम्भिक स्थान को छोड़ कर देश २ में चक्कर लगाने का प्रेरक कारण धन की लालसा ही थी। इसी के कारण ही योरुप की जातियां अफ्रीका, अमैरीका और एशिया के निवासियों को नाश करके स्वयम् उन के स्थान पर वास कर रही हैं। जाति के धन को बढ़ाने के लिये सहस्रों उत्साही पुरुष कभी दाक्षिणी ध्रुव की यात्रा करते हैं और कभी उत्तरी ध्रुव के बर्फ़ तूफ़ानों में अपनी जानें दे देते हैं। और हमारे सन्तोषी निर्धनी भारती भाई सिन्ध नदी के पार जाना भी पाप समझते हैं और जो समुद्र पार जावे, उसे जाति से बाहर निकाल देते हैं।

किन्तु देखिये कि यदि दारा, सिकन्दर, शकों, यूनानियों और तुर्कों ने हज़ारों मील चल कर भारत पर हमले किये, तो धन के लिये!

यदि महमूद ने १८ वार आक्रमण करके भारत को गारत किया, तो धन के लिये ! यदि महम्मदगौरी भारत में एक ऐसा तूफ़ान लाया कि जिस से उत्तर भारत के राजागण अपने २ सिंहासनों से उड़ गये, तो धन के लिये !

यदि लंगड़ा तीमूर विद्युत की तेज़ी और बाज़ की झपट के समान भारत पर आ पड़ा, तो धन के लिये !

यदि मुगलों, पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों ने भारत में खूनख़्वारी का बाज़ार गर्म किया और उन का परस्पर जूत पज़ार हुआ तो धन के लिये !

यदि अहमदशाह और नादरशाह ने आर्य्यावर्त में नादरगर्दी की और पंजाब में सिक्खों ने सिक्खाशाही मचाई तो धन के लिये !

यदि पिता पुत्रों, मित्रों, राजाओं और मन्त्रियों, बन्धुओं और सम्बन्धियों ने एक दूसरे को मारा तो धन के लिये !

यदि अमेरीका वासियों ने विद्रोह करके स्वतन्त्रता धारण की, तो धन के लिये !

यदि १८वीं और १६वीं शताब्दियों में योरूप में संग्राम हुए, तो धन के लिये !

यदि आज इंगलैण्ड और जर्मनी में खटपट है, तो धन के लिये !

यदि भारत में अंग्रेज़ों के विरुद्ध कोई असन्तोष है, तो धन के लिये !

यदि दक्षिणी अफ्रीक़ा और भारतवर्ष में इस समय द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो रही है, तो धन के लिये !

यदि लगभग सब देशों ने भारत वासियों को अपने अन्दर निवास करने से रोक दिया है, तो धन के लिये !

अतः स्पष्ट है कि इतिहास का प्रत्येक चमत्कार और साधारण से साधारण घटना कराने वाला धनरूपी बाज़ीगर है— उसी की डोरी हिलने से सर्व व्यक्तियां तथा जातियां नाच करतीं, कर्मक्षेत्र मे पग रखतीं, उन्नति के शिखर पर पहुंचतीं या रसातल में गिर जाती हैं।

८. शरीर के लिये धन की ज़रूरत।

धन की इच्छा से प्रेरित होकर संसार में कर्म होता है। कोटिशः भारतवासी जो थोड़े धन पर सन्तोष करने वाले हैं प्रातः काल से सायंकाल वा अर्धरात्रि तक मज़दूरी और दुकानदारी करते हैं, ताकि धन की प्राप्ति हो और अपनी तथा अपने परिवार की जीवन यात्रा कर सकें। थोड़े से धन के लिये सारा दिन काम करके चकना चूर हो जाते हैं, पशुओं के समान इन का सारा जीवन व्यतीत होता है क्योंकि पशुओं की तरह जन्म लेते, भोजन प्राप्त करते, सारा दिन काम करते, भोजन पका कर खाते, उन्हीं के समान भय और हर्ष को प्राप्त होते, उन्हीं की भान्ति

सन्तान उत्पन्न करते और निद्रा में मग्न हो जाते हैं, शिक्षा, धर्म, कर्म, दान, सदाचार से रहित होते हुए पशुओं की तरह बूढ़े होते और मर जाते हैं, बालकपन से वृद्धावस्था तक धन कमाते हैं और फिर भी सहस्रों को पेट भर भोजन नसीब नहीं होता।

धन की प्राप्ति सब से प्रथम और आवश्यक कर्म है, क्योंकि इस के बिना यह शरीर क्षीण और मलीन हो जाता है और आत्मा भी शरीर को जवाब दे जाता है। ताकि शरीर का आत्मा के साथ मेल रहे, इस कारण मनुष्य का प्रथम धर्म धन कमाना है और यदि इसी में ही सारा दिन बीत जावे और फिर भी पेट पूजा न हो सके, तो धर्म, कर्म, दान, शिक्षा, सदाचार आदि की ओर लोगों का ख्याल कैसे हो सकता है?

६. विद्या और सदाचार की वृद्धि धन के द्वारा होती है। पश्चिमी देशों में धन की वृद्धि के लिये लाखों विद्यालय-शिल्पी तथा सामान्य खोले गये हैं। धन की प्राप्ति के लिये प्रति दिन नये २ आविष्कार (ईजाद) किये जाते हैं जिस से भारतवासी विस्मित (हैरान) हुआ करते हैं। इसी धन की प्राप्ति के लिये लोगों में साहस, वीरता, निर्भयता, तप, दम, क्षमा, सुशीलता, सत्यभाषण, प्रणपालन, साख का रक्षण, मित व्ययता, दान आदि सद्गुणों की दिनों-दिन उन्नति होती जाती है। वस्तुतः सूर्य के प्रकाश की भान्ति धन की तलाश से गुण चमकते जाते हैं।

१०. सभ्यता की उन्नति धन से होती है।

सच पूछिये तो सभ्यता की उत्पत्ति तथा उन्नति धन के लिये यत्न करने से होती है। शिकार करने वाली, पशुओं को चराने वाली, कृषि करने वाली, दस्तकारी करने वाली और कलाओं से व्यापार व्यवसाय करने वाली—पांच प्रकार की जातियां मिलती हैं। उत्तरोत्तर इन में अधिक सभ्यता होती है किन्तु सभ्यता का सरोवर कहां है? परिमित, तुच्छ, पाशविक आवश्यकताओं को छोड़ कर उन को विस्तृत करने में अर्थात् अपनी प्राकृतिक अवस्थाओं से असन्तुष्ट हो कर नरनारी उच्च होने का जब २ यत्न करते हैं, तब २ उन की सभ्यता बढ़ती है।

धन पर सभ्यता का आश्रय इस कारण भी है कि धनियों की आवश्यकताएं निर्धनियों से सदैव अधिक होती हैं, अतः उन ज़रूरतों को पूरा करने के लिये शिल्पादि की वृद्धि कराते हैं। रोम, यूनानादि देशों में इसी कारण सभ्यता बढ़ी। इसी प्रकार भारत में जब उपनिषद् वा दर्शनादि ग्रन्थ लिखे गये, तब धन की खूब वृद्धि हो चुकी होगी।

एवं जिन नर नारियों को पेट पूजा के साधनों की चिन्ता नहीं होती, वही प्राकृतिक पदार्थों (माद्दी चीज़ों) से ऊपर उठते हैं। वही शिक्षा, विद्या, विज्ञान, कला, शिल्प में अपना वा अपनी सन्तान का समय लगा सकते हैं। आज कल भी क्या निर्धनियों

की सन्तान विद्यालयों वा महाविद्यालयों (कालजों) में पढ़ती है? क्या निर्धनियों के पुत्र स्नातक बना करते हैं? यदि ऐसा नहीं तो स्पष्ट है कि सरस्वती लक्ष्मी देवी की सहेली है, किन्तु लक्ष्मी के साथ सरस्वती का ही सम्बन्ध नहीं, धर्म के साथ भी है। इसी लिये एक कवि ने कहा है ॥

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।

अर्थात् 'भूखा मनुष्य किस किस पाप को नहीं करता? निर्धनी सदा क्रूर (बेरहम) निर्दयी होते हैं'। इसी राक्षसी निर्धनता का भूत जिस नर नारी के सिर पर जब सवार होता है, तब वह चोर चकार, डाकू, ठग, छली, कपटी, व्यभिचारी, मनुष्यनाशक, पितृघातक, मित्रद्रोही, देशविद्रोही, ब्रह्मघ्न-एवम् पाप का पुतला बन जाता है।

फिर क्या कभी निर्धनी भी दान दे सकते हैं? क्या निर्धनियों और अशिक्षितों के आधार पर धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रिक संस्थाएं चल सकती हैं?

एवम् क्या पाठकों को ज्ञात नहीं कि ब्राह्मणों की आज्ञाओं को न मान कर, परम्परा के धर्म का अनादर करते हुए, धन की तलाश में १६००० जन प्रत्येक बर्ष भारत भूमि को छोड़ कर अफ़ग़ानिस्तान, मारीशस, नैटाल, अमेरीका, योरूप आदि में जा बसते हैं-उन को पौराणिक धर्म की परवाह नहीं। इसी प्रकार सहस्रों हिन्दू ईसाई बन जाते हैं क्योंकि उन में खाने पीने के

सामान खूब मिल सकते हैं। अतः यदि विद्या, धर्म, सदाचार, और नाना प्रकार के उत्तम गुणोंकी रक्षा करनी हो,तो धनी होना चाहिये। लक्ष्मी देवी की भक्तिभाव, श्रद्धा और प्रयत्न से पूजा की जावे, तो सुखों की वर्षा; धर्म की बृद्धि और सरस्वती के दर्शन होते हैं॥

११. भारत के लिये अर्थ शास्त्र की विशेष आवश्यकताः—

भारत में वेदान्त का बड़ा प्रचार है। वेदान्त संसार को असार, मिथ्या, मायायुक्त,इन्द्रजाल व बाज़ीगर का खेल बतलाता है। ऐसा होने से वेदान्ती लोग धन तथा धन से उत्पन्न होने वाली वस्तु को घृणित समझते हैं। अतः अर्थ शास्त्र को भी वे अच्छा नहीं समझते। परन्तु अन्य देशों में ऐसा नहीं है। वे लोग इसी धन से उन्नति करना चाहते हैं अतः उन के लिये इस शास्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु भारत में उलटी गङ्गा बहती है। प्रत्येक अपने को देखता है-जाती का नहीं। यही स्वार्थ भारत के लिये हानिकारक हो रहा है। जातीयता होनी अत्यन्त आवश्यक है,अतः भारत में जातीय सम्बन्ध को यदि हमने दृढ़ करना हो तथा इसी संसार को सुखमय करना हो तथा वेदान्त की लहर में न बहना हो तो अर्थ शास्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है।

१२. भारत में दरिद्रता की काली देवी का राज्य है। उसे दूर करने के साधनों को बतलाने वाला केवल एक अर्थ-शास्त्र है—अतः उसका अनुशीलन करना भारतीयों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस समय भारत में ७५ प्रति शतक लोग कृषक हैं और जो शिल्प भारत में पाया जाता है, वह प्रायः विदेशियों के हाथ में है। स्वतन्त्र तौर पर भारतीयों के हाथ में शिल्प नहीं है। जिस देश में शिल्प नहीं होता, उस देश में कई प्रकार की विद्याओं की उन्नति नहीं होती। यह देखा गया है कि जिस देश में उत्तरोत्तर शिल्प की उन्नति होती है वहां हज़ारों विद्वान् विद्या ग्रहण तथा विद्या प्रचार के लिये यत्न करते हैं और विज्ञानों की वृद्धि शिल्प से पूर्व होती है। भारत में इस समय शिल्प के साथ २ विद्या का भी अभाव है। यहां शिल्पी, व्यवसायिक, और व्यापारिक महाविद्यालय नहीं मिलते, इसी कारण साधारण विद्या में भी भारत में केवल ६ प्रतिशतक निवासी शिक्षित हैं और शेष ९४ अशिक्षित हैं-ऐसी दशा में शिल्प की उन्नति क्या हो सकती है?

अतः यदि हम भारत में विद्या की उन्नति करना चाहते हों, तो अत्यन्त आवश्यक है कि भारत में शिल्प की उन्नति की जावे, ताकि पठित मनुष्य भोजन कमा सकें। उन पठितों को यह

विश्वास होना चाहिये कि हमारी सेवाएं मान्य होंगी—हमारा शिल्प निरर्थक नहीं जावेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि भारत के बड़े २ शिल्प विदेशियों के हाथ में हैं। हमें शोक से कहना पड़ता है कि हमारे देश की खानें दिन रात कम हो रही हैं। जो माल निकलता है वह विदेश में बहुत सस्ता बिकता है और शिल्पी माल बना कर यहीं बड़े लाभ से बेचा जाता है। इस का कारण स्पष्ट है कि भारत में व्यवसायपति (कारखानों के चलाने वाले मैनेजर) नहीं मिलते और व्यवसाय को समझने वाले आदमी बहुत कम मिलते हैं। अतः इस देश को बचाने के लिये अर्थ शास्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है॥

१३. आङ्ग्ल सम्प्रदाय के अर्थशास्त्र वेत्ताओं ने अभी तक एक बड़े सत्य का आदर नहीं किया–उन्हों ने मनुष्य को केवल धनोत्पादक समझा है कि जिससे सुख तथा भोग की वा प्राणधारण की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। जब कि अधिक सत्यता यह है कि यह सब नाना प्रकार की वस्तुएं मनुष्य के लिये उत्पन्न होती हैं न कि मनुष्य उन के लिये। इस भूल का परिणाम यह है कि मनुष्य समाज तथा राजा धन कमाने के ऐसे नियम बनाते हैं कि जिन से मनुष्य स्वयं एक अच्छी खासी कला बन जाता है। वे भूल जाते हैं कि

उसे एक अच्छी कला बनाने के स्थान पर वे सदाचार स हीन और उच्च विचारों में निर्धन मनुष्य बना रहे हैं क्योंकि उस की प्राकृतिक आवश्यकताओं को बढ़ाने में उस की इच्छाओं का पूर्ण तथा उच्च होना रोक दिया गया है। वे भूल जाते हैं कि दरिद्रता दो प्रकार की है: एक तो बढ़ी हुई इच्छाओं के लिये पदार्थों का अभाव होना और दूसरी धार्मिक तथा मानसिक तौर पर उच्च पदार्थों के लिये शुभ इच्छाओं का अभाव होना, अतः धार्मिक तथा मानसिक तौर पर उच्च पदार्थों की आवश्यकता बढ़ानी चाहिये ना कि मनुष्य की नीच इच्छाओं को वृद्धि देनी चाहिये। भारत में उक्त दोनों प्रकार की इच्छाओं का अभाव है। अर्थ शास्त्र के पढ़ने से दोनों प्रकार की इच्छाएं स्वयं बढ़ने लगेंगी।

१४. जातीय सादगी से धर्म की वृद्धि नहीं होती।

भारत में वेदान्त का प्रचार होने से लोगों के दिलों में यह विचार घर कर गया है कि यह संसार असत्य और दुःखों का सागर है। कवियों ने भी इस विचार को दृढ़ किया है, कई विचारकों ने मनुस्मृति के कथन—'सर्वं परवशं दुःखम् सर्वमात्म वशं सुखम्' का यह अभिप्राय निकला है कि आवश्यकताओं के बढ़ाने से पराधीनता बढ़ती है, परन्तु उन का यह विचार असत्य है यथाः—

यदि हम जातीय विकास को देखें, तो पता लगता है कि ज्यों २ मनुष्य असभ्य तथा मनुष्यभक्षक अवस्थाओं से निकल गये, त्यों २ उनकी स्वन्त्रता घटती और पराधीनता बढ़ती गई। मनुष्य तब ही स्वतन्त्र हो सकता है—जब उसकी आवश्यकताएं कम हों, चिन्ताएं कम हों, सम्पत्ति न्यून हो, और ज्ञान न्यून हो अर्थात्, मनुष्य स्वयम् ही कुछ न हो। परन्तु ज्यों २ वह मनुष्य बनता है और उसका विकास होता ह त्यों २ वह पराधीन होता जाता है। पर साथ ही उस की स्वतन्त्रता भी बढ़ती जाती है। जब असभ्य जाति में (Barter) वस्तुओं के विनिमय—परस्पर अदले बदले का उद्भव होता है, तो पारस्परिक सहायता की आवश्यकता अनुभव की जाती है। और जब सिक्के का उद्भव होजाता है, तो सब मनुष्यों का पराधीन होना मान लिया जाता है। १९वीं शताब्दी की उन्नति को हम बड़े मान से देखते हैं किन्तु उस में क्या हुआ है, सिवाय इसके कि प्रत्येक व्यक्ति जहां पहिले स्वयं अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता था, अब उन्हें पूर्ण करने के लिये वह दूसरों पर निर्भर करता है। पहिले, मनुष्य स्वयं जल भरता, आटा पीसता, खेती करता, औज़ार बनाता, वस्त्र बुनता, मकान बनाता था। परन्तु आज उनके स्थान पर नलकों द्वारा पानी लेता है, स्वतः जलने वाले विद्युत् दीपकों को लगवाता, बने बनाये मकानों में रहता, कलाओं से पिसे आटे का प्रयोग

करता, दूसरे की खेती का अन्न खाता और देशदेशान्तरों के बने हुए औज़ारों तथा शिल्प पदार्थों वा कच्चे माल का प्रयोग करता है। पराधीनता की भी क्या सीमा है? यदि नगर में जल देने वाली कला ख़राब होजाय, तो हाहाकार मच जाता है। यदि पंखा चलाने और लैम्प प्रदीप्त करने वाली विद्युत्कला ज़रा ख़राब हो जाय, तो नगर का सारा काम रुक जाता है। इन्हीं कष्टों के कारण लोग पराधीनता के विरुद्ध हैं। किन्तु ऐसे सज्जन यह नहीं विचारते कि आधुनिक पराधीनता के अर्थ अविश्वास के स्थान पर विश्वास, शत्रुता के स्थान पर मित्रता, निस्सहायता के स्थान पर सहायता के हैं। साथ ही स्वार्थ से बंधे हुए मनुष्यों का प्रेम सार्थक होजाता है और प्रेम से जाति संगठित होती है। भारत में जितनी ईर्ष्या द्वेष की अग्नि है, उतनी अन्य किसी सभ्य देश में नहीं। उक्त दोषों के अभाव के लिये आर्य्यावर्त में आर्थिक पराधीनता की आवश्यकता है।

१५. धर्मपूर्वक धन कमाने की शिक्षा

जितने भी महात्मा जन होते हैं, वे धन पर प्रायः कुपित ही रहते हैं क्योंकि धन को प्रायः वे गिरावट का कारण

समझते हैं। लोगों का इसी लिये प्रायः यह विचार उत्पन्न हो गया है कि अर्थ शास्त्र केवल लोभ को बढ़ाने वाला है और लोभ नरक की ओर लेजाता है। अतः अर्थशास्त्र नहीं पढ़ना चाहिये। परन्तु वास्तव में अर्थशास्त्र लोगों को लोभी नहीं बनाता और नां ही वह लोगों को पाप से धन कमाना सिखाता है।

आर्य्य शास्त्रों में तीन प्रकार का अर्थ लिखा है-शुकल, शबल तथा कृष्ण। दायभाग, उपहार, दहेज़ में मिला हुआ तथा अपने उचित श्रम से कमाया हुआ अर्थ शुकल कहा जाता है। उत्कोच, राज्यर्वजित पदार्थों को बेचने, कई प्रकार की फ़ीसों का धन शबल है। चोरी, ठगी, चापलूसी, भिक्षा, जुए, छल, कपट से कमाया हुआ धन कृष्ण कहा जाता है। इन्हीं को ही सात्विक, राजसिक और तामसिक कमाई कह सकते हैं। अर्थ शास्त्र सात्विक अर्थ के पक्ष में है और शेष अर्थों की वह निन्दा करता है। बल्कि सात्विक अर्थ की सूची में दायभाग में मिला धन भी रखा जावे या नहीं-इस में विवाद है-अतः स्पष्ट है कि आर्यों को इस शास्त्र का अवश्य अध्ययन करना चाहिये।

विमान, शीघ्रगामी यान, सैंकड़ों पेशों के नाम और जानवरों के सिधाने के विषय के मन्त्र कई स्थलों पर आते हैं।

धन और पशुओं की प्राप्ति के लिये सैकड़ों मन्त्र आये ह । इस से पता लगता है कि वेद अर्थ शास्त्र के विरुद्ध नहीं ह । इतना ही नहीं किन्तु वेद में एक सूक्त केवल कृषि को उन्नत करने के लिये ही है ।

(ख) प्रथम अध्याय में बताया गया है कि चार उपवेदा में से एक वेद अर्थवेद था, इस से भी पता लगता है कि वैदक काल के ऋषिगण अर्थशास्त्र को बुरी दृष्टि से नहीं देखते थे ।

(ग) छान्दोग्योपनिषद् में बहुत सी विद्याओं का वर्णन है-उन में निधि और राशी विद्याओं के नाम हैं-जो कि अर्थ-शास्त्र के भाग प्रतीत होते हैं ।

(घ) आर्य्यों के सांसारिक जीवन के लिये एक बड़ा भारी सिद्धान्त है कि "धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति की जावे" । यहां पर भी अर्थ को नहीं छोड़ा है, प्रत्युत उसको धर्म के पश्चात् रख कर यह बताया है कि धर्म से कमाया हुआ धन शुभ है—उसका भोग करना चाहिये. तभी मोक्ष मिल सकता है ।

(ङ) भिन्न २ समयों के कवियों ने जो धनकी प्रशंसा और दरिद्रता की निन्दा की है-वे पढ़ने योग्य हैं । थोड़े से कवियों क वाक्यों को सरल हिन्दी में नीचे देते हैं—पुस्तक के विस्तार के कारण संस्कृत के श्लोक नहीं दिये जाते ।

१६. धन प्रशंसा ॥

हे पुरुष ! धन इकट्ठा करो, इस जगत् का मूल धन है। निर्धनी और मुर्दे में मैं कोई भेद नहीं देखता । हे राजन् ! एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का दास नहीं, बल्कि धन का दास है, धन के भाव और अभाव से लोग बड़े व छोटे कहलाते हैं, अतः यत्न से धन कमाना चाहिये, दरिद्रता, भिक्षा और दासत्व (गुलामी) पापों के फल हैं । निर्धनी को सब लोग छोड़ जाते हैं, उस के पास स्त्री और पुत्र भी नहीं रहते । अभागे, कुबुद्धि निर्धनी के सब काम ऐसे निष्फल जाते हैं जैसे गर्मी की ऋतु में नदी नाले सूख जाते हैं। निर्धनी ही दुर्बल होते हैं और धनी बलवान् । निर्धनता के कारण कई पुरुष आत्मघात करते, कई बनों में भाग जाते, कई शत्रुओं के वश में पर्वतों में पड़ जाते हैं और कई पागल हो जाते तथा कई दास बन जाते हैं, निर्धनी को दुःखी और पापी परन्तु धनी को सुखी और पुण्यात्मा कहा जाता है । कुल, शील, विद्या, शौच, शान्ति, चतुराई, मधुरता और अन्य नाना प्रकार के गुण धन हीन में शोभा नहीं देते, इस लोक में कोई मनुष्य धन के बिना यश और मान प्राप्त नहीं कर सकता । सारे गुणों का आश्रय धन में है जो धनी है वह कुलीन है, वही यशस्वी, पण्डित, वक्ता, सुन्दर है, किन्तु धनविहीन को मित्र, पुत्र, स्त्री, बन्धु भी छोड़ जाते हैं । धन के बिना प्राण यात्रा भी

नहीं हो सकती, धन से ही धर्म, काम और स्वर्ग मिलता है। धन से उच्च कीर्ति और नाना प्रकार के गुण प्राप्त होते हैं। धन से भोग प्राप्त होते हैं और धनी स्वर्ग में जाता है। धन को परम धर्म कहा जाता है, सारा जगत् धन के आश्रय है। धनी लोग ही इस लोक में जीते हैं, धन हीन लोग मरे हुए हैं धन के बिना कभी स्वर्ग नहीं मिलता, निर्धनता से मृत्यु भली है।

विशाल बुद्धि वाले पुरुष की भी बुद्धि यदि वह निर्धनी है, तो प्रतिदिन घृत, लवण, तैल, चावल, शाक तथा लकड़ी के चिन्ता के कारण नष्ट होती रहती है।

हे दारिद्र्य! तेरे लिये मैं नमस्कार करता हूं क्यूंकि तेरी प्रसन्नता से मेरा कार्य सिद्ध हो गया है। मैं सारे संसार को देखता हूं, संसार मुझे नहीं देखता।

रात्रि में घुटना सुखकारी है, दिन में सूर्य और दोनों सन्ध्याओं के समय अग्नि उपयोगी है। इस प्रकार से मैं ने जानु भानु तथा अग्नि से शीत (सरदी) को दूर कर दिया है।

क्या करूं! कहां जाऊं! किस दुरात्मा को प्राप्त होऊं! कठिनता से गुज़ारा करने से प्राणों ने भी हास्य किया है अर्थात् प्राण केवल हास्यास्पद हैं।

दरिद्रता के साथ २ यदि मूर्खता भी है तो दुःख की सीमा नहीं है। नरक में रहना अच्छा है बुरे आचार वाले गृह में

रहना श्रेष्ट नहीं, क्योंकि नरक में रहने से पापक्षीण होते हैं तथा दुश्चारित गृह में रहने से पाप बढ़ता ही चला जाता है।

जिस प्रकार मरते हुए पुरुष के कण्ठ में गदगदता मुख पर पसीना, पीलापना तथा कम्पन होता है उसी प्रकार मांगते हुए पुरुष में भी यह सब लक्षण होते हैं। पुत्र रहित पुरुष का गृह शून्य रहता है, और जिस का सज्जन वा मित्र नहीं है वह शून्य रहता है तथा मूर्ख के लिये सारी दिशाएं शून्य होती हैं, परन्तु दरिद्री पुरुष के लिये सब कुछ शून्य ही है।

दरिद्री पुरुष, पक्ष रहित पक्षी, सूखे बृक्ष, जलरहित सरोवर, तथा द्रंष्टा रहित सर्प के तुल्य लोक में होता है।

दरिद्रता से लज्जा को प्राप्त होता है, लज्जा युक्त अपने अधिकार से गिर जाता है, अधिकार से गिरे हुए का अपमान होता है, परिभव (तिरस्कार) से दुःख अनुभव करता है, दुःख से शोक करता है, शोक से मारा हुआ बुद्धि हीन हो जाता है और निर्बुद्धि नाश को प्राप्त होता है। इस प्रकार बड़े आश्चर्य से देखा जाता ह कि दारिद्रय ही सारी आपत्तियों का मूल है।

प्रश्न ।

१. सिद्ध करो कि श्रमियों के लिये अर्थ शास्त्र की सदा आवश्यकता है और आज कल विशेष आवश्यकता है ।

२. क्या कार्खाने अर्थ शास्त्र के अध्ययन के विना कामयाब हो सकते हैं ?

३. क्या राज्य कर्मचारियों को अर्थ शास्त्र की विशेष आवश्यकता है ?

४. प्रो० मार्शल के शब्दों में अर्थ शास्त्र के उद्देश बताओ ।

५ क्या तुम निर्धन जातियों के लिये अर्थ शास्त्र आवश्यक समझते हो ?

६. क्या तुम सभ्यता का मूल कारण धन सिद्ध कर सकते हो ?

७. क्या जातीयता के लिये भी अर्थ शास्त्र आवश्यक है ?

८. क्या भारत वर्ष अर्थशास्त्र के अज्ञान के कारण निर्धन होता जाता है ?

९. सिद्ध करो कि अर्थशास्त्र उच्च ज़रुरतों को और सारी जाति की शरीरिक ज़रुरतों की वृद्धि चाहता है ।

१०. धर्मपूर्वक धन कमाने की विधियां अर्थशास्त्र से पता लगती हैं और व्यापारिक जगत् में जो अन्याय या लूट मार हो रही हो–उसे अर्थशास्त्र प्रकाशित करता है–इस कथन की व्याख्या करो ।

११. प्रमाणों सहित सिद्ध करो कि प्राचीन आर्य्य अर्थ की महिमा को समझते थे।

निर्देश.

Cossa.—*Introduction to the Theory of Political Economy, part I, Chapter VII.*

Marshall.—*Principles of Economics, part I, chapter IV.*

Saligman.—*Economic Interpretation of History.*

Loria. do. do.

Rogers. do. do.

Encyclopaedia Britannica.—*Economics.*

व्याख्यानमाला—धन प्रशंसा

सुभाषित रत्न भाण्डागरम्—धन प्रशंसा, दरिद्रनिन्दा।

अध्याय ३

सम्पत्ति निरूपण।

सम्पत्ति शब्द का व्यापारिक संसार में इतना प्रचार नहीं जितना धन शब्द का है। परन्तु धन केवल रुपये पैसे का वाचक है, सम्पत्ति शब्द एक व्याप्त संज्ञा है जिस में रुपये पैसे के अतिरिक्त अन्य कई ऐसी वस्तुएं भी सम्मिलित हैं जिन के द्वारा एक जाति अपने सुख साधनों को बढ़ा सकती है। निस्सन्देह बहुत से मनुष्यों को सम्पत्ति का ज्ञान है, यद्यपि वे इसकी व्याख्या तर्क शास्त्रानुसार न कर सकते हों। किन्तु जो साधारण ज्ञान सम्पत्ति के विषय में है, प्रायः वह भ्रम मूलक है। अतः उसे भूल कर सम्पत्ति के विषय में अर्थ शास्त्र का निश्चित ज्ञान ही लेना चाहिये।

२ (क) सम्पत्ति का लक्षण—सम्पत्ति का लक्षण प्रत्येक विद्वान् ने भिन्न २ किया है। इस शब्द तथा पून्जी शब्द पर जो वाद विवाद हो चुका है, कदाचित् वह किसी अन्य शब्द की व्याख्या पर न हुआ होगा। इतना अवश्य है कि वाद विवाद लक्षण करने में नहीं किन्तु वैयक्तिक तथा जातीय सम्पत्ति की सूची बनाने में है। उदाहरणार्थ मिल साहब का लक्षण ले लेते हैं:—

वे सब उपयोगी तथा रोचक वस्तुएं सम्पत्ति कही जा सकती हैं जो श्रम तथा आत्मत्याग के बिना इष्ट मात्रा में प्राप्त न हो सकें। इस विचार को चित्र में यूं दिखला सकते हैं।

सम्पत्ति { आवश्यकताओं को पूर्ण करती है
श्रम से ही प्राप्त होती है।

(ख) उपर्युक्त लक्षण में बहुत से प्रश्न उपस्थित होते हैं, उदाहरणार्थः—

१—क्या सम्पत्ति शब्द प्राकृतिक (माद्दी चीज़ों) तथा अप्राकृतिक वस्तुओं का भी वाचक है?

२—क्या वे वस्तुएं अवश्यमेव चिरस्थायी वा संचित होने योग्य होनी चाहियें?

३—क्या श्रम सम्पत्ति का आवश्यक आधार है?

४—क्या सम्पत्ति की उत्पत्ति में आत्मत्याग स्वाभाविक होता है?

५—प्रत्येक मनुष्य को विदित है कि सम्पत्ति से सुख होता है। परन्तु क्या हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु जो सुखदायी तथा उपयोगी हैं, सम्पत्ति कही जा सकती है? पुत्र, कलत्र, पिता मातादी सम्बन्धियों का प्रेम, मित्रों का प्रेम तथा मान, सत्यात्मा, ऋजुता तथा वस्तु की सुन्दरता अनुभव

करने का मादा, यह सब सुखदायक हैं, परन्तु इन को कोई भी सम्पत्ति में नहीं गिनता। अतः प्रश्न होता है कि कौन २ सी सुखदायक वस्तुएं सम्पत्ति में सम्मिलित हैं?

६—क्या यह लक्षण जातीय (National) सम्पत्ति का है वा वैयक्तिक का?

७—क्या जातीय सम्पत्ति उन २ वस्तुओं का ही योग है जो कि भिन्न २ व्यक्तियों के पास हैं या उस के ब्यौरे में कुछ अन्य पदार्थ भी सम्मिलित हैं?

उपर्युक्त जो भिन्न २ प्रश्न किये गये हैं, उन से स्पष्ट है कि सम्पत्ति का लक्षण करना बड़ा कठिन है। किन्तु ऐसा विचार अशुद्ध है। लक्षण समझाने के लिये ही यह भिन्न २ प्रश्न किये हैं। उक्त लक्षण को पूरे तौर पर समझने के लिये पहिले पदार्थों का विभाग करना आवश्यक है।

(३) पदार्थ— जिस वस्तु से कोई ज़रूरत पूरी होती हो, उसे अर्थ शास्त्र की भाषा में पदार्थ कहते हैं।

अर्थ शास्त्र पदार्थों के कई प्रकार के वर्गीकरण करता है।

(४)(क)(निर्मूल्य)मुफ्त (free goods) तथा आर्थिक पदार्थ (Economic goods.)

(i) जिन वस्तुओं के उत्पन्न करने में मानुषी श्रम न लगा हो और जो किसी व्यक्ति विशेष के स्वत्व (मलकीयत) में न

आ गयी हों, अर्थात् प्रकृति माता ने दी हुई हैं और सर्वग्राही मनुष्य ने उन पर अधिकार नहीं जमा लिया, जिन्हें जिस किसी की इच्छा हो और जिस मात्रा में वह लेना चाहे, बिना रोक टोक के ले सके, व **निर्मूल्य पदार्थ** कहलाते हैं।

वायु, ताप, प्रकाश, जल, वायु का वाहन, समुद्र और समुद्र की लहरों की शक्तियां, वायु मण्डल का दबाव, समुद्र की मछलियां (जिन का कोई स्वामी न हो), कुछ बनों की लकड़ी, अमेरीका और आस्ट्रेलिया में कुछ ज़मीनें—ये सब पदार्थ मुफ़्त हैं। मनुष्य की आरम्भिक अवस्था में भूमि भी निर्मूल्य थी।

(ii) दूसरी ओर जो वस्तुएं मनुष्य की अवश्यकताओं को पूर्ण करती हैं, जो किसी के स्वत्व में आचुकी हैं, प्रायः श्रम का फल हैं और बेची व ख़रीदी जा सकती हैं, उन्हें **आर्थिक पदार्थ** कहते हैं, इन के साथ अर्थशास्त्र का घनिष्ट सम्बन्ध है, अतः इन की विस्तृत व्याख्या इस अध्याय में की जावेगी।

(५) (ख) प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक पदार्थः—इन दो प्रकार के पदार्थों को निम्न लिखित चित्रों में दिखाया जाता है। इन्हें सावधानी से स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि सम्पत्ति के लक्षण में हम ने जो सात प्रश्न किये हैं, उन के उत्तर देने में यह बहुत उपयोगी हैः[१]—

१—पदार्थों के अन्य दो वर्गीकरण भी अर्थ शास्त्र में प्रचलित हैंः—

I (क) बाह्य
- प्राकृतिक
  - दत्त (Transferable)
  - अदत्त (Non-Transferable)
- अप्राकृतिक
  - दत्त
  - अदत्त

(ग) प्राकृतिक पदार्थ दो प्रकार के हैं: नश्वर तथा स्थायी। (i) पेय और खाद्य वस्तुओं के समान जो आवश्यकता को पूर्ण करके नष्ट हो जावें, वे नश्वर पदार्थ हैं। (ii) वस्त्रा, भवनो, कलाओं की न्याई जो चिर काल तक बार २ आवश्यकताओं को पूर्ण करते रहें, उन्हें स्थायी पदार्थ कहते हैं। पदार्थों का यह भेद व्यय के विषय में उपयोगी होगा।

(घ) प्रयोग (इस्तेमाल) के विचार से प्राकृतिक पदार्थों के अन्य दो प्रकार बताए जाते हैं: खाने, पीने, पहनने वाली वस्तुओं के समान जो पदार्थ सीधे तौर पर हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं—उन्हें व्ययपदार्थ (Consumption Goods) कहते हैं॥

किन्तु औज़ारों, कलाओं और कच्चेमाल के समान जो अन्य पदार्थों को उत्पन्न करने के साधन बन कर आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, उन्हें उत्पादकपदार्थ (Production Goods) कहते हैं॥

(ख) अन्तरीय—अप्राकृतिक—अदत्त (Internal or Personal Non-Transferable goods)

उक्त चित्र को यूं भी लिख सकते हैं:—

II प्राकृतिक—बाह्य { दत्त / अदत्त }

अप्राकृतिक { बाह्य { दत्त / अदत्त } / अन्तरीय—अदत्त }
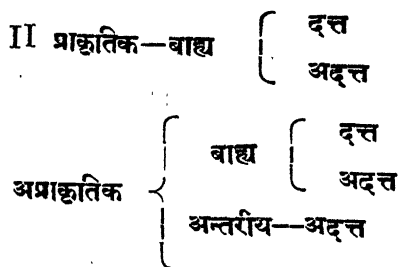
अब प्रत्येक प्रकार के पदार्थ की व्याख्या दी जाती है:—

६. प्राकृतिक बाह्य वस्तुओं में यह पदार्थ सम्मिलित हो सकते हैं:—

१. सर्व प्रकार की उपयोगी प्राकृतिक वस्तुएं ।

२. उन के उपयोग करने के वर्तमान तथा भविष्यत में सर्व अधिकार ।

इन दो समूहों में प्रकृति (भूमि, जल, वायु) के सर्व पदार्थ और इन से उत्पन्न लाभ शामिल हो जाते हैं, जैसे:-

(१) कृषि, शिल्प, खानिज के सर्व पदार्थ, वायु, ताप, प्रकाश, नदी नाले, जंगल, चरागाह, पर्वत, बाग़, कृषि योग्य भूमि, कानें, कारखाने, दुकानें, सड़कें, रेल, ट्रैमवे, तार, डाकघर,

टैलीफ़ोन, नहरें, जहाज़, बन्दरगाह, पालतू पशु पक्षि, सर्व प्रकार के औज़ार, भोजन, पेय पदार्थ, वस्त्र, मोती, रत्न, मकान तथा उन का सामान, मन्दिरादि, विद्यालय, पुस्तकें, शिल्पी पदार्थ, दास दासियां। कइयों के अनुसार यही पदार्थ ही सम्पत्ति हैं, अर्थात् प्राकृतिक बाह्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ सम्पत्ति में शामिल नहीं॥

(२) रहन (गिर्वी रखना) के अधिकार तथा अन्य कई दूसरी प्रकार के अधिकार जैसे पेटन्ट, कापी राइट, मार्का आदि,

(३) भिन्न प्रकार के कम्पनियों के हिस्से।

(४) सर्व प्रकार के एकाधिकार जैसे अफ़ीम, नमक, शराब बनाने का एकाधिकार भारत में राज्य ने लिया हुआ है।

(५) अच्छे दृश्यों अद्भुत शालाओं (अजाइब घरों), चिड़ियां घरों के देखने की आज्ञाएं। यह सब प्राकृतिक पदार्थों में सम्मिलित हैं। उक्त बाह्य पदार्थों में अदत्त पदार्थ यह कह सकते हैं:—

जलवायु—आबोहवा तथा प्रकाश के लाभ जो एक देश को हैं, वे दूसरे देश को नहीं दिये जा सकते—अतः वे लाभ अदत्त हैं। एवम् विशेष नगरों के नागरिक होने के अधिकार, विश्वविद्यालयों की ओर से मिली हुई उपाधियां (डिगरियां) दूसरों को नहीं दी जा सकतीं।

राज की ओर से जो एक पुरुष को अधिकार मिले हुए हों वे भी अदत्त हैं और साथ ही प्राकृतिक भी हैं ।

७. अप्राकृतिक वाह्य—

१. भिन्न प्रकार की शारीरिक सेवाएं जो श्रमियों और नौकरों से कराई जाती हैं ।

२. वैद्यों, गायकों, अध्यापकों, वकीलों, सैनिकों, पुलीस-मैन, पुरोहितों आदि की सेवाएं ।

३. वकील, वैद्य, (डाक्टर) व्यवसायपति (कार्खानेदार), व्यापारी और महन्तों की प्रतिष्ठा (Goodwill) ।

इन में पहिली प्रकार के पदार्थ दत्त हैं और दूसरी तथा तीसरी प्रकार के अदत्त हैं ।

* ८. अप्राकृतिक अन्तरीय—अदत्त पदार्थः—

मनुष्य के पास कर्म्म करने और भोग करने की जो शक्तियां तथा गुण विद्यमान हैं वे इस सूचि में आते हैं । यथाः—

१. व्यवसाय में कृतकृत्यता प्राप्त करने वा कामयाब होने की शक्ति ।

२. भिन्न २ प्रकार के हुनर ।

३. शारीरिक बल, स्वास्थ्य, सन्मान, प्रशंसा, प्रेम आदि के भाव ।

४. शुद्धाचार, धर्म्म, बुद्धि, सत्यपरायणता, दया, श्रम-प्रियता।

५. पठन और गान से आनन्द प्राप्त करने की शक्ति।

ये उपर्य्युक्त शक्तियां तथा गुण अप्राकृतिक–अन्तरीय हैं और स्वतः अदत्त हैं।

'स्वतः' शब्द इस लिये लिखा है कि कार्य्यरूप में आने से ये दत्त हो जाते हैं।

इस[1] प्रकार इस जगत् के जो पदार्थ हैं, उन्हें उदाहरणों सहित समझा दिया गया है। अब यह प्रश्न होता है कि उपर्य्युक्त गिनाए हुए सारे के सारे पदार्थ सम्पत्ति हैं या इनका कोई भाग सम्पत्ति है।

---

१. पदार्थों के सम्बन्ध में जो कुछ अब तक लिखा है, उसे अगले पृष्ट पर चित्र रूप में दिखाया जाता है:—

पदार्थ
निर्मूल्य
आर्थिक
प्राकृतिक
अप्राकृतिक
उत्पादक
व्यय
नश्वर
स्थायी
बाह्य
बाह्य
अन्तरीय
दत्त
अदत्त
दत्त
अदत्त
अदत्त

६. सम्पत्ति के तीन रूप।

इस प्रश्न का उत्तर ठीक तौर पर नहीं दिया जा सकता और सम्पत्ति के लक्षण में भी सदैव भ्रम रहेगा, यदि उस के तीन रूप पृथक् २ नहीं किये जावेंगे, सम्पत्ति के तीन प्रकार ये कह सकते हैं:—

१. वैयक्तिक

२. जातीय

३. सार्वभौम

१०. वैयक्तिक सम्पत्तिः—जो २ पदार्थ प्राकृतिक वाह्य और अप्राकृतिक वाह्य में गिने गये हैं, वे सब वैयक्तिक सम्पत्ति में शामिल हैं।

११. सेवाएं सम्पत्ति हैं:—हमारी सम्मति में सेवाएं भी धन के लक्षण में आ जाती हैं। कतिपय वैज्ञानिकों ने सेवाओं को सम्पत्ति नहीं कहा क्योंकि वे उनके अनुसार विनिमय साध्य नहीं, अर्थात् बेची और खरीदी नहीं जा सकतीं, और यह सम्पत्ति का मुख्य चिन्ह समझा जाता है। परन्तु यदि विचार किया जाय तो पता लगेगा कि यह विनिमय साध्य हैं। जब क का कोई कार्य्य ख कर देता है, तब क की वास्तविक वा कल्पित (मानी हुई) आवश्यकता पूरी होती है और ख को उस के बदले में धन का या कोई अन्य इष्ट लाभ होता है।

यह सेवाएं तो परम्परा से विशेषतथा अत्यन्त आर्थिक महिमा की रही हैं। पूर्व समय में दासों तथा अर्धदासत्व में पड़े पुरुषों से काम कराते थे। आज कल बहुत सा धन भिन्न २ प्रकार के नौकरों से काम लेने में व्यय होता है। अतः सेवाओं को सम्पत्ति की सूचि (Category) से नहीं निकाल सकते।

❀१२. हुनर वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं।

वैयक्तिक सम्पत्ति के उक्त लक्षण में वे पदार्थ जो बाह्य प्राकृतिक और बाह्य अप्राकृतिक पदार्थों में हम बता आये हैं–अधिकतर–सम्मिलित हैं। केवल अन्तरीय–अप्राकृतिक पदार्थ चाहे वे विनिमय साध्य हों–इस लक्षण में सम्मिलित नहीं। किञ्चिद् दृष्टि देने से पता लगेगा कि जब कोई पुरुष अपनी सम्पत्ति की सूची बनाता है, तो उस समय वह अपने शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बलों का धन सम्मिलित नहीं करता। और यह ठीक भी है क्योंकि यह भिन्न २ बल स्वयं सम्पत्ति नहीं. परन्तु दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जब ये बल लगाये जाते हैं, अर्थात् जब सेवायें कार्य्यरूप में आजाती हैं, तो वे धन लाने वाली बनती हैं। यदि उन बलों के लिये लोगों की आवश्यकता गुम हो जावे वा कम हो जावे, तो गुण धन नहीं ला सकेंगे वा थोड़ा धन लावेंगे। वकील की योग्यता, वैद्य, हकीम, गायक, अध्यापक, नट, भांड के हुनर धन नहीं। यथा, यदि अपनी पंचायतें बना कर भारतीय उन में अपने

अभियोगों (मुक़द्दमों) का निर्णय करें, यदि योरुपीय औषधियों को छोड़ कर अपनी आयुर्वैदिक औषधियों को भारतीय लोग प्रयोग में लावें, यदि धन नाशक नाटकों में जाना छोड़ दें, तो ऊपर वर्णित हुनरों की कोई क़ीमत प्रायः नहीं रहेगी। अतः हुनर (skill) सम्पत्ति नहीं हो सकती। कई वैज्ञानिक इस पर व्यर्थ बल देते हैं। हां, इसे गुप्त वैयक्तिक धन कह सकते हैं।

But Potentiality is not actuality, it may or may not become actuality and when it does not become actuality, it is not wealth.

किन्तु जो वस्तु गुप्त है, वह व्यक्त नहीं। वह समयान्तर में व्यक्त हो सकती है और नहीं भी हो सकती, अतः जब तक वह व्यक्त न हो, तब तक सम्पत्ति भी नहीं कहला सकती।

निस्सन्देह हुनर व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक जाति की आय का बड़ा भाग इसी हुनर से उत्पन्न होता है। अतः स्पष्ट हुआ कि

वैयक्तिक सम्पत्ति = { प्राकृतिक पदार्थ—जो ख़रीदे और बेचे जा सकते हैं। / अप्राकृतिक पदार्थ=सेवाएं।

वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं किन्तु जातीय सम्पत्ति हैं। { मुफ्त पदार्थ-(जल, वायु, नदी, पर्वत, प्रकाश) / वैयक्तिक हुनर।

१३. जातीय सम्पत्ति

सब प्रकार की प्राकृतिक और पब्लिक जायदाद—जैसे जल, वायु, ताप, सड़कें, पुलें, नहरें, राज्य की रेलें, डाक घर, तार घर, राज्य के नाना प्रकार के मकान, शिक्षा भवन, नाटक घर, चित्रशाला, अद्भुतालय, बाग़, गैस, जल और विद्युत् के कार्ख़ाने—जातीय सम्पत्ति के यह पदार्थ वैयक्तिक सम्पत्ति से अधिक हैं।

यद्यपि नदी, नाले, प्रकृति माता ने मुफ़्त में दिये होते हैं, तथापि एक जाति के लिये वे बहु उपयोगी होते हैं। उन का मूल्य तब ज्ञात होता है, जब कोटि रूपये लगा कर कृत्रिम नहरें बनाई जाती हैं। प्रो० मार्शल टैम्ज़ नदी को इंग्लैण्ड की सम्पत्ति में गिनते हैं।

(क) जिन देशों में नदी नाले कम हैं, वहां कम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और जहां सर्वथा नहीं जैसे अफ्रीका के सहरा में, वहां जीवों का वास नहीं होता। इन्हीं के द्वारा अब तक भूमियों को सींचा जाता, पनचक्कियां चलाई

Keynes has truly remarked, "In any correct estimate of the productive resources of a country, the normal and acquired abilities of its inhabitants may occupy a position of the greatest importance".

जाती रही है और देशों में व्यापार बढ़ा है । नदियों के तटों पर ही सभ्यता का विकास हुआ है । संसार के सब बड़े २ नगर नदियों के किनारों पर स्थित हैं । अतः प्रत्येक देश के नदी नालों को उसकी सम्पत्ति में अवश्य गिनना चाहिये, क्योंकि समय आने वाला है कि नदियों के प्रवाह से विद्युत् निकाल कर काम लिया जाया करेगा । चैली महाशय ने कनाडा की नदियों की शक्ति जो कि प्रयोग में लाई जा सकती है—उस का हिसाब लगाया है। भारत में भी काश्मीर नरेश ने जेहलम की एक नहर निकाल कर रामपुर में विद्युत् निकालने का प्रबन्ध किया है, जिस से रेल चलेगी । जिस देश में नदियां और प्रपात अधिक होंगे—वह देश अन्य देशों से अधिक समृद्ध हो सकता है ।

(ख) जो देश द्वीप वा प्रायद्वीप हैं, वे देश अन्य देशों से अधिक समृद्ध हो सकते हैं। जब समुद्र के किनारे अच्छे २ बन्दरगाह हों—जहां कि जहाज़ सुरक्षित रह सकें, तो वह देश अधिक समृद्ध हो सकता है ।

यत्न हो रहा है कि समुद्र की लहरों से विद्युत उत्पन्न की जावे । जर्मनी देश में हम्बर्ग के प्रान्त में और कैल्ल हेवन

में लहरों से विद्युत पैदा करने, बरफ़ जमाने और वायु को द्रवीभूत करने के लिये कम्पनियें बनाई गई हैं। इस कारण अन्य असामुद्रिक देश—जैसे तुर्किस्तान—हानि में रहेंगे। जर्मन वैज्ञानिक अप्राकृतिक पदार्थों को भी जातीय सम्पत्ति बताते हैं। यथा:—

(ग) विज्ञान, यान्त्रिक (मैकेनिकल) आविष्कार, साहित्य, कला कौशल, और गान विद्या तथा अन्य पदार्थ जो अन्य देशों में लाभकारी न हों।

(घ) साहित्य की जो पुस्तकें अन्य भाषाओं में अनुवाद करने से ख़राब हो जाती हैं—वे जातीय धन हैं।

(ङ) सुप्रबन्धयुक्त राज्य भी जातीय सम्पत्ति का एक भाग कहा जा सकता है।

(च) अच्छा धन—विभाग भी जातीय धन की वृद्धि करने वाला होता है।

(छ) महाशय पैटी ने जातीय सम्पत्ति में देश निवासियों का मूल्य भी लगाया है। और निकल्सन ने संयुक्त राज United Kingdom के मनुष्यों की कीमत ४७०००००००००=४७ अरब पाऊन्ड लगायी है। यद्यपि मार्शल इस गणना के विरुद्ध है तथापि सन्देह नहीं कि सुशक्ति सम्पन्न प्रवासी

जन जिस देश में जा कर रहते हैं, उस देश के धन को बढ़ाते हैं। अतः जातीय सम्पत्ति में देश निवासियों का मूल्य लगाना उचित है।

(ज) दुकान की साख और व्यापारिक प्रसिद्धि भी एक प्रकार की जातीय सम्पत्ति है। व्यापारिक प्रसिद्धि जैसे कि प्रत्येक दुकान पर की (good will) विश्वास पात्रता होती है वैसे ही एक नगर तथा देश की अपनी २ विश्वास पात्रता है। अतः जातीय सम्पत्ति को गिनते हुए नगरों की व्यापारिक प्रसिद्धि भी गिननी चाहिये। व्यापारिक प्रसिद्धि एक अन्य विचार से भी जातीय सम्पत्ति कहलाई जा सकती है। आज कल संसार का व्यापारिक केन्द्र लन्दन बना हुआ है। वहां सम्पूर्ण संसार की जातियों के लेन देन होते हैं। लन्दन मुफ़्त लाभ खाता है, पहिले यह लाभ पेरिस में होता था। ढाके की मलमल, काश्मीर की शालें, बनारस के रेशमी वस्त्र, देहली का सिल्मा सितारा–यह व्यापारिक प्रसिद्धि के प्रमाण हैं।

(झ) सिक्का तथा देश का सराफ़ा (Credit organisation) जातीय सम्पत्ति में गिना जाना चाहिये। इस को अभी नहीं समझाया जा सकता।

१४. सार्वभौमिक सम्पत्ति.

जिस प्रकार नदी नाले जातीय सम्पत्ति का एक प्रधान अङ्ग हैं, वैसे ही समुद्र सार्वभौमिक सम्पत्ति का एक प्रधान अङ्ग हैं। इस में व्यक्तियों तथा जातियों की सम्पत्ति तो शामिल ही है-अतः सारी भूमि की सब जातियों की सम्पत्तियों तथा समुद्ररूपी सम्पत्ति के योग करने से सार्वभौमिक सम्पत्ति का अनुमान लग सकता है। जातियों ने जो एक दूसरे के ऋण देने होते हैं-उन की कटौती कर लेनी चाहिये।

❀१५. उत्पादक शिल्प (हुनर):—

यह ज्ञात है कि हुनर तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बलों के द्वारा धन उत्पन्न हो सकता है। जो मनुष्य उन को धारण करते हैं, वे अनुत्पादक नहीं हो सकते। अतः कई अर्थशास्त्रज्ञों का यह विचार अशुद्ध है कि वे अनुत्पादक हैं। सेवा करने योग्य वा विचार उत्पन्न करने में शक्ति शाली होने के लिये भी मनुष्य के पास कुछ स्वाभाविक गुण होने चाहियें। उन गुणों की वृद्धि के लिये उस को वैसा ही यत्न करना पड़ता है जैसा कि कृषक को भूमि के ठीक करने में करना होता है। उन गुणों की उपलब्धि में केवल धन का ही व्यय नहीं करना पड़ता, किन्तु फल की भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अतः गुणों के एकत्रित करने में श्रम और पूंजी का व्यय

होता है। गुणों और विचारों के धारण कर्त्ताओं को उत्पादक ही समझना चाहिये, नहीं तो सब प्रकार का विज्ञान तथा कला कौशल अनुत्पादक हो जावेगा।

संसार में देखने से पता लगता है कि वैयक्तिक तथा जातीय उन्नति का आधार इन्हीं गुणों, बलों और विचारों पर निर्भर है। व्यापारिक जातियों की उत्पादक शक्ति अधिकतर ज्ञान और आचार की वृद्धि पर है न कि प्राकृतिक पूंजी पर। इस बात को लिस्ट महाशय ने बड़ी उत्तमता से दिखाया है। वह कहते हैं कि जातियों की वर्त्तमान दशा उन सब सन्ततियों के यत्नों, पूर्णताओं, वृद्धियों, आविष्कारों के ही सञ्चय का परिणाम है जो कि हम से पूर्व हो चुके हैं। यह उपर्य्युक्त बातें वर्त्तमान मानव जाति की मानसिक पूंजी हैं। विचार करने से भी स्पष्टतया पता लगेगा कि जातियों का अधःपतन और सम्पत्तियों का नाश प्राकृतिक पूंजी के नाश से नहीं होता, किन्तु मानसिक और आत्मिक पूंजी के नाश से होता है।

१६. सम्पत्ति का वास्तविक तत्व।

सम्पत्ति की इतनी व्याख्या के पश्चात् पाठक स्वयम् ही दूसरे प्रकरण में उठाये हुए प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा, किन्तु उस के सुभीता के लिये यहां पर हम कुछ २ संकेत कर देते हैं:—

(१) अप्राकृतिक वस्तुएं भी सम्पत्ति हो सकती हैं, यदि वे बाह्य और आर्थिक पदार्थ हों।

(२) नश्वर पदार्थ भी सम्पत्ति हो सकते हैं।

(३) एक पदार्थ वैयक्तिक सम्पत्ति हो—इस के लिये श्रम सम्पूर्णतया आवश्यक गुण नहीं। आकाश से गिरा हुआ लोहा और सोना चान्दी भी यद्यपि वे किसी व्यक्ति विशेष या उस के पिता, पितामहा के श्रम का फल नहीं—स्वत्व में आने और रोचक होने के कारण तथा बाज़ार में बिक सकने-विनिमय साध्य होने के कारण सम्पत्ति हो जाते हैं।

आज कल दूसरे लोकों से गिरे हुए पत्थर आदि विज्ञान और कौतूहल की सन्तुष्टि के लिये बहुत सा धन दे कर प्राप्त किये जाते हैं—एवम्, भूमि, वनों, कानों, मच्छली तथा मोती निकालने के स्थानों, विशेष २ चश्मों, पर्वतों, नालों आदि को मनुष्य ने पैदा नहीं किया, व पदार्थ प्रकृति ने मानव जाति को मुफ़्त दिये ह किन्तु सहस्रों वर्षों से यह पदार्थ आर्थिक बन गये हैं। विशेष २ मनुष्यों व राजाओं ने इन पर स्वत्व कर लिया ह—अतः श्रम का फल न होते हुए भी वे सम्पत्ति हैं।

ऐसा होते हुए भी प्रायः आर्थिक पदार्थ श्रम का ही फल होते हैं।

४. पदार्थ परिमित अवश्य होना चाहिये ।

किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि वे पदार्थ जितनी मात्रा में कोई पुरुष चाहे उतनी मात्रा में नहीं मिल सकते, अतः लक्षण में दोष नहीं । इष्टमात्रा में प्राप्त न हो सकने के शब्दों के कारण वायु जलादि जैसे निर्मूल्य पदार्थ वैयक्तिक सम्पत्ति में नहीं गिने जाते । अतः दुर्लभता सम्पत्ति का विशेष गुण है—मांग की अपेक्षा वस्तु परिमित्त होती है । इसी कारण आज कल के बड़े नगरों में जल तथा वायु भी आर्थिक पदार्थ हो गये हैं—यह दोनो पदार्थ वस्तुतः बेचे जाते हैं। जहां जहां नलकों द्वारा जल दिया जाता है, वहां २ जल का मूल्य है। भारत के नगरों में भी वस्तुतः जल का मूल्य समझना चाहिये। कूपों के बनाने में सहस्रों रुपैये लगे हैं, यदि यह धन दानी पुरुषों की ओर से लगा हुआ न होता, तो कूप पर पानी भरने के लिये भी कुच्छ महसूल देना पड़ता ।

एवम्, घरों, कार्खानों और दफ़तरों में शुद्ध वायु पहुंचाने के लिये धन व्यय हो रहा है। आज कल की सभ्यता में यह व्यय उत्तरोत्तर बढ़ता जावेगा ।

जब कोई रोचक पदार्थ विना श्रम के इष्ट मात्रा में न मिल सकता हो, तो सम्पत्ति के उत्पन्न करने में आत्मत्याग होता

ही है। श्रम से सदैव कष्ट होता है-अतः आत्मत्याग होता है। धनियों की सन्तान को विना श्रम किये धन मिल जाता है, किन्तु उस धन को कमाने में अवश्य श्रम किया गया होगा। भिक्षुक और चोर व ठग भी विना श्रम के सम्पात्ति पैदा नहीं कर सकते।

प्रेम आदि गुण सम्पत्ति नहीं

(५) माता पिता आदिकों का प्रेम सम्पात्ति नहीं और न ही निर्मूल्य पदार्थ यद्यपि वे सुखदायक हैं, वैयक्तिक सम्पत्ति हैं। सब प्राकृतिक और अप्राकृतिक बाह्य आर्थिक पदार्थ वैयक्तिक सम्पत्ति में शामिल हैं।

(६) मिल दत्त लक्षण वैयक्तिक सम्पात्ति का है।

(७) जातीय सम्पत्ति में व्यक्तियों की सम्पत्ति के अतिरिक्त सर्व प्रकार की जायदाद जो नागरिक, प्रान्तिक तथा राष्ट्रिक राज्यों के पास होती हैं, तथा अन्य कई पदार्थ जो न तो जाति के सभ्यों की मलकीयत हों और न ही किसी अन्य जाति के पास वैसे सामान उपस्थित हों जैसे विशेष जल वायु, साहित्य, आविष्कार आदि-वे भी जातीय सम्पत्ति में शामिल होते हैं।

१७. महाशय कीन ने सम्पत्ति का यह लक्षण दिया है:—

Wealth consists of all potentially exchangable means of satisfying human needs.

मानुषिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जो शक्ति गर्भित (potentially) विनिमय-साध्य साधन हैं-उन का नाम सम्पत्ति है।

Potential=शक्ति गर्भित शब्द लगाने से सम्पत्ति में केवल बाह्य प्राकृतिक वस्तुएं ही नहीं रहतीं, जैसा पैरे ३ में कहा गया है किन्तु सर्व प्रकार की सेवाएं भी सम्पत्ति में सम्मिलित हो जाती हैं।

विनिमय साध्य—वह पदार्थ कहलाता है जो ख़रीदा और बेचा जावे, उस में तीन गुण अवश्य उपस्थित होते हैं:

(१) वह उपयोगी और रोचक होता है।

(२) उस की मात्रा परिमित्त होती है—प्रकाश जल वायु की भान्ति अपरिमित्त नहीं होता, अर्थात् इष्ट मात्रा में नहीं मिल सकता।

(३) उस का बदला किया जा सकता है, जैसे गेहूं, दूध वा लकड़ी रुपैया पैसा दे कर दुकान्दार से ली जाती हैं, वा सब प्रकार की सेवाएं ख़रीदी जाती हैं।

१८. जातीय सम्पत्ति का व्यौरा.

अन्त में हम संयुक्त प्रान्त अमैरीका की जातीय सम्पत्ति का अनुमान देते हैं ताकि पाठकों को जातीय सम्पत्ति के रूप ज्ञात हो जावें और साथ ही यह भी ज्ञात हो जाव कि केवल नकदी वा सोना चान्दी प्रत्येक देश की सम्पात्ति का बिल्कुल तुच्छ भाग होते हैं। भारतवर्ष की सम्पत्ति का कोई ऐसा व्यौरा नहीं, इस कारण एक विदेश का व्यौरा दिया जाता है।

१९०० और १९०४ में सम्पति का अनुमान.

सम्पत्ति के रूप।	१९०४	१९००
	डालर=३रु०-२-०	डालर=३-२-०
भूमि, मकान आदि (जिन पर कर लगा है)	५५५१०२२८०५७	४६३२४८३९२३४
भूमि, मकानादि (जिन पर कर नहीं)	६८३१२४४५७०	६२१२७८८९३०
पशु	४०७३७९१७३६	३३०६४७३२७८
कृषि के औज़ार तथा कलाएं	८४४६८६८६३	७४९७७५९७०
शिल्प की कला और औज़ार	३२९७७५४१८०	२५४१०४६६३१
बड़ी २ रेलों के सब सामान	११२४४७५२०००	१०३५७३२०००

सम्पत्ति के रूप।	१९०४	१९००
	डालर=३-२-०	डालर=३-२-०
बाज़ारों की रेलें	२२१९९६६०००	१५७६१९७१९०
तार घर	२२७४०००००	२११६५००००
टैलीफ़ोन	५८५८४००००	४००३२४०००
रथ, गाड़ी आदि	१२३००००००	९८८३६६००
जहाज़ और नहरें	८४६४८९८०४	५३७८४९४७८
निज के नदी नाले	२७५००००००	२६७७५२४६८
निज की विद्युत और गैस की कम्पनियां	५६२८५११०५	४०२६१८६५३
कृषि जन्य पदार्थ	१८९९३७९६५२	१४५५०६१३२३
शिल्प पदार्थ	७४०९२९१६६८	६०८७१५११०८
आयात माल	४९५५४३६८५	४२४९७०५९२
खनिज पदार्थ	४०८०६६७८७	३२६८५१५१७
वस्त्र भूषणादि	२५००००००००	२०००००००००
सजावट का सामान तथा भिन्न	५७५०००००००	४८८०००००००
सोना चांदी तथा नकदी	१९९८६०३३०३	१६७७३७९८२५
	१०७१०४१९२४१०	८८५१७३०६७७५

अध्याय का संक्षेप

प्रश्नों के रूप में।

१. धन और सम्पत्ति का क्या भेद है ?

२. मिल साहब के दिये हुए सम्पत्ति के लक्षण पर क्या आक्षेप हो सकते हैं ?

३. अर्थ शास्त्र में **पदार्थ** किसे कहते हैं ?

४. निर्मूल्य और आर्थिक पदार्थों का उदाहरणों सहित भेद करो।

५. प्राकृतिक व अप्राकृतिक पदार्थों का ब्यौरे वार चित्र क्या है ?

६. नश्वर और स्थायी, व्यय तथा उत्पत्ति पदार्थों के उदाहरण दो।

७. शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सेवाओं के उदाहरण दो और बताओ कि सेवाओं को सम्पत्ति क्यों कहें ?

८. क्या अन्तरीय—अदत्त पदार्थ वैयक्तिक सम्पत्ति हैं ? जातीय सम्पत्ति की सूचि में इन्हें क्यों रखें ?

९. तीन प्रकार की सम्पत्ति की व्याख्या करो।

१०. क्या नट, गायक, सैनिक, व्यापारी, अध्यापक, लोहार के हुनर उत्पादक हैं ?

११. सिद्ध करो कि श्रम से उत्पन्न न हो कर भी कई पदार्थ सम्पत्ति होते हैं।

१२. 'सम्पत्ति प्राकृतिक तथा विनिमय साध्य वस्तुओं का नाम है'—सम्पत्ति के इस लक्षण में दोष बताओ।

१३. सिद्ध करो कि जितने अधिक आर्थिक पदार्थ किसी जाति के पास हों वह उतनी कम स्मृद्ध होती है।

निर्देश

1. **Marshall.** *Principles of Economics, Book II.*
2. **J. S. Mill.** *Principles of Political Economy, Preliminary Remarks.*
3. **Keynes.** *Scope and Method of Political Economy, Chapter IV.*
4. **J. B. Clark.** *The Philosophy of wealth, Chapters I and III.*
5. *Encyclopaedia Britannica. Wealth.*
6. *Daily Mail Year Book.*
7. **Palgrave.** *Dictionary of Political Economy. Wealth.*
8. **F. W. Taussig.** *Principles of Economics, Chapter I.*

अध्याय ४।

आर्थिक जीवन की उन्नति।

१ आर्थिक यत्न।

अब तक हम यह दिखा चुके हैं कि अर्थशास्त्र कौनसी विद्या है, उस का दूसरी विद्याओं के साथ क्या सम्बन्ध है, उस शास्त्र की क्या २ महानता, आवश्यकता और लीला है, अर्थ तथा सम्पत्ति में क्या भेद है और सम्पत्ति कितने प्रकार की होती है। तीसरे अध्याय में बताया गया था कि जो पदार्थ उपयोगी वा रोचक होते हुए श्रम और आत्म-त्याग के बिना यथेष्ट मात्रा में प्राप्त न हो सकें—वे सम्पत्ति कहलाते हैं। यहां पर श्रम के प्रकार पर विचार किया जायेगा। श्रम के स्थान पर यदि आर्थिक यत्न शब्द प्रयुक्त करें, तो बेहतर होगा, क्योंकि मज़दूरी पेशा लोगों की मेहनत को श्रम कहना अभीष्ट प्रतीत होता है।

२ अर्थशास्त्र का आधार आवश्यकता और यत्न पर है।

यह भी बताया जा चुका है कि आर्थिक कर्मों का मौलक कारण नर नारी की आवश्यकता है। यदि उन की ज़रूरतें न हों, तो उन ज़रूरतों को रफ़ा करने के साधन ही वे क्यों उपयुक्त करेंगे? पर्वतों की कन्दराओं में कुछ ऐसे योगी जन स्यात् अब भी हों जिन का जल वायु पर निर्वाह हो। उन की कोई ज़रूरत नहीं, वे अपनी आत्मा की सत्ता पर जीते हैं, अतः संसार की कोई चीज़ उन के लिये उपयोगी नहीं, संसार में उन का कोई बन्धु और मित्र नहीं, अतः किसी के लिये उन को यत्न नहीं करना पड़ता। किन्तु आज कल के नगरों और ग्रामों में वास करने वाले लोगों की हज़ारों जरूरतें हैं, वे यत्न करने से पूरी होती हैं। अतः स्पष्ट है कि आवश्यकतायें यत्न कराती हैं ताकि उन यत्नों के फल से ज़रूरतें रफ़ा हों। जितनी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक ज़रूरतें अधिक हों, यत्न भी उतने अधिक करने पड़ते हैं। बस यही विचार अर्थशास्त्र का आधार है, इसी नींव पर उस का विशाल भवन बनाया जाता है।

३ आवश्यकताओं और यत्नों का सम्बन्ध गुप्त है।

आज कल के व्यवसायिक जीवन पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तब ज़रूरतों, यत्नों और उन ज़रूरतों के रफ़ा होने का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता। लाहौर की अनारकली में जाइये, वहां औषधियों, घड़ियों, कुर्सियों, वस्त्रों, बूटों और मिञ्जारी वालों की दुकानें दृष्टि गोचर होवेंगी।

इन दुकानदारों को स्वयं यह पदार्थ प्रायः नहीं चाहियें, किन्तु यह लोग अन्यों के लिये वे पदार्थ बनाते और बेचते हैं। इन दुकानदारों को खाने, पीने और पहिनने वाली वस्तुओं की ज़रूरत थी, अतः चाहिये था कि उन के लिये सीधा यत्न करते, परन्तु उन में से कोई भी खाने पीने की वस्तुएं नहीं बना रहा। एवं लोहार, तरखान, मेमार जो कुछ बनाते हैं, उस से उन की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं होतीं। अतः उक्त कथन का तत्व क्या है? यह कि नर नारी एक दूसरे के आश्रय पर भिन्न २ काम कर रहे हैं—नानबाई रोटीयां पकाता रहता है ताकि पकी हुई रोटी लोहार, मेमार, तरखान आदि ले जावें। लोहार सारा दिन लोहारी क्यों करता है? इसलिये की उसे विश्वास है कि उस की बनी हुई वस्तुओं जैसे तवों, चिमटों, करछियों, चाकुओं, कैंचिओं, मेखों, पेचों, नालों और तालों की लोगों को

आवश्यकता है। आज कल नर नारी एक ही काम में प्रायः लगे रहते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये दूसरों पर निर्भर हैं। इस विचित्र घटना का विस्तृत वर्णन तो अगले अध्यायों में किया जायेगा किन्तु यहां पर यह कहना अभीष्ट है कि बड़े २ नगरों में जो आप पेशों का अन्तर देखते हैं वह भारतवर्ष के सब स्थानों में ऐसा नहीं पाया जाता है और नाहीं सदैव ऐसा अन्तर था। ऐसी जातियां थीं और हैं कि जिन में प्रत्येक पुरुष वा कुटुम्ब अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने वाले सब सामान आप पैदा करते थे और करते हैं। ऐसी अवस्था से आज कल के बड़े नगरों की अवस्था में जब कि कोई पुरुष अपने लिये विशेष पदार्थ पैदा नहीं करता, बल्कि अन्यों के लिये ही पैदा करता है—घोर अन्तर आगया है। इस के कुछ क्रम यहां दिखाए जाते हैं।

४. पहिला क्रम. प्रत्यक्ष यत्न

असभ्य दशा में ज़रूरतों और उन को रफ़ा करने वाले यत्नों में सीधा सम्बन्ध होता है।

(क) यद्यपि असभ्यों की ज़रूरतें बहुत ही कम होती हैं, तथापि उन की पूर्ति के बिना उन की जीवन यात्रा नहीं हो सक्ती। इस कारण अपनी क्षुधा और पिपासा मिटाने के लिये वे यत्न करते हैं—पशुओं को मारते हैं, वा एक दूसरे को मार कर खा जाते हैं। वा कन्द मूल फल फूल खा कर गुज़ारा कर लेते हैं।

(ख) प्रकृति माता की उदारता वा अनुदारता पर उन की ज़रूरतों के रफ़ा होने का आधार है। जब कन्द मूल फल फूलों की अधिकता होती है, तो पेट भर कर भोजन खा लेते हैं। किन्तु जिस ऋतु और वर्ष में उन की कमी होती है, उस में भूखे मरते हैं, क्योंकि ऐसे दुष्काल में शिकार भी कम मिल सकता है।

(ग) वे लोग भूत प्रेतों का बहुत प्रभाव मानते हैं और समय २ पर उनको रिझाने के लिये बलि भी चढ़ाते हैं।

(घ) भावी का उन को कोई विचार नहीं होता। यदि कभी अधिक भोजन मिल जावे, तो सुरक्षित नहीं रखते और सुरक्षित रखने के उन के पास कोई सामान भी नहीं होते!

(ङ) उन की आबादी बहुत थोड़ी होती है, क्योंकि उक्त प्रकार के अनिश्चित और न्यून भोजन से आबादी नहीं बढ़ा करती।

(च) भूमि में निज जायदाद की रीति उन में नहीं होती। केवल खाने, पीने और पहिंनने के पदार्थों में निज जायदाद का अधिकार माना जाता है॥

(छ) पेशों की भिन्नता वा श्रम विभाग नहीं पाया जाता—सब लोग भोजन प्राप्ति के लिये समान काम करते हैं॥

(ज) व्यापार और व्यवसाय का तो अभाव होना ही चाहिये॥

आर्थिक जीवन के प्रथमक्रम के प्रधान चिन्ह यही हैं कि आवश्यकता के अनुभव होने पर यत्न किया जाता है और उस यत्न से सीधे तौर पर आवश्यकता पूर्ण हो जाती है।

प्रथमक्रम

आवश्यकतायें—यत्न—आवश्यकताओं की पूर्ति.

यह तो प्रत्यक्ष यत्न का उदाहरण हुआ। अब हम अप्रत्यक्ष यत्नों की व्याख्या करते हैं।

५—दूसरा क्रम—अप्रत्यक्ष यत्न

कल्पना करो कि एक हबशी के पैर में चोट लग गई, इस कारण वह शिकार खेलने वा कन्द मूल चुनने नहीं जा सकता। अब या तो वह भूखा मरेगा या उसकी जाति के कोई लोग उसके लिये भोजन लायेंगे। क्योंकि हर एक आदमी कभी न कभी रोगी होता है, इस विचार से हबशी लोग अपने रोगी मित्रों के लिये भोजन ला ही देते हैं। अब यह सम्भव है कि जो हबशी चलने के योग्य नहीं, वह अपनी कन्दरा में बैठा हुआ शिकार खेलने के अस्त्र शस्त्र बनाने और भोजन लाने वालों को वे हथियार दे देवे। यह अप्रत्यक्ष यत्न है—भोजन, यत्न करने से सीधे तौर पर प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि अदला बदला हो कर प्राप्त हुआ है। कई दिनों तक हथियार बनाने का

काम करने से उस हबशी को यह तत्व शायद समझ में आजावे कि म अन्यों की अपेक्षा हथियार शीघ्र बना सकता हूं और वे मेरे लिये भोजन भी लाते हैं, इस लिये यदि वे लोग मान लेवें, तो मैं बैठा हुआ उन के लिये हथियार बनाया करूं और वे मेरे लिये भोजन लाया करें। यदि ऐसा होजावे, तो अप्रत्यक्ष यत्न की रीति बढ़ती जायेगी। ज्यों २ एक जाति में ऐसा यत्न बढ़ता है, त्यों २ उस में पेशों की भिन्नता वा श्रम विभाग भी बढ़ता है। सभ्यता का अंकुर खूब फूटने और बढ़ने लगता है। नर नारियों की आवश्यकताएं भी बढ़ने लगती हैं और उनको अपने यत्नों का फल भी उत्तरोत्तर अधिक मिलता है। यह उन्नति का दूसरा क्रम हुआ। इस में यत्न से सीधे तौर पर ज़रूरत पूरी नहीं होती, बल्कि किसी दूसरे की बनी हुई वस्तु से अदला बदला वा विनिमय करने से ज़रूरत पूरी होती है।

दूसरा क्रम

आवश्यकता—यत्न⁀आवश्यकता की पूर्ति.

६—तीसरा क्रम. व्यवसायिक समूह।

उन्नति का तीसरा क्रम उन जातियों में पाया जाता है जिन्हों ने कला कौशल में कुछ उन्नति कर ली हो। जिन के

सभ्य एक दूसरे के लिये पदार्थ पैदा करते वा बनाते हों, अर्थात् प्रत्येक मनुष्य अपने लिये पदार्थ बना कर ज़रूरत रफ़ा न कर लेता हो; जिन्हों ने श्रम विभाग के कुछ लाभ समझ लिये हों, अर्थात् अन्यों के साथ अपने यत्नों का फल मिला कर काम करने की विधि सीख ली हो। अतः दूसरे और तीसरे क्रमों के यत्नों में यह भेद हुआ कि दूसरे क्रम में यदि एक बढ़ई ने किशती बनानी होती, तो उसके लिये स्वयम् बृक्ष काटता, उस का छिलका उतारता, उसके तख़ते बनाता, अन्ततः किशती रूप में उन्हें जोड़ देता। हमारे देश के कई ग्रामों में कृषक लोग हल, चारपाई, कुटिया आदि बनाने के लिये सब काम खुद कर लेते हैं। परन्तु तीसरे क्रम में काम की विधि यह होती है:—

(i) एक पुरुष बृक्ष काटता।

(ii) दूसरा पुरुष छिलके उतारता।

(iii) तीसरा पुरुष तख़ते बनाता।

(iv) चौथा पुरुष किशती बनाता।

अर्थात् चार प्रकार की मेहनत वाले पुरुष अपने २ यत्नों को मिला कर किशती बना सकते हैं।

७.बान्ट का गोरखधन्दा—अब मान लीजिये कि उक्त चार पुरुषों ने किशती बना ली। प्रश्न यह है कि उक्त चारों में से किस की वह किशती है? क्या चारों का उस पर अधिकार

होना चाहिये ? क्या प्रत्येक का समान अधिकार है वा न्यूनाधिक ? अतः प्रकट है कि किश्ती के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने से पूर्व उन को एक गोरखधन्दे का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि एक पुरुष कहेगा कि मैं ने सब से अधिक घन्टे काम किया है, दूसरा कहेगा कि मेरा कौशल सर्वोत्तम था, तीसरा कहेगा कि तुम्हारे तखते किस काम के थे यदि मैं उन की किश्ती न बनाता ! अतः स्पष्ट है कि किश्ती के बदले में जो कुछ धन मिलेगा, उस के हिस्से का काम बहुत धन्दे का होगा। एक पदार्थ के विभाग (बांट) में जब ऐसा झंझट हो, तो संसार में जो सहस्रों पदार्थ बन रहे हैं, क्या उन के विभाग में सहस्रों गुणा अधिक झमेला और कलह नहीं होता होगा ? विभाग की इस विधि को समझाने के लिये अर्थशास्त्र का एक पृथक खण्ड है-उस का नाम धन विभाग Distribution है । यह अति गहन प्रकरण है, इस की भूल भुलय्यों में से निकलना बड़े २ उन्नत चेता महाशयों के लिये भी अति कठिन हो जाता है ।

खैर ! अब तक यह पता लग गया होगा कि तीसरे क्रम में भिन्न २ कौशल्य वाले नरनारी अपने यत्नों का संयोग करते हैं, परन्तु प्रत्येक के यत्न और आवश्यकताओं की पूर्ति

में बहुत अन्तर होता है और साथ ही धन विभाग का टेढ़ा प्रश्न उत्पन्न हो जाता है।

तीसरा क्रम

		विनिमय	विभाग
आवश्यकता —	यत्न	पूर्ति	पूर्ति
एक पुरुष की	समूह के एक सभ्य के तौर पर	समूह की आवश्यकताओं की	प्रत्येक पुरुष की आवश्यकताओं की

८. चौथा क्रम—मुद्रा का प्रयोग।

जो व्यवसायिक जीवन हम आज कल नगरों में गुज़ार रहे हैं, उस में और तीसरे क्रम के जीवन में दो भिन्नताएं हैं:—

(क) हमारे व्यवसायिक यत्न अधिक पेचीदा हैं।

(ख) हम पदार्थों का परस्पर अदला बदला नहीं करते (ग्रामों में तो अब तक ऐसा होता है कि कपास और गेहूं देकर बनिये से लून, तेल, गुड़, दाल आदि लिये जाते हैं), बल्कि मुद्रा और साख के द्वारा हम लोग विनिमय करते हैं।

९. व्यवसायिक यत्नों की पेचीदगी

आवो, हम देखें कि हमारे व्यवसायिक यत्न कैसे पेचीदा हैं।

क्या आप ने धारीवाल का बना हुआ गर्म कोट पहना हुआ है ? भला कभी आप ने विचार किया कि किन २ पेशे वालों ने अपना २ यत्न लगा कर इसे आप तक पहुंचाया है ? नीचे के व्यौरे में आप को उन का दिग्दर्शन मात्र कराते हैं:—

समूह | पेशों के नाम तथा काम

१. तिब्बत, काश्मीर या आस्ट्रेलिया के निवासियों ने भेडों से ऊन काटी ।

२. वहां से रेलों और जहाज़ों द्वारा धारीवाल में आई, अतः रेल, जहाज़, बन्दरगाह, बैलगाड़ी, आदि में लगे हुए नरनारी तथा माल लादने और उतारने वाले भिन्न २ मानव समूह मिले, तो ऊन धारीवाल तक पहुंच सकी ।

३. ऊन ख़रीदने वाले व्यापारी:—

(क) आस्ट्रेलिया में भेड़ों के मालकों से छोटे २ व्यापारियों ने ख़रीदी ।

(ख) उन छोटे व्यापारियों ने आस्ट्रेलिया में बड़े व्यापारियों के पास बेच दी ।

(ग) अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास के बड़े २ कोठीदारों ने वह आस्ट्रेलिया के बड़े २ व्यापारियों से ख़रीदी ।

(घ) उन से धारीवाल के कारख़ाने वाले ने ख़रीदी ।

(ङ) किन्तु जो जुलाहे अमृतसर में शालें बनाते हैं, उन के लिये अमृतसर के बड़े व्यापारियों से छोटे व्यापारियों ने ख़रीदीं।

४. ऊन के कातने वाले (कला या चर्खे से)

५. ऊन के वस्त्र बुनने वाले (कला या खड्डी पर)

६. ऊनी वस्त्र बेचने वाले छोटे बड़े दुकानदार, जिन में से किसी एक से अपने कोट के लिये आप ने कपड़ा ख़रीदा।

७. दर्ज़ी।

८. सेठ साहूकार, बैंकर आदि जिन्हों ने पहिले सात समूहों में काम करने वालों को सूद पर रुपया दिया।

९. जो २ कला, औज़ार, मकान आदि उक्त आठ समूहों में दर्कार हुए, उन के बनाने वाले पुरुष फिर कई समूहों में विभक्त हैं।

उक्त नौ समूहों की मेहनत लग कर आपका एक कोट बना। अब विचारिये कि उन समूहों में काम करने वालों की सेवाओं का बदला भी तो देना पड़ा होगा। प्रत्येक समूह ने अपने यत्नों का फल लिया होगा और उसे अपनी व्यक्तियों में बांटा होगा। इस बांट की टेढ़ी खीर का तो यहां वर्णन नहीं किन्तु उसे भूलना नहीं चाहिये। उक्त यत्नों के झंझट को चित्र में यूं दिखा सकते हैं :—

मिश्रित यत्न
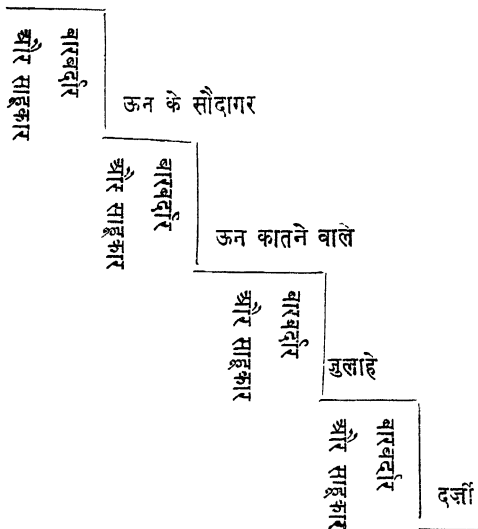
१०. **मुद्रा का कर्म**—आश्रय, अब हम मुद्रा (रुपैया पैसा) और साख (हुन्डी पर्चा) के आवश्यक कर्म देखें। प्रत्येक समूह की आय और उस के प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी रुपैये पैसे में वर्णन की जाती है। प्रत्येक पुरुष अपनी आमदनी से, आवश्यकताओं के

---

१. सभ्य देशों में मुद्रा का भी प्रयोग लेन देन में कम होता है। उनका काम अधिकतर हुन्डी पर्चे से चलता है। १६०७ में चार देशों की

पूरा करने के लिये बाज़ार से पदार्थ ख़रीदता है। इन दोनों कर्मों का विस्तृत वर्णन मुद्रा के प्रकरण में किया जावेगा।

चौथा क्रम

		विनिमय	विभाग	विनिमय	
आवश्यकता	– यत्न	⁀ आय	⁀ आय	⁀ पूर्ति	
एक पुरुष की	समूह के एक सभ्य के तौर पर	समूह की	हर एक पुरुष की	हर एक पुरुष की आवश्यकता की	

अर्थात् इस क्रम में आश्यकताओं की पूर्ति और यत्नों में जो अन्तर है वह तीसरे क्रम से भी बढ़ गया है क्योंकि

नकदी जो बाज़ार में प्रचलित थी, उस की मात्रा नीचे देते हैं और साथ ही उन की राजधानियों में ही जो परस्पर के लेन देन **एक वर्ष** में चुकाये गये, उन की मात्रा देते हैं। इनकी तुलना से साख तथा मुद्रा की आपेक्षिक महानता का ज्ञान हो जावेगा:—

देश	चलतु सिक्का	लेन देन की मात्रा राजधानियों में
	पाउण्ड	लाख पाउण्ड
इंगलैण्ड	६३८००:००	१२७३००
फ्रांस	८४५०००००	६६२०
युक्त प्र० अमैरीका	६५४०००००	३१६६६००
जर्मनी	१८७००००००	१८८००

अब बीच में तीन पुलों को पार करना है, जब कि तीसरे क्रम में दो पुलें पार करनी थीं। या यूं कहिये कि समूह स उत्पन्न किये हुए पदार्थ बेचने पड़ते हैं, जो आय हो उसे समूह के मैम्बरों में बाटना होता है, फिर उस बान्टी हुई आमदनी से हर एक अपनी २ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये काम करता है— इस के लिये यत्न सामूहिक है किन्तु वह द्विगुण अप्रत्यक्ष है।

भारत में उन्नति का चौथा क्रम अभी थोड़ा सा विद्यमान है। हम में दूसरे और तीसरे क्रमों की प्रधानता है और चौथे की अतीव न्यूनता है। इंगलैण्ड आदि सभ्य देशों में चौथे क्रम की मुख्यता पाई जाती है–इसे अगले अध्याय में दिखावेंगे।

११. चौथे क्रम पर विचार करने से नीचे वाली तीन बातें भी दीख पड़ेंगीः—

(क) बहुत से समूहों के मिश्रित यत्नों से कोई पदार्थ जैसे वस्त्र उत्पन्न होता है।

(ख) एक २ समूह का उत्पादक यत्न भिन्न २ है।

(ग) प्रत्येक समूह में एक २ पुरुष का यत्न भिन्न २ है

बहु समूहों का मिश्रित यत्न।

आप के एक कोट के बनाने में जिन नौ समूहों ने सहायता दी है, उन के नाम पढ़ कर क्या आप के हृदय में यह प्रश्न नहीं

उठा कि क्या उन्हों ने मिल कर यह निश्चय वा इक़रार कर लिया था कि चूंकि इतने कोट बनाने हैं, इस लिये इतना २ धन लगा कर यह २ पदार्थ बना लो, या मिलने और निश्चय करने के विना ही उन के यत्नों का फल मिला दिया गया है और संयोगवश कोटों का निर्माण हो गया है? विचार करने पर पता लगेगा कि दूसरी बात ही ठीक है—कोई ठेका, इक़रार वा निश्चय परस्पर नहीं किया गया, प्रत्येक समूह तथा उस की व्यक्तियां अपनी २ शक्ति के अनुसार पैदा करते जाते हैं क्योंकि उत्तरागत समूह उस समूह की बनाई हुई वस्तु ख़रीदने को तय्यार हैं। बस, जब तक प्रथम समूह के पदार्थ दूसरा समूह लेने को तय्यार है, तब तक पैदावार होती जाती है। एवम् दूसरा समूह तीसरे को पदार्थ बेच देता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रम चलता है—पाहिले चार समूहों को कोई ज्ञान नहीं कि उस ऊन के क्या २ पदार्थ बनेंगे? कोट, कमीज़, पाजामा, चादर, पटका, कम्बल वा पट्टू में से क्या क्या बनेगा?

अतः चौथे क्रम के यत्न का प्रधान चिन्ह हम अव्यवस्था—आपाधापी कह सकते हैं। जहां आपाधापी और गड़बड़ होगी, वहां कभी २ बुरे परिणाम भी निकलते हैं। एवम् आजकल के व्यवसायिक जगत् में भी इस अव्यवस्था से कुछ दुर्घटनाएं उत्पन्न होती हैं।

१२. एक समूह का उत्पादक यत्न।

एक समूह के यत्नों का मुख्य चिन्ह हम व्यवस्था कह सकते हैं क्योंकि जब बहुत से आदमियों ने मिलकर काम करना हो, तो उनको अपने २ काम में लगाने की कोई व्यवस्था होनी चाहिये। अतः जहां कई समूहों के उत्पादक यत्न का प्रधान चिन्ह अव्यवस्था है, वहां एक समूह के यत्न का मुख्य अंग व्यवस्था है।

१३. व्यवसायों के मुख्य २ समूहों के नाम यह कह सकते हैं:—

(१) भूमि के तल से उपज करना—सब प्रकार के धान्यों, वृक्षों, औषधियों, फलों, कन्दादिकों की पैदावार करना, पशु पालना, शिकार करना, मछली पकड़ना—आदि पेशे शामिल हैं।

(२) खान का काम—भूगर्भ में स्थित सोना, चान्दी, कोइला आदि का निकालना।

(३) दस्तकारी व कलाओं से वस्त्र, पुस्तक, रथ, हल, द्वार, रंग, मिठाई आदि बनाना।

(४) बारबर्दारी—सड़कों, रेलों, नदियों, समुद्रों पर से सामान उठा कर ले आना और ले जाना।

(५) व्यापार—कच्चा माल ख़रीद कर कारीगर व कार्-खाने वाले के पास बेचना और कच्ची सामग्री व कारखानों के बने हुए पदार्थों को प्रयोग करने वालों के पास बेचना।

(६) साहूकार—उक्त पांच समूहों को अपना २ काम करने के लिये साहूकार लोग धन देते हैं और उन के परस्पर के ऋणों को सुगमता से चुका देने के साधन होते हैं।

(७) फुटकर बिकरी—थोक माल ख़रीद कर प्रयोग करने वालों में उन की मांग के अनुसार बेचना।

उक्त समूहों में विविध प्रकार के पेशों की गिनती आगयी है किन्तु मनुष्यगणा रिपोर्टों से पूर्ण ज्ञान हो सकता है, पाठकों को वे नील पत्रिकाएं अवश्य पढ़नी चाहियें। स्पष्ट है कि उक्त समूहों में समान संख्या में नर नारी नहीं बंटे हुए। जहां एक कारख़ाने में सहस्रों आदमी काम करते हैं, वहां लोन, तेल वाले की दुकान पर केवल एक ही आदमी काम करता है। किन्तु इनमें दो बातें समान हैं :-

(क) प्रत्येक समूह में सब ऐसे आदमी हैं जो उस पेशे को अपने यत्नों का फल दाता समझते हैं।

(ख) प्रत्येक समूह में कोई व्यवस्था करने वाली शक्ति है, जो समूह में काम करने वाले सब नर नारियों के यत्नों को मिलाती और उन्हें विशेष उद्देश की ओर लेजाती है।

१४. एक व्यक्ति का उत्पादक यत्न

प्रत्येक समूह में काम करने वालों की योग्यता के अनुसार काम की मात्रा और गुण निश्चत होता है और यद्यपि अन्य कई कारण उनके लगे हुए यत्न के फल को कमोबेश करने वाले हैं, तथापि उनकी योग्यता और उत्पादक शक्ति का प्रभाव आय की मात्रा निश्चित करने में कम नहीं।

इस यत्न के सम्बन्ध में दो बातें स्मरण रखनी चाहियें।

१५. (क) काम करने वालों का एक दूसरे पर आश्रय है। कार्ख़ाने वाला—व्यवसायपति—श्रमियों के आश्रय काम करता है और श्रमी उसके आश्रय पर काम करते हैं। साथ ही एक श्रमी को जो किसी पदार्थ के छोटे से भाग के बनाने में लगा हुआ है—औज़ार तथा कच्ची सामग्री मिलनी चाहिये। जैसे, पुस्तक छापने के लिये (i) कम्पोज़ीटर का किया हुआ काम प्रूफ़ शुद्ध करने वाले श्रमी को मिलना चाहिये, नहीं तो शोधक काम नहीं कर सकता। यदि (ii) शोधक ने काम न किया हो, तो कला पर पुस्तक छप नहीं सकती, अतः (iii) छापने वाली कलों के श्रमी बेकार बैठे रहेंगे। यदि पुस्तक नहीं छपी, तो उस की (iv) कटाई का काम कैसे हो सकता है? वर्कों की (v) सिलाई कैसे होगी? एवम् पुस्तक की (vi)

जिल्दें कैसे बांधी जा सकती हैं? स्पष्ट है कि कम्पोज़ीटर के काम पर अन्य सब श्रमियों के काम का आधार हैं। उक्त छः समूहों में पिछले श्रमियों का पहिले श्रमियों के काम पर आश्रय है। इन सब का पुस्तकों के लेने वालों पर आश्रय है, यदि हिन्दी के पढ़ने वाले ही न हों, या हिन्दी जानने वाले धनहीन हों, या पुस्तक ही रद्दी हो, तो उस पुस्तक की मांग न होगी। यदि पुस्तकों की मांग न हो,तो अपना धन कौन नाश करेगा?

१६ (ख) प्रत्येक श्रमी का काम अपूर्ण है। पूर्ण पदार्थ बनाने में सब का थोड़ा २ यत्न लगता है। कोई एक श्रमी यह नहीं कह सकता कि यह पुस्तक मैं ने छापी है। छः प्रकार के श्रमियों ने अपना २ यत्न मिलाया और उन को व्यवस्था में रखने के लिये तथा उन के काम की मात्रा और गुण देखने के लिये प्रबन्धकर्ताओं की एक श्रेणी थी, इन सब के संयोग से पुस्तक छप सकी है।

१७. चौथे क्रम की सभ्यता के परिणाम—अब स्पष्ट होगया होगा कि आजकल के संसार में (i) एक काम करने वाले श्रमी की कामयाबी उस समूह में अन्य श्रमियों के यत्नों पर आश्रित है, (ii) कि एक समूह की कामयाबी दूसरे समूहों के यत्नों पर निर्भर है, (iii) कि व्यक्तियों और समूहों की कामयाबी जाति की सामान्य समृद्धि पर आधार रखती है।

वर्त्तमान जगत् में सब प्रकार के श्रमियों का एक दूसरे पर बड़ा आश्रय है। यदि किसी तालाब में पत्थर फैंकें, तो लहर के पश्चात् लहर शीघ्र उत्पन्न होती जाती है। वैसे ही आजकल यदि एक व्यवसायिक समूह में कोई आपत्ति आवे, तो वह दूसरे समूहों तक फैल जाती है—कदापि उसी एक समूह तक परिमित नहीं रहती। अर्थात् एक देश में भी आजकल परिमित नहीं रहती, बल्कि संसार के अन्य देशों में भी अपना प्रभाव डालती है। अतः स्मरण रहे कि भारतवर्ष इस चौथे क्रम में आरहा है, उस के व्यापारियों, श्रमियों, कारखानेदारों, सेठों, साहूकारों और राज्य कर्मचारियों को भी विशेष तौर पर अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता है। अब तक इस प्रकरण में जो कुछ हम कह चुके हैं, उसे एक चित्र में यूं दिखा सकते हैं:—
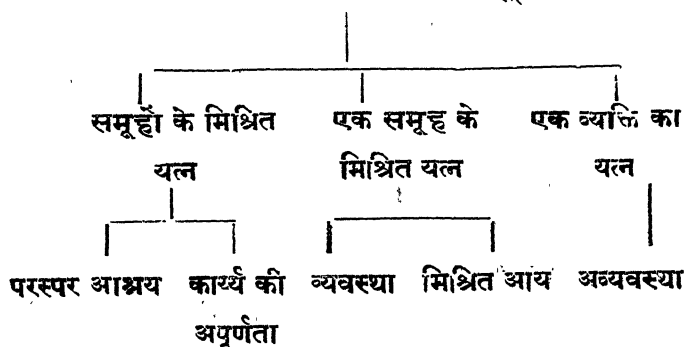
यत्न {
१. से आय होती है—उत्पत्ति
२. उत्पन्न पदार्थ का क्रय विक्रय होता है—विनिमय
३. प्रत्येक व्यक्ति की आय की निश्चिति—विभाग
४. प्राप्त आय से आवश्यकताओं की पूर्ति—व्यय
५. व्यक्तियों का राज्य से सम्बन्ध—राज्य तथा जाति
६. यत्न की उन्नति—जातीय उन्नति
}

अर्थ शास्त्र के उक्त छैः भाग होते हैं। इस पुस्तक में उत्पत्ति तथा व्यय की व्याख्या की जावेगी और शेष विषयों पर अन्य भागों में विचार किया जावेगा।

प्रश्न

१. आर्थिक उन्नति के कौन से चार क्रम हैं ? उन की व्याख्या करो। क्रमों की भिन्नता के अङ्गों को स्पष्ट करो।

२. चार क्रमों के चित्र दो।

३. व्यवसायों की पेचीदगी के उदाहरण बूट, मेज़, पुस्तक, पेन्सिल के निर्माण से दो।

४. क्या धात्विक मुद्रा के बिना आज कल का व्यापार व्यवसाय नहीं चल सकता ?

५. एक हुन्डी लिख कर दिखावो।

६. १३वें प्रकरण में हम ने मुख्य व्यवसाय दिये हैं। इन में से प्रत्येक के गौण व्यवसाय बताओ।

७. दिखाओ कि भारतवासी जितने अधिक धनी होंगे, उतने पदार्थ अधिक बनेंगे और व्यापार भी अधिक होगा।

८. अर्थशास्त्र के कौन से २ भाग हैं ?

९. सूत कातने, वस्त्र बुनने और बिस्कुट बनाने के कार्खानों में श्रमियों के भिन्न दलों का वर्णन करो।

१०. नमक और कोइले की खानों में काम करने वाले सब नरनारियों के यत्नों का व्यौरा दो।

११. भारतवर्ष के किसी छोटे ग्राम के निवासियों की ज़रूरतों और उन को पूरा करने के यत्नों का व्यौरा दो। बताओ कि उन में मुद्रा द्वारा विनिमय कहां तक प्रचलित है।

१२ किसी बड़े नगर के बड़े बाज़ार की दुकानों की सूची पेशों के आधार पर बनाओ और यह भी देखो कि स्वदेशी चीजें कितनी दुकानों पर बिकती हैं।

१३. भारतवर्ष में बड़े २ व्यवसायों में लगे हुए मनुष्यों की गिनती दो।

अध्याय ५

आर्थिक जीवन की उन्नति

१. आरम्भक विचार

बारम्बार कहा गया है कि आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिये ही मनुष्य कर्म करता है। यदि ये आवश्यकताएं कम हों, तो यत्न भी थोड़े होंगे। किन्तु यह मूल तत्व न भूलना चाहिये कि उत्पत्ति की रीति, मनुष्यों की शिक्षा, विज्ञान, कलाकौशल और देश की प्राकृतिक अवस्थाओं पर ही यत्नों की मात्रा का आधार है।

यदि थोड़ी सी भोजन सामग्री के ही प्राप्त करने में सारा दिन लग जावे और सायंकाल को थका मांदा मनुष्य अपने घर पहुंचे तो उच्च आवश्यकताओं की पूर्त्ति कब होसकती है? इस लिये ज्यों ज्यों मनुष्य अपने ज्ञान द्वारा, प्राकृतिक शक्तियों को अपने आधीन करता जाता है, त्यों त्यों सब प्रकार की उन्नति भी होती जाती है। अतः वैज्ञानिकों ने प्रकृति को मानव शक्ति का आधार मान कर उत्पत्ति की रीति के ५ क्रम बताए हैं।

२. पांच प्रकार की जातियां

[१] शिकार कर के निर्वाह करने वाली जाति।

[२] पशु पाल कर निर्वाह करने वाली जाति।

[३] कृषि पर निर्वाह करने वाली जाति।

[४] दस्तकारी जिस में प्रधानतया हो ऐसी जाति।

[५] कलाकौशल और शिल्प जिस में प्रधानतया हो ऐसी जाति

(३) शिकारी जातिः ये जातियां—पशुओं का शिकार, मछलियों का पकड़ना और फलफूल तथा कन्द मूल को प्राप्त कर के ही अपना निर्वाह करती हैं ये जातियां असभ्य होती हैं। इन जातियों का वर्णन पिछले अध्याय के चौथे प्रकरण में हो चुका है। वे सर्वथा ही प्रकृति पर आश्रित हैं। खाद्य पदार्थों के प्राप्त करने में उन को कोई आयास नहीं होता। आस्ट्रेलिया तथा अफ्रिका के हबशियों की गणना इन्हीं जातियों में है।

(४) पशु पालने वाली जातिः—इस शिकार की निकृष्ट दशा से उन्नत हो कर कई जातियां पशुपालन में लगती हैं। गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, घोड़ा और ऊंठ आदि पशुओं को पाल कर उन के दूध और मांस पर ही प्रायः निर्वाह करती हैं। कभी २ फलफूलों को चुन कर या शिकार आदि भी कर के अपना निर्वाह करती हैं।

ये जातियां शिकारी जातियों के समान प्रकृति पर अधिक आश्रित नहीं हैं। ये मानव आयास में प्रवृत्त होती हैं और प्रकृति के अनुकूल न होने पर भी थोड़ी बहुत अपनी रक्षा स्वयं कर लेती हैं।

इन पशु पालने वाली जातियों के पशुओं के लिये घास का होना ज़रूरी है। इस लिये यह जातियां हरे भरे मैदानों और चरागाहों की खोज में अपने परिवार और पशुओं सहित स्थान स्थान पर आकर बसेरा करती हैं। ये तम्बुओं में ही रातें काटतीं और अन्य जातियों से चरागाहों को लड़ लड़ाकर जैसे भी बने वैसे ही छीनने का यत्न करती हैं। इस लिये ये जातियां मकानों को बनाकर नगरों में निवास नहीं करतीं।

इन जातियों में किसी व्यक्ति विशेष की निज की जायदाद व भूमियां नहीं हो सकतीं। उस सारे मण्डल पर सारी ही जाति का अधिकार होता है और अन्य जातियों को अपने क्षेत्र में वे नहीं आने देतीं।

इन में किसी व्यक्ति के पास पशु अधिक और किसी के पास कम होते हैं। इसी भेद से वे धनी और निर्धन बन जाते हैं। इन में दायाभाग की रीति भी होती है। किन्तु इन में प्रायः व्यापार और विनिमय नहीं पाया जाता।

इंग्लैंड के निवासी, जर्मन्, यहूदी, तथा अन्य जातियां किसी समय पशुपालक ही थीं। चीन के यूची और शक, मध्य एशिया तथा अरब और अफ्रीक़ा की कई जातियां अब भी इसी दशा में हैं।

(५) कृषि करने वाली जातिः—इन जातिओं का पृथिवी पर बड़ा प्रभुत्व होता है। पाले हुए पशुओं से खूब खेती बाड़ी करती है और दूध दही का आनन्द लूटती हैं।

पहिली दशाओं में जो लाभ थे, उन के अतिरिक्त इन का भूमि से अधिक उत्पत्ति करने का लाभ होता है।

ये ग्राम बना कर रहतीं है, इन की आबादी भी अधिक बढ़ती है। इन में दायाभाग की रीति होती है। भूमि भी जायदाद मानी जाती है। ग्रामों में रहने और निज की जायदाद के होने से इन में नए नए काम, कर्त्तव्य, सम्बन्ध, कलाकौशल और राज्य की विधियों का आविष्कार होने लगता है किन्तु अभी इन में व्यापार की उन्नति नहीं होती।

जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है वे ही उत्पन्न किये जाते हैं। आरम्भ में तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण करता है, फिर ग्राम समुदाय रूप से ग्राम की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की वस्तुओं को उत्पन्न करता है। अर्थात् एक ग्राम, दूसरे ग्राम से न तो कोई पदार्थ लेता और न देता है।

जो पदार्थ अपने ग्राम में न हों उन का प्रयोग नहीं किया जाता।

परिवार-स्वतन्त्रता:—जब तक एक ग्राम के प्रत्येक परिवार के नर नारी-क्या बालक और क्या वृद्ध सभी स्वयं खेती करें, कपास कातें,कपड़े बुनें लकड़ी काट लाएं,और जलाएं, हल आदि औज़ार बनालें, और झोंपड़ी भी तय्यार करलें, तब तक वे परिवार स्वतन्त्र हैं,उन को ग्राम के अन्य जनों से कोई पदार्थ लेने की आवश्यकता नहीं।

ग्राम-स्वतन्त्रता—फिर शनैः शनैः पेशों में भिन्नता होने लगती है। कोई बढ़ई का, कोई लोहार, जमींदार, कृषक, तरखान, कुम्हार, तेली, कहार, नाई, चौकीदार, मज़दूर और कोई पुरोहित आदि का काम संभाल लेता है।

इस अवस्था में एक ग्राम को दूसरे ग्राम से कुछ नहीं लेना या देना, हां! ग्राम के वासी आपस में लेन देन करते हैं-इस समय ग्राम स्वतन्त्र होता है।

ग्रामों में बाहिर से केवल लोहा, नमक, मिरच आदि ही आते हैं। अब तक इन जातियों में मुद्रा का प्रयोग नहीं प्रारम्भ हुआ होता। एक पदार्थ के बदले दूसरा पदार्थ ले दे लेते हैं। इस क्रम का नाम प्रतिदान (अदल बदल की) रीति (Barter

Economy) अथवा स्वतन्त्र गृह निर्वाह (Independent Domestic Economy) कहते हैं।

(६) दस्तकारी प्रधान जातिः—इन जातियों में दस्तकारी और शिल्प की उन्नति होने लगती है। नगरों की संख्या बढ़ती है और नगर ही शिल्प के केन्द्र बन जाते हैं। इस लिये इस सभ्यता का नाम नगर निर्वाह (Town Economy) कहते हैं। हाथ के औज़ारों का प्रयोग बढ़ता है, कहीं कहीं पनचाक्कियां भी चलने लगती हैं। किन्तु कला का प्रयोग नहीं होता। मुद्रा का प्रयोग बढ़ने लगता है, इस लिये इस क्रम का नाम मुद्रा की रीति (Money Economy) कहते हैं। योरुप और भारतवर्ष दोनों में समय समय पर दस्तकारी के क्रम के भिन्न २ रूप रहे हैं जैसे :—

(क) व्यापारी समितियां (Merchant Gilds)–प्रत्येक नगर में व्यापारी समितियां बनाई गईं, ताकि अपने अपने नगर के व्यापारियों को ही चीज़ें बनाने और बेचने का अधिकार हो और विदेशी लोगों अन्य नगरों के रहने वालों-को वे अधिकार नहों। ये व्यापारी आपस में मुक़ाबिले में पड़ कर अपना या व्यापार का नाश न करें–अतः इन के लिये विशेष नियम बनाए गए। या ज़मींदार अथवा राज कर्मचारी उन पर अत्याचार न करें इस लिये उन की समितियां और सभाएं बनीं। ताकि इन समितियों के

सभ्यों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यापार और व्यवसाय न करे, इस कारण पदार्थों के बनाने तथा बेचने के नियम भी बनाए गए।

(ख) व्यवसाय समितियां—फिर ज्यों ज्यों आवश्यकताएं बढ़ीं और पेशे भिन्न भिन्न हुए, त्यों त्यों व्यापारी समितियां और व्यवसाय समितियां बना कर ये दोनों श्रेणियां भिन्न २ होने लगीं।

व्यापारी समितियों के स्थान पर शिल्प समितियां बन गईं लोहार, जुलाहे, तरखान आदि सब ने अपनी अपनी श्रेणी पृथक् ही बना ली। अपने साथियों के लिये विशेष नियम बनाए। भारतवर्ष की इन समितियों का वर्णन आगे दिया जावेगा।

शनैः शनैः शिल्प समितियां भी टूटने लगीं और स्वतन्त्रता घटती गई। जहां ये ग्राहकों के कहने पर पदार्थ बनाते थे, वहां वे व्यापारियों के लिये पदार्थ बना २ कर देने लगे और जिन के पास कच्चा माल न होता था, उन्हों ने कच्चा माल या औज़ार व्यापारियों से ले लिये।

इस बने हुए माल को शिल्पियों ने स्वयं न बेचा किन्तु व्यापारियों को दिया और उन्हों ने ग्राहकों को बेचा।

एवं जब समितियां टूट गईं और अधिकार भी घट गए तो राज्य ने हस्ताक्षेप किया। इस को mercantile system—व्यापार की रीति कहते हैं। इस नीति का उद्देश्य, जाति के व्यापार और सैन्य शक्ति का बढ़ाना था। कई नियमों से कृषि की उन्नति की गई। आयात पदार्थों पर तट कर लगाए गए, ताकि

अपने देश का व्यवसाय उन्नत हो सके। राज्य की ओर से प्रजा को उत्साहित किया गया कि वे विदेशों में अपने पदार्थों और कच्चे माल को बिकने के लिये भेजें। विदेशों में भेजने वाले पदार्थों की मात्रा, विदेशों से आने वाले पदार्थों की मात्रा से अधिक होनी चाहिए, ताकि उस अधिकता के बदले में सोना चांदी अधिक आकर देश की समृद्धि बढ़ावें। नागरिक स्वार्थ को हटा कर देश भक्ति और देशस्वार्थ के भाव को उत्पन्न किया गया। प्रत्येक देश ने अपने अपने जहाज़ बढ़ाए, नई नई बस्तियां बसाईं। देश में भिन्न भिन्न सिक्कों के स्थान पर एक सिक्का चलाया गया। नयी बस्तियों में कच्चा माल उत्पन्न कराने का यत्न किया और वहां शिल्प को घटाया, ताकि उन बस्तियों के वासी अपनी मातृभूमि का शिल्प, व्यापार और व्यवसाय बढ़ा सकें।

कलाकौशलप्रधान जातियां:—१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक व्यवसायिक क्रान्ति हुई जिस से इंग्लैंड में दस्तकारी का क्रम दूर हो कर कलाकौशल से उत्पत्ति होने लगी। व्यापार की उन्नति के लिये शीघ्रगामी यान बनाए गए। १७७० से १८४० तक उत्पत्ति की विधियों में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ।

इन नए नए आविष्कारों से इंग्लैंड की उत्पादक शक्ति कई गुणा बढ़ गई। नीचे की सूचि से स्पष्ट हो जायगा कि

कहां तक मनुष्यों का काम कलाओं से लिया गया और खनिज तथा कृषि के पदार्थों में क्या २ उन्नति हुई।

रोबक ने लकड़ी की जगह पत्थर के कोयले से लोहे को पिघलाने का काम लिया।

१७३८ में के ने Flying shuttle से वस्त्र बुनने की विधि निकाली।

१७६७ में हार्ग्रीव ने कातने की कला निकाली।

१७६६ में वैट ने खानों से जल निकालने का एंजिन बनाया।

१७७१ में आर्कराइट ने जल की शक्ति से कातने वाली कला निकाली।

१७७९ में क्राम्पटन ने हार्ग्रीव तथा आर्कराइट की विधियों को मिलाकर अधिक उन्नति की।

१७८५ में सूत कातने की कला को भाफ़ से चलाने का आविष्कार किया गया।

१७८५ में कार्टराइट ने बुनने की कला को भाफ़ से चलाने का आविष्कार किया।

१८०१ में प्रथम वार नगरों में ट्राम्वे चलाई गई।

१८१४ में स्टीफ़न्सन ने ऐसा एंजिन बनाया जो कि भाफ़ से चलता था और एक घंटे में ३० टन भार उठा कर ३ मील चल सकता था।

१८२५ में स्टीफ़न्सन ने ही १५ मील एक घंटे में चलने वाला ऐंजिन बना दिया।

१८०७ में भाफ़ से चलने वाली किश्ती बनी।

१८३८ में पहिली वार भाफ़ से चलने वाला जहाज़ अमेरीका में गया।

८. शुभ परिणाम-इन आविष्कारों ने व्यवसाय का रूप बदल दिया। व्यवसायिक उद्योग में एक बाढ़ आगई और उत्पत्ति की सारी पुरानी विधियां बह गईं। पुराने बन्धनों की बेड़ियां टूट गईं। एकाधिकार, भूमिपतियों के अधिकार, बाधक राज नियम, और रीति नीति के स्थान पर स्पर्धा का राज्य होने लगा। ग्रामों को छोड़कर लोग नगरों में रहने लगे। व्यवसाय ने घरों को छोड़ कर कारख़ानों में बसेरा किया। व्यापार बढ़ने लगा। व्यापारियों की एक नई श्रेणी उत्पन्न हुई। व्यापार और व्यवसाय की उन्नति और कीमती कलाओं के प्रयोग के कारण पूंजीपतियों की नई श्रेणी बनने लगी। श्रम विभाग बढ़ने लगा। सब व्यवसाय एक दूसरे पर आश्रित होने लगे। लोहा और कोयला जहां मिलते थे वहां व्यवसाय स्थानीय होने लगा। नए नए नगर बनने लगे।

९. इस क्रम के दोषः—१. व्यवसायपतियों और पूंजीपतियों की श्रेणी आवश्यक हो गई। क्योंकि बड़ी २

कलाओं के ख़रीदने के योग्य धन कारीगरों के पास न था। और साथ ही सैंकड़ों मज़दूरों को वे वेतन कहां से देते? यदि इतना धन भी होता तो मज़दूरों के समुदाय से काम लेने की शक्ति उन में कहां थी। और फिर स्वच्छ तथा सस्ती।

चमक दमक की वस्तुएं कैसे उत्पन्न कर सकते थे? इस लिये ये कारीगर लाचार होकर मज़दूरों की श्रेणी में मिल गए।

किन्तु कारखानों के चलाने और प्रबन्ध करने की योग्यता धनियों में न थी, अतः उन के प्रबन्ध के लिये व्यवसाय-पतियों की एक श्रेणी बनी।

अतः स्पष्ट है कि जब इंगलैंण्ड में कलाओं का प्रचार हुआ तो प्रारम्भ में कारीगर तो निर्धन हो गए—उन पर आपत्तियों का पहाड़ आटूटा। उधर नई २ कलाओं में काम करने वाले लोग धनी होते गए।

२. दस्तकारी प्रधान जाति में शिक्षक कारीगर और उस के साथ काम करने वालों में कोई अन्तर नहीं होता—वे प्रेमपूर्वक रहते हैं। एक ही सामाजिक स्थिति के होते हुए आपस के दुःख सुख में सम्मिलित होते हैं।

किन्तु कला प्रधान जाति में श्रमियों तथा व्यवसाय पतियों का आपस में कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं। श्रमियों की दशा तो हीन होती जाती है और व्यवसायपति की ऐंठ बढ़ती जाती है।

३. श्रमियों की बेकारी बढ़ी है।

आरम्भ में किसान तो जुलाहे के काम में सहायता देता था और जुलाहा किसान के काम में। अब कातने तथा बुनने की कलाओं ने जुलाहों को तो सर्वथा ही बेकार कर दिया और किसानों की आमदनी घटा दी। आजकल भी मांग के निश्चित न होने से तथा श्रमियों की आवश्यकता को घटाने वाली कलाओं के लगातार आविष्कार होने से यह बेकारी बढ़ती जारही है।

४. कलाओं के कारण श्रमियों की मृत्यु को बढ़ाने वाले कारण बढ़ गए हैं।

५. दूर देशों से व्यापार होने से तथा व्यवसाय में अव्यवस्था होने से व्यवसायिक जगत् में विक्षोभ की मात्रा अधिक और प्रबल हो गई है।

६. नारियों तथा बालकों को कलाओं पर काम मिल गया है, इस लिये दुराचार बढ़ा है और शरीर निर्बल हुए हैं।

१०. इस अध्याय में उन्नति के जिन क्रमों की हम ने व्याख्या की है और उन के जो २ प्रधान चिन्ह बताए हैं उन्हें निम्नलिखित चित्र में दिया जाता है।

उन्नति के क्रम

	प्रकृति पर स्वत्व की दृष्टि से	आवश्यकताओं के पूरा करने की दृष्टि से	विनिमय की दृष्टि से	श्रमियों की दृष्टि से	आंगल इतिहास के उदाहरण
१	शिकार	स्वतन्त्र गृहानिर्वाह	अदल बदल की रीति	मज़दूरों का अभाव	ऐतिहासिक समय से पूर्व
२	पशुपालन	,,	,,	,,	ईसा के जन्म से पूर्व
३	कृषि	,,	,,	दासत्व तथा अर्ध-दासत्व	१[illegible]वीं से १४वीं शताब्दी तक
४	दस्तकारी	स्वतंत्र नगरनिर्वाह	मुद्रा से विनिमय	रीति नीति से बाधित स्वतन्त्र श्रम	१३वीं से १८वीं शताब्दी तक
५	कला शिल्प	स्वतन्त्र जाति निर्वाह	साख से विनिमय	वैयक्तिक स्वतन्त्रता	१८वीं शताब्दी से अब तक

प्रश्न

१. आर्थिक जीवन की उन्नति के पांच क्रमों के नाम लो और प्रत्येक के चिन्ह लिखो।

२. प्रकृति पर स्वत्व की दृष्टि से नहीं बल्कि अन्य बातों को आधार मान कर उन्नति के क्रमों के कौन से नाम हैं?

३. कला कौशल प्रधान जातियों के गुणों और दोषों की तुलना करो।

४. भारतवर्ष में कलाओं से निर्मित पदार्थों के प्रयोग से क्या हानियां हो रही हैं?

५. क्या आजकल 'व्यापारिक' रीति का प्रचार देशों में हो सकता है?

६. जिस ग्राम के निकट तुम रहते हो, उस की आर्थिक दशा का वर्णन करो।

निर्देश.

R. T. Ely. *Outlines of Economics, Chapter* 3, 4.

C. Gide. *Principles of Political Economy, Part II, Chapter* 1.

Penson. *The Economics of Everyday Life, Chapter VIII.*

Ashley. *English Economic History, Vol. I.*

L. L. Price. *A short History of English Commerce and Industry, chapters I to VII.*

A. Toynbee. *The Industrial Revolution.*

J. A. Hobson. *Evolution of Modern Capitalism, Chapters III and IV.*

परिशिष्ट

शुक्रनीति में सम्पत्ति सम्बन्धी दो प्रकार की विद्याएं कही हैं: (१) वार्ता और (२) अर्थशास्त्र। इन दोनों के यह लक्षण दिये हैं: '**वार्ता** में व्याज, व्यापार, कृषि और गोरक्षा का वर्णन होता है। जो पुरुष इस विद्या में निपुण हो, उसे धन की कमी नहीं होती।

अर्थशास्त्र में श्रुति तथा स्मृति की आज्ञाओं के अनुसार राजाओं के कर्मों और शासन विधियों का वर्णन होता है और **उचित** रीति से धन **के उपार्जन करने के साधनों का ज्ञान होता है**'।

अतः स्पष्ट है कि प्राचीन आर्य्य अर्थशास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखते थे और उनका लक्षण आधुनिक लक्षण से बहुत भिन्न नहीं। **म० सीगर** ने अर्थशास्त्र को 'व्यापार व्यवसाय की सामाजिक विद्या' कहा है (Economics is the Social Science of business), शुक्राचार्य्य और सीगर के दिये हुए लक्षणों में भेद नहीं, यदि हम **वार्ता** और **अर्थशास्त्र** को मिला दें।

दूसरा खण्ड

सम्पत्ति की उत्पत्ति तथा वृद्धि

के

नियम

अध्याय १.

सम्पत्ति की उत्पत्ति

१. उत्पत्ति का अर्थ.

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यत्नवान होकर वस्तुओं में उपयोगिता पैदा करने वा बढ़ाने का नाम उत्पत्ति करना है। विद्यमान पदार्थ पर किसी प्रकार का यत्न लगा कर उसे नरनारी के लिये अधिक उपयोगी लाभकारी बना देने का नाम सम्पत्ति की उत्पत्ति है[१]।

अब तक यह तो प्रकट हो चुका है कि उत्पत्ति का कारण आवश्यकता है, हम पदार्थों को इस लिये पैदा करते हैं कि उन का प्रयोग करें। यदि थोड़े पदार्थ पैदा किये जावें, तो थोड़ी ज़रूरतें पूरी होंगी, यदि अधिक पदार्थ उत्पन्न हों, तो बहुत सी ज़रूरतें रफ़ा हो सकती हैं। किन्तु उत्पत्ति शब्द के कहीं यह अर्थ न समझने चाहियें कि जो पदार्थ संसार में पहिले

१. इस लक्षण की परिमिति २य तथा ७वें प्रकरणों में देखो।

मौजूद नहीं, उस का हम अपने यत्नों से प्रकाश करते हैं। हमारे ऋषियों और आज कल के विज्ञान का यह मुख्य सिद्धान्त है कि अभाव से भाव और भाव से अभाव नहीं हो सकता, अर्थात् न किसी पदार्थ की उत्पत्ति होती है और न नाश। दोनों अवस्थाओं में रूप का परिवर्तन होता है। जब एक बढ़ई कुर्सी बनाता है तो लकड़ी पहिले ही विद्यमान होती है, एवम् उस के हथयार भी, किन्तु वह अपने औज़ारों से लकड़ी के रूप को बदल कर मनुष्यों के लिये उसे अधिक उपयोगी बना देता है। कोई मनुष्य कच्चा अनाज नहीं खाता, किन्तु उस पर यत्न लगाने से रोटियां बना कर आनन्द से खाता है, यही उत्पत्ति करना है। अर्थात् नया माद्दा हम पैदा नहीं करते, हम विद्यमान माद्दे में कुछ विशेष गुण वा शक्ति (उपयोगिता) उत्पन्न करते हैं जिस से कि वह पूर्व की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो जाता है। इसे चित्र में यूं दिखा सकते हैं:—

कुर्सी की उपयोगिता		औज़ारों की सहायता द्वारा
ऋण	=	बढ़ई के यत्न से सम्पत्ति
लकड़ी आदि की उपयोगिता		पैदा हुई।

---

१. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। भगवद्गीता

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्य्यम्। सांख्य तत्वकौमुदी, कारिका ९

रोटी की उपयोगिता		औज़ारों द्वारा
ऋण	=	पाचक के यत्न
अनाज की उपयोगिता		से सम्पात्ति पैदा हुई।

२. क्या सर्व प्रकार के यत्नों से सम्पात्ति की उत्पात्ति होती है? नहीं। जिस यत्न से सम्पात्ति की उत्पात्ति नहीं होती उसे वाकर साहब ने सम्पत्ति की उत्पात्ति के लक्षण में यूं बताया है:—

उत्पाति उन भिन्न २ क्रमों का नाम है जिन में से एक पदार्थ उत्तरोत्तर गुज़र कर अपने मालिक को अन्य वस्तुएं वा अन्यों का श्रम देती है, बशर्तेकि इस विनिमय में राज्य तथा पारिवारिक प्रेम का हस्तात्तेप (दख़ल) न हो।

भिन्न क्रमों से चूंकि उपयोगिता उत्पन्न होती है। अतः एक पदार्थ में आर्थिक उपयोगिता का उत्पन्न करना वा बढ़ाना ही उस का उत्पात्ति करना कहलाता है।

अर्थशास्त्र के अनुसार उसी वस्तु की उत्पात्ति कही जा सकती है—जिस के बदले श्रम और धन मिल सके, यदि यह दो न मिल सकें तो आर्थिक अभिप्राय में उस की उत्पात्ति नहीं कही जावेगी, जैसे:—

कई देशों में प्रजा से बाधित सैन्य सेवा लेने की विधि (System of conscription) में राज्य की ओर से सैनिकों से काम लेने के लिये नियम बना हुआ है। अतः विशेष आयु में प्रत्येक पुरुष को कुछ वर्षों तक काम बाधित हो कर करना पड़ता है। राजकीय आज्ञा का भङ्ग नहीं किया जा सकता और न ही सेवा करने के बदले धन मिलता है। इसी प्रकार माता पिता पुत्र परस्पर एक दूसरे की सेवा करते हैं, तो यह उत्पत्ति नहीं कहलाती क्योंकि वे एक दूसरे को सेवाओं के बदले धन नहीं देते।

उपयोगिता का लक्षण—किसी पदार्थ में मानुषीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने की जो शक्ति वा योग्यता विद्यमान होती है, उस का नाम उपयोगिता है। यह उन सब पदार्थों में पाई जाती है जो किसी रूप में भी मनुष्य की ज़रूरतों को पूरा करते हैं।

क्या उपयोगिता स्वाभाविकी है? पदार्थों में यह स्वाभाविक गुण नहीं है किन्तु काल, सभ्यता और मनुष्यकृत्-आपेक्षिक है। उपयोगिता का आधार मनुष्यों की आवश्यकताओं और इच्छाओं पर है। जब किसी पदार्थ की आवश्यकता उत्पन्न हो, तभी उपयोगिता उत्पन्न हो सकती है, पहिले नहीं

इसी प्रकार जब किसी पदार्थ की आवश्यकता जाता रहे तो उस की उपयोगिता भी गुम हो जाती है। अर्थात् उपयोगिता किसी पदार्थ का स्वाभाविक गुण नहीं, उस का भाव तथा अभाव देश, काल और पात्र से होता है। हबाशियों क लिये सोना चान्दी, कोइला वा कलाओं की उपयोगिता नहीं। पश्चिम में अब चर्खों की ज़रूरत नहीं। इस लिये उन की कुछ उपयोगिता नहीं।

४. उपयोगिता तथा मूल्य—सब आर्थिक पदार्थों का मूल्य होता है और सब कीमती चीज़ों की उपयोगिता होती है, किन्तु सब उपयोगी पदार्थों का मूल्य होना आवश्यक नहीं। वायु, जल, और प्रकाश बहुत उपयोगी पदार्थ हैं किन्तु उन का कोई मूल्य नहीं, परन्तु जिस वस्तु की कोई उपयोगिता नहीं, वह कदापि मूल्य वाली नहीं हो सकती। जो मनुष्य मांस नहीं खाता, वह कदापि उस को धन दे कर नहीं खरीदेगा।

६. आर्थिक उपयोगिता धार्मिक उपयोगिता से भिन्न है। धार्मिक उपयोगिता वही उपयोगिता है जो शरीर, मन और आत्मा के वास्तविक सुख के लिये हो। वह भिन्न २ समयों और भिन्न २ जातियों में मनुष्यों के उद्देश्यों से निश्चित होती है।

प्रायः यह सत्य है कि आवश्यकताएं सात्विक होनी चाहियें, राजसी या तामसी नहीं, परन्तु राजसी या तामसी वस्तुएं भी करोड़ों मनुष्य प्रयोग में लाते हैं। वे ख़रीदी और बेची जाती हैं, अतः सम्पत्ति शास्त्र उन की उपेक्षा नहीं कर सकता और उन्हें उपयोगी इस कारण कहता है कि लोगों को उन की आवश्यकता है। अतः सम्पत्ति शास्त्र के उपयोगी शब्द में आचार वर्धक व आचार नाशक पदार्थों का कोई विचार नहीं-वह unmoral शब्द है।

७. आर्थिक उपयोगिता के चिन्ह—जो वस्तुएं (i) श्रम का फल हों (ii) विनिमय साध्य हों और (iii) आयत्व परायण हों—वही आर्थिक उपयोगिता रखती हैं। श्रम से अभिप्राय केवल शारीरिक श्रम का ही नहीं है, किन्तु मानसिक और आत्मिक कष्टों का भी है। जिन वस्तुओं में श्रम का गुण विद्यमान हो परन्तु अन्य दो गुण न हों, वे सीधे तौर पर आर्थिक उपयोगिता नहीं रखतीं। सब प्रकार की क्रीड़ाओं में शारीरिक श्रम होता है, परन्तु न वे विनिमय साध्य हैं और न आयत्व-परायण हैं, अतः उन की कोई आर्थिक उपयोगिता नहीं है।

परन्तु दूसरी ओर सब प्राकृतिक वस्तुएं अपौरूषेय व अकृत्रिम हैं अर्थात् मनुष्य के श्रम का वे परिणाम नहीं। तथापि जो २ उन में से आयत्व-परायण और विनिमयसाध्य

हैं उन की आर्थिक उपयोगिता होती है। सूर्य्य की किरणें, वायु, तथा जल आदि न आयत्वपरायण हैं और ना हीं विनिमय साध्य हैं अतः उनकी आर्थिक उपयोगिता नहीं है। इस कारण विनिमय साध्य और आयत्व परायण होना उपयोगिता के बड़े चिन्ह हैं। इन्हीं के कारण उपयोगिता मापी जा सकती है।

उपर्य्युक्त लक्षण में वे गुप्त योग्यतायें हम ने निकाल दी हैं जो कि अपरिमित प्राकृतिक वस्तुओं से प्राप्त हो सकती हैं और वे अन्तरीय अप्राकृतिक वैयक्तिक योग्यताएं भी नहीं शामिल कीं, जिन्हें व्यक्ति से जुदा नहीं कर सकते, अर्थात् जो विनिमय साध्य नहीं हैं।

लौकिक और आर्थिक उपयोगिता में दो भेद हैं

(i) धर्म और सदाचार के विरुद्ध भी जो पदार्थ आवश्यकता पूर्ण करता है, उसकी आर्थिक उपयोगिता है।

(ii) मुफ़्त पदार्थों की आर्थिक उपयोगिता नहीं, यद्यपि लौकिक उपयोगिता है। उपयोगिता के जो रूप ऊपर दिखाये गये हैं उन्हें चित्र में यूं स्पष्ट किया जाता है:

उपयोगिता
अन्तरीय वैयक्तिक उप०
बाह्यीय वैयक्तिक उप०
अपारिमित प्राकृतिक पदार्थों की उपयोगिता
आर्थिक उपयोगिता
सम्पत्ति
आय=
(वर्तमान के व्यय के लिये)
पूंजी=
(भावी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये)

८. आर्थिक उपयोगिता के पांच प्रकारः—उपयोगिता की वृद्धि का नाम उत्पत्ति है, पर उपयोगिता की वृद्धि पांच प्रकार से की जाती है, रूप काल, स्थान के भेद से वा अधिकार के संयोग से। और पदार्थों में रूप का भेद दो तरह से होता है—इन की संक्षिप्त व्याख्या यह है:—

१. आरम्भिक उपयोगिता-भूमि, कानों तथा समुद्रों fisheries से जो वस्तुएं उत्पन्न होती हैं, उन में जो २ उपयोगिता आती है, वह आरम्भिक उपयोगिता है। कच्चा माल उत्पन्न करने वाले सर्व पेशे आरम्भिक उपयोगिता लाते हैं।

२. रूपान्तर उपयोगिताः—कपास से सहस्त्रों प्रकार के वस्त्र बनाना-लोहे के सैंकड़ों औज़ार बनाना, वृक्षों से मेज़, कुर्सी, सन्दूक, द्वार, काग़ज़ बनाना, यह कपास, लोहे वृक्ष का रूपान्तर करके उपयोगिता लाना है। सर्व प्रकार के शिल्प व व्यवसायों से यह रूप पैदा होता है।

३. काल उपयोगिताः—कई वस्तुएं रखने से ही अधिक मूल्यवान् हो जाती हैं-गुड़, कस्तूरी, चावल, पान, शराब। व्यापार से यह उपयोगिता उत्पन्न होती है।

४. स्थान-उपयोगिताः—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जब वस्तु लाई जावे, तो उस की उपयोगिता प्रायः बढ़ती है। कई लोग इसे उत्पत्ति नहीं समझते-इस कारण स्थानान्तर में पदार्थ

ले जाने वाले मनुष्यों को वे अनुत्पादक कहते हैं। परन्तु ध्यान देने पर पता लगता है कि यह आकार उपयोगिता का कोई साधारण आकार नहीं है। यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने वाले मनुष्य या यान न हों, तो वस्तुएं व्यर्थ जा सकती हैं। उन सम्पत्तिशास्त्र वेत्ताओं का कथन जो कि यानों में लगे हुए मनुष्यों को अनुत्पादक बताते हैं—ठीक नहीं है। यह मनुष्य उत्पादक ही हैं। उन का उत्पादक होना तभी मालूम पड़ सकता है, जब कि उन को हटा दिया जाय। यह उपयोगिता व्यापार के द्वारा ही वस्तुओं में लाई जाती है।

५. अधिकार-उपयोगिताः—जिस का किसी वस्तु पर अधिकार हो जावे, वह उस से लाभ उठाता है। अतः किसी पुरुष के अधिकार के होजाने से वस्तु में उपयोगिता आ जाती है, जैसे कि अमेरिकादि देशों की भूमि की उपयोगिता योरुपी लोगों के हाथ में आने से बढ़ रही है। भूमि को किसी के बाप दादा ने उत्पन्न नहीं किया, किन्तु जिस व्यक्ति का पहिले पहिल किसी भूमि पर अधिकार हो गया, उस ने दूसरों को वही भूमि देने पर उस का मूल्य लिया। स्पष्ट है कि अधिकार से भी उपयोगिता उत्पन्न होती है।

६. उपयोगिता के आकार पूर्ण रीति से समझने के लिये अध्याय ४. में व्यवसायों के रूपों पर फिर से दृष्टि डालिये। साथ ही नीचे के अति मनोरञ्जक चित्र को सावधानी से पढ़िये।

व्यवसाय	क निर्मित पदार्थों की क़ीमत	ख उन पदार्थों के बनाने में कच्चे माल की की.	ग कच्चे माल पर जो क़ीमत बढ़ाई गई	घ काम करने वालों की संख्या
	पाउण्ड्ज़	पाउण्ड्ज़	पाउण्ड्ज़	
जो पदार्थ १०००००००० पाउण्ड से अधिक उत्पन्न होते हैं:—				
कोयले का खोदना	१२३,२४१,०००	१६,८८१,०००	१०६,३६४,०००	८४०,२८०
कपास के कार्ख़ाने	१७६,९४०,०००	१२६,६६६,०००	४६,६४१,०००	५७२,८६६
लोह सम्बन्धी सब कार्ख़ाने ...	१०५,५६७,०००	७४,६४६,०००	३०,९४८,०००	२६२,२२५
अन्जीनीयरिंग	१०१,५६६,०००	५२,१७४,०००	४६,४२५,०००	४१५,५६१
जो पदार्थ५००००००से१०००००००० पाउण्ड तक उत्पन्न होते हैं:—				
ऊन के कार्ख़ाने	७०,३३१,०००	५०,८७६,०००	१६,४५२,०००	२५७,०१७
आटा पीसने के कार्ख़ाने ...	६५,२५५,०००	५८,८८७,०००	६,३६८,०००	३६,२०७
मद्य निकालने के कार्ख़ाने ...	६७,११०,०००	२५,९७०,०००	४१,१४०,०००	८५,२२२
वस्त्र बनाने के कार्ख़ाने ...	६४,८०३,०००	३७,४६८,०००	२७,३३५,०००	४४२,२१७
मकान का सामान	८७,९६७,०००	४५,०१३,०००	४२,९५४,०००	५१८,६६१

जो पदार्थ २०००००००से ५००००००० तक उत्पन्न होते हैं :—				
जहाज़ बनाने के कारखाने ...	४८,११०,०००	२७,६४३,०००	२०,२६७,०००	२०६ ६१५
रसायनिक पदार्थ	२३,४४७,०००	१३,६८३,०००	६,४६४,०००	५१,०८८
रेल	३४,७०३,०००	१७,६००,०००	१७,१०३,०००	२४१,५२६
भोजन	३८,६०२,०००	२७,३०५,०००	११,५६७,०००	११०,३०४
तम्बाकू	२३,७६६,०००	१७,६८८,२००	५,८८१,०००	३७,४५६
बूटस्	२२,६५६,०००	१३,६६४,०००	८,६६५,०००	१२६,५६४
छापने	३७,६२०,०००	१३,९४०,०००	२३,६८०,०००	२१८,४४६
गैस	३१,६०७,०००	१४,३२६,०००	१७,२७८,०००	८३,५३१
सन	३१,७९८,०००	२२,४६०,०००	६,३३८,०००	१५३,४६४
२०००००००० पाउण्ड से अधिक का योग	११९६०९२०००	६६१,४६२,०००	४६४,६३०,०००	४,६६७,५५६
जो पदार्थ २०००००० पाउण्ड की मात्रा से कम बनते हैं—कोक १०, साईकल और मोटर, ११, चम्रा, ८, कागज़ १३, लैस, १० ताम्बा और पितल, १७साबुन तथा मोमबतियां, १२, धोना और रंगना, १८, कोको और मिठाई १६ खाण्ड, १२, १५	६००,९०८,०००	३८३,५३८,०००	२१७,३७०,०००	२,२३८,४४४

व्यवसाय-वाली पङ्क्ति में भिन्न २ पेशों के नाम दिये हैं—बड़े २ सब शिल्पी पेशे वहां बताए गये हैं और साथ ही यह भी दिखाया है कि वे पदार्थ कितने पाउण्डज़ के बनते हैं—यही मूल्य क में दिया गया है।

ख पङ्क्ति में पदार्थों के बनाने में जो कच्चे माल की ज़रूरत हुई–उस की कीमत दी है–कपास, बेलने की कला के लिये कच्चा माल है, कातने की कला के लिये रूई कच्चा माल है और वस्त्र बुनने वाली कला के लिये तागा कच्चा माल है। ख में १२६६६६००० पाउण्डज़ कपास का मूल्य नहीं बल्कि कपास, रूई, तागा आदि का संयुक्त मूल्य है, बेहतर होता कि आरम्भिक कच्चे माल (जैसे कपास) का मूल्य दिया जाता किन्तु इस वार ऐसा नहीं हो सका।

ग पङ्क्ति में कच्चे माल पर जो कीमत श्रमी, पूंजिपति, व्यवसायपत्ति, साहसिक, राज्य तथा भूमि के किराया लेने वाले की ओर से बढ़ाई गयी–उस की मात्रा दी है। कपास के कार्ख़ानों में ५७२८६६ नर नारी सब प्रकार के यत्न करने वाले पांच साधनों के स्वामी लगे हुए थे, उन को ४६६४१००० पाउण्डज़ आमदनी हुई। इसी में से इन्हों ने राजकरों को देकर शेष का भोग किया वा कुछ बचाया। अन्य पेशों में भी ऐसा ही समझना। अब स्पष्ट होगया होगा कि शिल्प-व्यवसायों में उपयोगिताएं कैसे बढ़ाई जाती हैं। भारतवर्ष में उत्पत्ति का ऐसा हिसाब नहीं लगाया

गया, इस कारण इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड की उत्पत्ति का व्यौरा दिया गया है ॥

प्रश्न

१. अर्थशास्त्र में उत्पत्ति से क्या अभिप्राय है ?

२. कई प्रकार के यत्नों के नाम लो, जिन से आर्थिक उपयोगिता उत्पन्न नहीं होती ।

३. उपयोगिता तथा मूल्य का क्या सम्बन्ध है ?

४. क्या सब आर्थिक पदार्थ धार्मिक तौर पर लाभकारी होते हैं ?

५. उपयोगिता का लक्षण तथा रूप लिखो ।

६. आर्थिक उपयोगिता के चिन्ह तथा प्रकार बताओ ।

७. आय तथा पूंजी में क्या भेद है ?

८. पदार्थों तथा उपयोगिता की किस्मों की तुलना करो ।

९. क्या व्यापारियों का श्रम अनुत्पादक है ?

१०. 'घोड़ा सम्पति नहीं यदि हम उस पर चढ़ नहीं सकते, नाही चित्र सम्पति है यदि हम उसे देख नहीं सकते,' रास्किन के इस कथन की पुष्टि करो ।

निर्देश

Nicholson. *Principles of Political Economy, Vol. I. Book I., Chapter I.*

L. A. Walker. *Political Economy, Part I, Chap I.*

H. Sidgwick. *Principles of Political Economy, Bk. I, Chapter III.*

Penson. *The Economics of Everyday Life, Bk. II, Chapter III.*

अध्याय २

उत्पत्ति के साधन ।

पुराने अर्थशास्त्रज्ञों के अनुसार—पुराने अर्थशास्त्रज्ञ उत्पत्ति के तीन साधन मानते थेः भूमि, श्रम तथा पूंजी। यह विभाग निस्सन्देह बहुत सरल है और कला से उत्पत्ति किये जाने के पूर्व के समय के लिये पूर्ण है, किन्तु वर्तमान उत्पत्ति के लिये सत्य नहीं। देखिये, घट के बनाने के लिये कुम्हार को मट्टी, जल और चक्र चाहियें, अतः मनुष्य का श्रम, भूमि तथा चक्ररूपी पूंजी चाहियें। एवं किसान को खेती करने के लिये भूमि, बैल, बीज, हलरूपी पूंजी तथा अपना और अन्यों का श्रम चाहिये। इसी प्रकार हबशियों को भी शिकार खेलने के लिये कोई पशु पक्षि रूपी भूमि, अस्त्र शस्त्र रूपी पूंजी और स्व-श्रम आवश्यक हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि उत्पत्ति के तीन साधन होते हैं और उन का परस्पर अखण्ड सम्बन्ध है।

२. उक्त विभाग में त्रुटि—किन्तु आज कल की कला द्वारा उत्पत्ति का उदाहरण लीजिये, यदि किसी कपास बेलने वाले कार्खाने में १०० नर नारी कला पर काम कर रहे हों, तो

कलारूपी एक प्रकार की पूंजी, १०० नर नारियों का विविध प्रकार का श्रम और भमि की उपज–कपास वहां उपस्थित हैं। किन्तु अन्य कई साधन भी ह जो खोज करने से मिल सकते ह। कार्खाने का अध्यक्ष श्रम तो करता है किन्तु वह १०० नर नारियों को अपने २ काम में लगाता, कितनी कपास कब बेली जावे और कितने आदमियों को काम में लगाया जावे और कहां २ काम पर लगाया जावे–इन परमावश्यक बातों का निश्चय करता है—यह प्रबन्ध का काम बहुत ज़रूरी है इस के बिना कार्खाना नहीं चल सकता—अतः इसे पृथक करना चाहिये। यदि वह कार्खाना एक कम्पनी का हो तो स्पष्ट है कि कम्पनी के हिस्सेदार उस कार्खाने के हानि लाभ को उठाने वाले हैं, प्रबन्ध कर्त्ता व श्रमी हानि लाभ के उठाने वाले नहीं। इस लिये यह नये प्रकार का साधन हुआ। यदि कार्खाना विद्युत की शक्ति से चलता हो और विद्युत एक प्रपात से पैदा की जा रही हो, तो प्रकृति की यह शक्ति कार्खाने के चलाने में साधन है, इस कारण 'भूमि' शब्द संकुचित है–इस के स्थान पर प्रकृति शब्द रखना चाहिये। अभी साधनों का ब्यौरा पूर्ण नहीं हुआ। उस में राज्य भी मिलाना चाहिये। यदि राज्य की ओर से रक्षा न हो, तो कार्खाना कदापि नहीं चल सकता, या राज्य

ही अत्याचारी हो तो कारख़ानों का स्थापित होना और स्थापित होकर चलते रहना असम्भव है।

३. उत्पत्ति के छैः साधन

पूर्वोक्त से यह परिणाम निकला कि

१. अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के पूर्व मनुष्य को अवश्य शरीर व मन की शक्तियें लगा कर यत्न करना पड़ता है=श्रम।

२. जहां २ समूहों में आदमी काम कर रहे हों वहां प्रबन्ध की आवश्यकता होती है ताकि सब अपने २ कामों में ठीक तौर पर लग सकें=व्यवस्था।

३. आज कल के सामूहिक कामों को करने के लिये हानि लाभ का खतरा उठाना होता है। इस भय में पड़नेवाला एक व्यक्ति व समूह (कम्पनी) हो सकता है=साहस।

४. उत्पत्ति करने के लिये मनुष्य प्रकृति का प्रयोग पदार्थ वा शक्ति रूप में करता है=प्रकृति।

५. उत्पादक यत्न के लिये औज़ार, कला तथा कच्चा माल चाहिये। साथ ही उत्पत्ति करने में समय लगता है क्योंकि जब तक पदार्थ पूर्ण हो कर बिक न जावे, तब तक पदार्थ बनवाने

वाले को आय नहीं होती, इस लिये पूर्व काल के संचित धन में से उत्पत्ति करने वालों का बदला देना पड़ता है=पूंजी।

६. उत्पत्ति का कर्म विघ्नों के विना चल सके, तदर्थ रक्षा तथा सामाजिक उत्साह की आवश्यकता है=राज्य।

४. उत्पत्ति के उक्त साधनों को चित्र में यूं दिखा सकते हैं।

(क) मानुषी यत्न के रूप	(ख) बाह्य सहायताएं
१. श्रम	४. प्रकृति
२. व्यवस्था	५. पूंजी
३. साहस	६. राज्य

५. प्रकृति और मनुष्य का भेद करते हुए साधनों का निम्न लिखित चित्र मनोरञ्जक होगाः इस में उन ६ साधनों के प्रयुक्त करने वालों के नाम भी टेढ़े टाइप में दे दिये हैं।
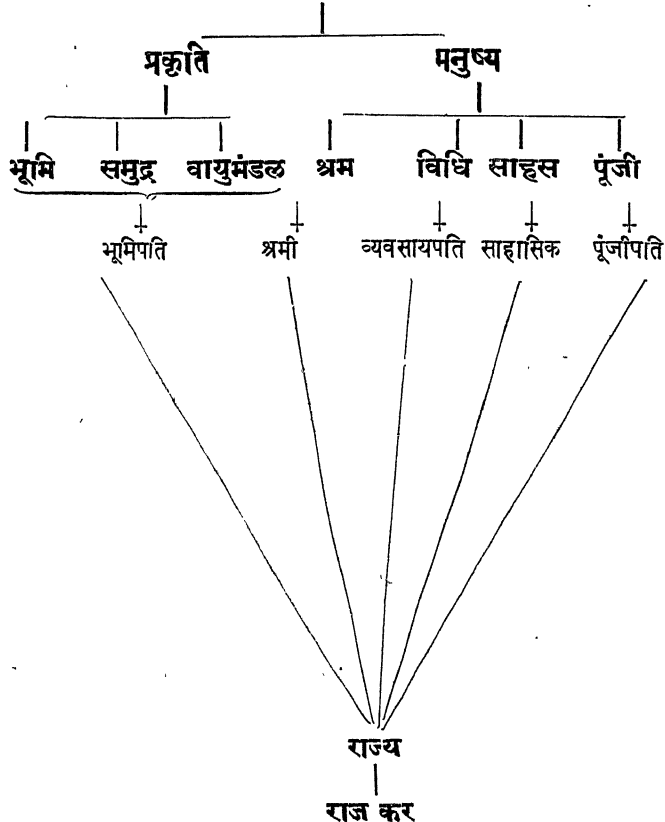
अब प्रत्येक के विषय में संक्षेप से निर्देश किया जाता है, ताकि विस्तार पूर्वक जो कुच्छ उन के बारे में अगले अध्यायों में लिखा जावेगा, उसे पाठक सुगमता से समझ सकें।

६. प्रकृति—इस प्राकृतिक जगत् में जो पदार्थ पाये जाते हैं तथा उन की सम्बन्धिनी जितनी शक्तियां हैं—उन सब के समूह को यहां प्रकृति कहा है। प्रकृति हमें यह पदार्थ प्रदान करती है:—

(१) भूमि का तल तथा उस की उत्पादक शक्तियां।

(२) समुद्र का तल तथा उस में विद्यमान पदार्थ।

(३) विविध प्रकार के खनिज पदार्थ।

(४) वायु जिस से हम श्वास लेते तथा जिस में उड़ते हैं।

(५) वायु मण्डल में उत्पन्न होने वाली अवस्थाएं-जो मनुष्य के यत्नों को कमो बेश करती हैं।

(६) पशु, पक्षि, कीट, जलचर आदि जीव तथा सर्व प्रकार की औषधि और वनस्पति।

(७) गर्मी, सर्दी, प्रकाश, जल, वायु, भाप तथा विद्युत आदि की शक्तियां।

इन पदार्थों की विद्यमानता से इस संसार में मनुष्य जीता है, इन्हीं से उत्तरोत्तर अधिक उपयोग लेने का नाम सभ्यता

और समृद्धि की वृद्धि है और इन से कम उपयोग लेने का परिणाम दरिद्रता होती है । बुद्धि तथा आत्मा के बलों से प्रकृति को नरनारी जितना अधिक वश में करें, उतना अधिक वे सुखी और उन्नत हो सकते हैं । (अध्याय ५)

७. श्रम—व्यवसाय के आधुनिक संसार में दो प्रकार के उत्पन्न करने वाले पुरुष दीख पड़ते हैं:—

(i) स्वतन्त्रता पूर्वक यत्न करने वाले—जैसे डाक्टर, वकील, गायक, नट और हुनर वाले श्रमी जो किसी के आधीन होकर काम नहीं करते, जिन्हों ने पदार्थ निर्माण के लिये अपनी स्वतन्त्र दुकानें खोली हुई हैं ।

(ii) समूह में काम करने वाले मनुष्य जो कार्खानों, बैंकों वा बड़ी दुकानों में काम करते हैं—इन में काम कराने वालों तथा काम करने वालों की दो श्रेणियां होती हैं । इन में से काम कराने वालों—प्रबन्धकर्त्ताओं के काम को श्रम नहीं कहते—शेष सब मनुष्यों के यत्न को श्रम कहते हैं ।

८. व्यवस्था—के बारे में जो कुछ पूर्व कह चुके हैं, वह पर्याप्त है किन्तु इतना कहना आवश्यक है कि पुराने अर्थशास्त्र इसे साधनों की सूची में न रखते थे । किन्तु आज कल इस के

विना पूंजी, श्रम, साहस तथा प्रकृति का संयोग करने वाला कोई नहीं।

९. साहस—व्यापार व व्यवसाय में भय का ज़िम्मा लेना कोई साधारण काम नहीं। इस लिये म० पैन्सन साहब ने इसे उत्पत्ति के साधनों में रख कर एक आवश्यक काम की ओर खूब दृष्टि आकर्षित की है। निस्सन्देह अब तक इसे प्रबन्ध कर्ताओं, अध्यक्षों—जिन्हें हम ने व्यवसायपति कहा है–का एक काम समझा जाता था. इस कारण व्यवस्था में यह साधन भी मिला हुआ था, इस का कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं था। किन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि व्यवसायपतियों का यह आवश्यक कर्म नहीं।

(१) जिस व्यवसाय का स्वामी एक आदमी हो, उसे व्यवस्थापक के साथ २ साहसिक का भी काम करना पड़ता है। परन्तु प्रायः यह आदमी उस काम में अपना धन भी लगाता है, अर्थात् पूंजीपति भी वही होता है। किन्तु जैसे हम व्यवसायपति और पूंजीपति के क्षेत्रों को पृथक करते हैं, वैसे हमें व्यवसाय-पति और साहसिक के कर्मों को भी पृथक करना चाहिये।

(२) मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों में हिस्सेदार अर्थात् पूंजीपति लोग सब प्रकार के हानि लाभ का भार उठाते हैं, न कि व्यवस्थापक–व्यवसायपति।

(३) सहोयोगी समितियों में काम करने वाले श्रमी अपने पर ही सब हानि लाभ का ज़िम्मा लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि साहस को, व्यवस्था से पृथक, उत्पत्ति का एक साधन मानना चाहिये।

१०. पूंजी—एक मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति है या तो वह वर्त्तमान काल में उस सारी सम्पत्ति का भोग कर सकता है—ऐसी दशा में कहा जावेगा कि उसने धन खर्च कर लिया; या उस का कुछ भाग भावि आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये रख सकता है-इस कर्म को लोक भाषा में बचत कहते हैं। आज कल धन सन्दूकों में बन्द कर के नहीं रखा जाता, बल्कि उसे उत्पत्ति करने में लगाया जाता है। बस इस रूप में बचा हुआ धन पूंजी कहलाता है। अतः पूंजी, एक मनुष्य व जाति की सम्पत्ति का वह भाग है जो आगे सम्पत्ति की उत्पत्ति में लगाया जावे। यदि वर्तमान में उस धन को ख़र्च कर लिया जावे, तो वह सम्पत्ति ही है, पूंजी नहीं। यदि एक डाक्टर के पास मोटर कार हो, तो जब वह परिवार सहित सैर करने के लिये उस पर सवार होकर जाता है, तब वह मोटर कार उस की सम्पत्ति है किन्तु जब इसी पर चढ़ कर शीघ्र २ रोगियों को देखता है तो वह पूंजी की सूची में प्रविष्ट हो जाती है। पूंजी से

हमारा अभिप्राय धन, रुपैये से नहीं, यद्यपि प्रायः सम्पत्ति तथा पूंजी को रुपैयों के रूप में दिखाया जाता है। रुपैये पैसे के अतिरिक्त मकान, कला, सामान, खाद्य पदार्थ आदि सब शामिल होते हैं। यहां पर इतना ही स्मरण रहे कि

राज्य अब तक पश्चिमी अर्थ शास्त्रज्ञों ने राज्य को उत्पत्ति का साधन नहीं माना किन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकिः—

(क) इस संसार में बलवानों और निर्बलों की दो श्रेणियां हैं जिन्हें हम शीशे और पत्थर से उपमा दे सकते हैं। जब २ शीशे और पत्थर का संघर्षण हो, तभी २ शीशे की मौत है। इस कारण बुद्धिमान पुरुष सदैव शीशे और पत्थर को पृथक रखने का यत्न करते हैं। एवम् बलवानों को निर्बलों से दूर रखने के लिये राज्य की संस्था है, यदि यह न हो तो पशुओं के समान नर नारी परस्पर लड़ कर एक दूसरे का घात करते रहें, प्रत्येक आदमी को अपनी जान व माल की चिन्ता हो, उत्पत्ति कदापि न हो सके क्योंकि हर एक पुरुष को यह भय होगा कि कोई बलवान उस सम्पत्ति को छीन कर न ले जावे। किन्तु राज्य के दण्ड से कोई ज़बर्दस्ती नहीं करता, निर्दयी और क्रूर पुरुष भी मृदु हो जाते हैं, दुष्ट अपनी दुष्टता छोड़ देते हैं, चोर, रहज़न, घातक, व्यभिचारी और दुराचारी अपने २ पेशों को त्याग देते हैं, बस प्रकट है कि धन की उत्पत्ति या संचय राज्य की सुसंस्था के विना नहीं हो सकता, राज्य न हो तो अन्य पांच साधन निरर्थक पड़े रहते हैं।

(ख) हमारे ऋषियों ने राजा को ही आचार, विचार, व्यवहार का साधन माना है, वही लोगों को पापी वा

पुण्यी, धर्मी व अधर्मी बनाता है जैसे शुक्रनीति में कहा है कि धर्म और अधर्म के सिखलाने का कारण होने से राजा धर्म प्रवर्त्तक है राजा ही रीति नीति, आचार, व्यवहार का प्रवर्त्तक है, वही काल का निर्माता है। यदि आचार, विचार के बदलने वाला अचेतन का न हो तो कर्मों के करने में नर नारी की ज़िम्मेवारी नहीं रहती। अधर्म में काल और प्रजा का दोष नहीं होता, यदि प्रजा अधर्मी हो तो सारा दोष राजा के सिर पर है क्योंकि जिन बातों से राजागण प्रसन्न होते हैं प्रजा वही बातै करती है। पुण्यवान् राजा के राज्य में प्रजा धार्मिक होती है और पापी राजा के राज्य में प्रजा अधार्मिक होती है। महा पापी राजा के होने पर धन का क्षय, देश की हानि और शत्रु की वृद्धि होती है। काल और शुभ अशुभ क्रियाओं का कारण राजा ही है और राजा ही ऐश्वर्य्य का कारण है। जैसे चन्द्रमा से समुद्र को आनन्द होता है वैसे ही प्रजा के हितैषी राजा से प्रजा की समृद्धि बढ़ती है। यदि सुनेता न हो तो जिस तरह मल्लाह के बिना नाव नष्ट हो जाती है उसी तरह सुनेता राजा के

बिना प्रजा नष्ट हो जाती है । अतः स्पष्ट है कि राज्य को उत्पत्ति का साधन मानना चाहिये ।

(ग) आधुनिक समय में स्वन्त्रता का प्रचार है, प्रजा वर्ग राज्य का हस्ताक्षेप नहीं चाहते किन्तु फिर भी राज्य के हस्ताक्षेप की कोई सीमा नहीं । आज कल की राज सभाओं के कार्य्य विवर्ण पर दृष्टि डालिये तो ज्ञात होगा कि लग भग सारा समय आर्थिक प्रश्नों के विचार से ही व्यतीत होता है । अतः जैसे व्यपसायपत्ति एक कार्खाने के प्रबन्ध का चिन्तन करता है वैसे ही देश के सब आर्थिक कामों का चिन्तन राज्य करता है, प्रत्येक श्रेणी को अपनी २ अवाधि में रखता है और जातीय उन्नाति के सर्वोत्तम साधन विचारता है । इंगलैण्ड, जर्मनी, अमैरीका और जापान अपने सुराज्यों के द्वारा ही शीघ्र २ धनी समृद्धि शाली, शिक्षित, साहसी और यशस्वी हो गये हैं । भारतवर्ष में राज्य की उपेक्षा के कारण उन्नाति नहीं हुई । यादि आङ्गलों का सभ्य राज्य भारती प्रजा का पूर्ण हित चाहे तो एक सन्ताति में भारतवर्ष की दशा सर्वथा बदल जावे क्योंकि धर्मा-धर्म, समृद्धि और दरिद्रता का प्रवर्त्तक राजा ही है । अतः स्पष्ट हुवा कि प्रकृाति, पूंजी, श्रम, साहस, व्यवस्था और राज्य नामक उत्पत्ति के छैः

साधन होते हैं। अगले अध्याओं में इन्हीं की व्याख्या क्रमवार की जावेगी।

प्रश्न

१. आङ्गल अर्थशास्त्रज्ञों ने उत्पत्ति के कौन से तीन साधन कहे हैं? क्या वे पर्याप्त हैं?

२. उत्पत्ति के छः साधनों के नाम लो और उन की संक्षिप्त व्याख्या चित्रों सहित करो।

३. प्रकृति की सविस्तृत व्याख्या करो।

४. किन कारणों से हम ने साहस और राज्य को उत्पत्ति के साधन माना है?

५. श्रम के क्या अर्थ हैं? क्या क्लार्क, मेमार, लोहार, सरकारी हस्तपताल का डाक्टर, सिपाही और मन्दिरों के पुरोहित श्रमी हैं?

निर्देश

A. Marshall.—*Principles of Economics, Book IV. Chapter I.*

Penson.—*The Economics of Everyday Life chapter IV.*

Walker.—*Political Economy, Part II, chapter I.*

अध्याय ३।

प्रकृति

देशों की समृद्धि की भिन्नता के

प्राकृतिक कारण

जिन्हों ने देश विदेश का भ्रमण किया है वे शीघ्र ही अनुभव कर सकते हैं कि जैसे मनुष्य २ और जाति २ में भेद है वैसे देश २ की प्राकृतिक अवस्थाओं में भेद है, गत अध्याय के छटे अङ्क में प्रकृति के रूप बताये गये हैं अब भारतवर्ष को दृष्टि गोचर करते हुए उन की व्याख्या की जाती है।

२. जल-वायु की अवस्था.

(क) भारतवर्ष जैसे घर्म प्रधान देशों में प्राकृतिक शक्तियों की अधिकता होती है। वहां थोड़ा सा श्रम करने से अधिक उत्पत्ति हो जाती है, (ख) वहां बहुत से वस्त्रों तथा मकानों की आवश्यकता नहीं होती (ग) इन घर्म प्रधान देशों में आंधी, वर्षा, भूकम्प, बाढ़ तथा तूफ़ानों की भी अधिकता होती है। इस लिये भी मनुष्य अपनी रक्षा के लिये बहुत बड़ा यत्न

नहीं करते, क्योंकि उन्हें शीघ्र मरने का भय रहता है। (घ) भारत में थोड़ा सा आयास करने पर गर्मी के कारण मनुष्य जल्दी थक जाता है और रात्रि के समय भी काम नहीं कर सकता. किन्तु शीत प्रधान देशों में जहां रात दिन काम करने में कोई बाधा नहीं, वहां शरीर का गर्मी को रक्षित रखन के लिये खाहमखाह दिल लगा कर काम करना पड़ता है। अतः भारतवर्ष के नरनारी कभी उस मात्रा में उत्पात्ति नहीं कर सकते जिस मात्रा में योरुप और अमैरीका वाले कर सकते हैं।

(ङ) गर्म देशों में नाना प्रकार के रोग नरनारी के शरीरों को क्षीण वा दुर्बल कर देते हैं तथा उन की आयु घटा देते हैं। इस लिये भी यहां उत्पत्ति की कमी रहती है।

अतः सिद्ध है कि इन देशों के लोग आलसी व निरुत्साही होते हैं, शिल्प आदि की उन्नति भी वे अधिक नहीं कर सकते और सम्पत्ति की उत्पात्ति भी थोड़ी करते हैं। परन्तु शीत प्रधान देशों में घर्मप्रधान देशों की अपेक्षा सब बातें उलट होती हैं, अर्थात् वहां के निवासी उत्साही, धीर, परिश्रमी होते हैं। मकान इत्यादि उन्हें अच्छे बनाने पड़ते हैं। चूंकि सभ्यता को बढ़ाने वाले साधन शीत प्रधान देशों में पाये जाते हैं, अतः बक्कल, लोरीया, कार्ल मार्क्स जैसे महाशयों ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सभ्यताओं का आधार केवल प्राकृतिक शक्तियों पर होता है,

इस विषय को विस्तृत न करते हुए हम यह कह सकते हैं कि कई अन्य लेखकों ने धर्म्म और राज्य पर सभ्यता का आधार बतलाया है। जिस से बक्कल आदिकों का कथन असत्य हो जाता है। परन्तु इतना सत्य है कि इन सब का प्रभाव सभ्यता को उन्नत व अवनत करने में होता है। अतः प्राकृतिक शक्तियों का सभ्यता पर कुछ प्रभाव अवश्य होता है और आरम्भिक सभ्यताओं में जब कि धर्म तथा राष्ट्र की अवनति होती है, यह कारण ही लोगों को अच्छा वा बुरा बनाते हैं।

२. देश का आकार और स्थिति कैसी है ?

इंगलैण्ड की द्वैपिक स्थिति ने उस की व्यापारिक, शिल्प-संबन्धि राजनैतिक स्थितियों पर जो प्रभाव डाला है–वह उस क इतिहास के पढ़ने से पता लग सकता है। इंगलैण्ड अपनी विचित्र स्थिति के कारण इस भूमि के सब देशों से शीघ्र माल ला और ले जा सकता है। भारतवर्ष का व्यापार एशिया और पूर्वी अफ्रीका के देशों से सुगमता पूर्वक हो सकता है। यदि हम व्यवसाय में उन्नत हो जावें तो चीन, इरान आदि देशों का व्यापार हमारे हाथ में आ सकता है।

३ नदियों का प्रभाव—सभ्यता के उन्नत करने में नदियों का विशेष भाग रहा है। प्राचीन आर्य नदियों के किनारों पर बसे, भारतबर्ष के सब बड़े २ नगर नदियों के तटों पर हैं,

एवम् संसार के प्रत्येक देश में बड़े २ नगर नदियों पर स्थित मिलेंगे। दो कारण स्पष्ट हैं (१) पहिले पहिल नदियों के किनारों पर ही खेतीबारी हो सकती है, फिर सभ्यता की कुछ उन्नति होने पर नदियों के मार्ग से ही व्यापार की सुगमता रहती है, अतः वहीं ग्रामों से नगर बन जाते हैं। अधिक उन्नति होने पर नदियों से नहरें निकाल कर मनुष्य दूर २ के इलाकों को हरा भरा कर देता है। जिस देश में नदियों की कमी हो, वहां कृषि, व्यापार, एवं सभ्यता की कमी रहती है।

अफ्रीका का केवल एक भाग मिश्र ही सभ्यता की उन्नति करने वाला हुआ है, शेष सब द्वीप बञ्जर पड़ा रहा, क्योंकि पहिले भाग में भूमि को जोतने वाली तथा व्यापार कराने वाली नील नदी विद्यमान थी, परन्तु दूसरे भागों में नदियें नहीं हैं। और यदि कहीं हैं भी, तो बड़ी दूर २ पर हैं जिन के बीच में बड़े २ रेगिस्तान तथा दलदल हैं।

एवम् दाक्षिणीय वा उत्तरीय अमेरिका में बड़ी २ नदियां बहु शाखाओं समेत बहती हैं—वहां कृषि तथा व्यापार खूब हो सकते हैं, भारत की भी यही अवस्था है। पंजाब का माल हम पञ्चनद द्वारा सिन्ध तक पहुंचा सकते हैं और कृषि के लिये जल लेते हैं, गङ्गा, जमुना, ब्रह्मपुत्र, ईरावदी, गोदावरी तथा

उनकी शाखाओं से पूर्वी भारत वर्ष सींचा जाता है और उन से देश के इलाके ऐसे मिले हुए हैं कि खूब व्यापार हो सकता है। गङ्गा में १००० मीलों तक, सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्र में ८०० मीलों तक जहाज़ ले जा सकते हैं। अब तक भी ख़ासा व्यापार इन मार्गों से होता है।

उत्तर भारतवर्ष के मुकाबले में दक्षिण भारत में गमनागमन कठिन है। वह पर्वती देश है। सड़कें और रेलें बड़ी कठिनता से बन सकती हैं, नदियां भी छोटी हैं, जहाज़ों का चलना उन में मुशकिल है, साथ ही वर्षा ऋतु में उनमें बहुत बाढ़ आजाती है और सर्दी में जल सूख जाता है।

४. पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति का अनुमान उन पौदों और पशुओं की अधिकता से होता है जो मनुष्य के लिये उपयोगी हों। इस भूमि पर देश देश में इस अंश में भी घोर अन्तर है। एक ओर गोबी और शामू अरब, सहारा और राजपूताना के मरू स्थल हैं, दूसरी ओर गङ्गा जमुना का द्वाब काश्मीर की वादी और केलीफोर्निया की गेहूं से लहराती हुई भूमियां हैं। अगले अध्याय में उपजाऊ शक्ति के कारण दिए जाएंगे किन्तु यह तो हर एक को मालूम होगा कि प्रकाश तथा वर्षा ज़मीन की पैदावार को बढ़ाने में बड़े साधन हैं। मनुष्य, विज्ञान की सहायता से ज़मीन की उत्पत्ति बढ़ा सकता है किन्तु प्रकाश और वर्षा पर उस का काबू नहीं। विज्ञान वर्षा को भी काबू

करा देवे तो सन्देह नहीं, विद्युत के द्वारा वर्षा कराने की विधि तो एक अमेरीकन ने बताई है और हमारे ऋषि यज्ञों के द्वारा वर्षा लाया करते थे—यह साइन्स की सहायता से हम ने अपनी आग्निहोत्र व्याख्या नामी पुस्तक में सिद्ध किया है। किन्तु जबतक विज्ञान की बृद्धि नहीं होती, तबतक अनायास जो प्रकाश और वर्षा मिलती हो, उसी से ही काम चलाना होता है।

५. भारत एक महाद्वीप है। उस के भिन्न २ इलाकों में वर्षा की मात्रा भिन्न होती है। इस का देखना आवश्यक है क्योंकि आजकल की अवस्था में आधिकतर हमारा आश्रय कृषि के लिये वर्षा पर है, जहां २ वह बहुत ही आधिक वा थोड़ी होगी वहां की फ़सलें मारी जावेंगी, वहां उत्पत्ति थोड़ी होगी, या एक किसम का अनाज सब जगहों पर नहीं होगा बल्कि भिन्न प्रकार के अनाज होंगे। और जन संख्या का भी थोड़ा बहुत आधार वर्षा की मात्रा पर है। निम्न ब्यौरे में वर्षा की मात्रा और आबादी का घनापन दिखाया जाता है:—

इलाके का नाम	वर्षा की मात्रा इंचों में	आबादी प्रतिमील
बर्मा का तट	१५२.६	६३.२
पश्चिमी घाट	१०४.३	३३४.४
ब्रह्मपुत्र का इलाका	९२.३	८३.८

बंगाल डैल्टा	७१.४	५५२.३
हिमालय तथा उस	,,	,,
का पूर्वी दामन	७१.६	७४७.४
बर्मा (नमी वाला)	६४.३	२६.७
पूर्वी सतपुरा	५७.७	१०९.६
पूर्वी घाट (उत्तर)	५१.५	२२६.०
पूर्वी घाट (दक्षिण)	४८.०	३५९.१
सिन्ध–गङ्गा का मैदान, पूर्व	४७.५	४८६.६
पश्चिमी सतपुरा	३६.१	१४७.५
मध्य भारत	३४.६	१२८.७
दक्षिणी भारत	३३.२	२५६.६
बर्मा (खुश्क)	३२.६	७६.१
सिन्ध–गङ्गा का मैदान–पश्चिम	३०.९	४०९.३
दक्खन	२६.७	१६१.१
गुजरात	२७.६	१३६.१
उत्तर–पश्चिम का खुश्क इलाका	११.४	६७.१
बलोचिस्तान	८.७	११.१

६. भारती

(क्षेत्र एकड़ों में

प्रान्त	जंगल		अन्य भूमि जो कृषी योग्य नहीं है		कृषि योग्य भूमि
	१९०१–०२	१९११–१२	१९०१–०२	१९११–१२	१९०१–०२
अपर बर्मा... ...	५,७७१	११,८६४	२९,९८२	२१,७२०	८,६७७
लोअर बर्मा... ...	५,४१०	७,१०१	२४,८०६	२३.६१३	१५,४९४
आसाम	२,३१०	२,३३१	१,१७२	५,५१०	८.८९२
बंगाल	५,२२३	४,०८०	२२.७५९	१०,७३७	१२,२६७
बिहार और उड़ीसा	—	३.४२८	—	११,१५१	—
आगरा	८,६७९	८,७१८	६,४८१	७६,५७	८,२११
अवध	५९८	६१३	२,२७९	२,२४१	३,०८६
अजमेर मेड़वाड़ ...	८९	९१	३५०	८७०	१०८
परगना मानपुर ...	२०	१६	१	१	१०
पंजाब	३,५२२	३,३३३	८,४००	१२.५३१	१८,६९८
पाश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	३५०	३७४	३.२१०	२,२६९	२,२३५
सिंध	७५९	७९१	१४,५८६	१४,६८६	६,६७२
बम्बई	७,१८६	७,५८६	५,०००	५ ९५९	१,४३९
मध्य प्रदेश... ...	१०,९६७	१५,०९६	४,४६२	४,०९१	१५,१३१
बरार	२,४४२	२,२७३	८१०	८६६	२३८
मद्रास	१२,६३३	१२,७९८	१३.२९७	२४,९००	६३७२
कुर्ग	४०५	३५८	३२५	३४५	२२
योग	६६,३६४	८०,८५१	१३७,९४१	१४९,६०५	१०७.५४७

भूमि का प्रकार

किया है और छोड़ दिये हैं)

किंतु जो बंजर है	परती भूमि		वह क्षेत्र जिस पर फ़सल बोई गई		सम्पूर्ण भूमि	
१९११-१२	१९०१,०२	१९११-१२	१९०१-०२	१९११-१२	१९०१-०२	१९११-१२
११,१६३	२ ०१२	४,४३८	४,०५३	४,६२०	५०,४९४	५३,८०७
१४,८१६	३९२	७४४	७,३७३	८,७२०	५३,४७३	५४,९९४
१५.२२२	१,३१०	२,५३०	४.६०५	५,७१२	१८,२८९	३१,३०६
५,०६८	७,९५५	४,७३०	४९,३५७	२४,९३१	९७,५५०	४९,६४६
७,४२२	—	३,६१६	—	२७,५५६	—	५३,१७३
७,४४१	१ ९११	२,५९३	२०,८३४	२६,३९१	५१,११७	५२,८००
२,७५८	४२१	६६४	९,११५	९,२००	१५,४९९	१५,४७८
१५	९३	५७५	२९९	२००	९३९	१,७७१
७	१	—	६	७	३९	३१
१७,२९५	५,२६०	५.८३९	२१,५०९	२२,२५७	५७,३८२	६१,२५५
२,७२३	१,०५९	५६४	१,५८१	२२,८५	८.४३६	८,५७४
५,९०६	४,६६६	५,९३४	३,३८०	२९,४१	३,००६५	३०,२५७
१,५४३	७,१६२	१०,६३६	२२,७९१	२२,९०६	४३,५७९	४८,६२९
१३,५६१	३,२५०	२,२२९	१६,४६१	१७,९६९	५०,२७१	५२,९४६
३६७	८४५	८०९	७०,२०	७,०५७	११,३५६	११,३७२
९,३७१	५,७४४	८,९३५	२६,१५५	३३,०६८	६४,२०२	८९,०७३
२२	७२	१४६	१६६	१४१	१,०१२	१,०१२
११४,७००	४२,१४७	५४,९८२	१९९,७०८	२१५.९८२	५५३७०७	६१६१२१

७. उक्त ब्यौरे से १९११-१२ के बारे में यह परिणाम निकला कि भारत वर्ष में :—

सम्पूर्ण भूमि	....	....	....	१००
जंगल	....	....	....	१३.१
कृषि के अयोग्य भूमि		....	....	२४.३
कृषि योग्य किन्तु बंजर		....	....	१८.६
परती भूमि	....	....	....	८.६
फ़सल बोई गयी		....	....	३५.१

अर्थात् केवल ४४ प्रतिशतक भूमि अभी तक जोती गई है और उस में से भी ९% परती पड़ी रही है। अतः देश की सम्पत्ति अभी कितनी गुप्त है इस का ठीक अनुमान पाठकों को अब ज्ञात होता है। कम से कम अब से दुगनी भूमि जोती जा सकती है। भारत वासियों को उत्साही हो कर इस भूमि से लाभ उठाना चाहिये और राज का भी परम कर्तव्य है कि इस भूमि के जुतवाने में सर्व प्रकार की सहायता देवे।

पंजाब के निवासियों को विशेष तौर पर देखना चाहिये कि सब प्रान्तों से बढ़ कर उन के इलाके में ही १७२९५००० एकड़ भूमि कृषि के योग्य होते हुए भी अभी तक नहीं जोती गयी। पांच नदियों से सींचे हुए और विज्ञान की इतनी उन्नति हो जाने पर उत्साही पंजाबियों की यह दशा !

८. १९११ और १९१२ में कतिपय

I निम्न अंकों मे ०००

देश	चावल	गन्द्म	जौ	चोलम या ज्वर
अपर बर्मा	१,६५८	२७	—	४८५
लोअर बर्मा... ...	७,६३७	—	—	—
आसाम	४१,६१६	—	१	—
बंगाल	२०,६६१	१४३	६५	२
बिहार और उड़ीसा	१७,३६५	१,२८५	१,३४०	६५
आगरा	३४,३०	५,६४१	३,६७७	१,३६६
अवध	१,८४४	१,६६५	१,२३८	२६६
पञ्जाब	५१४	६.७२५	१,३३६	५५४
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	४७	१.१६६	२६६	५३
सिंध	१,०८६	३६८	१६	३६८
बम्बई	१,६८२	६८४	३८	६,०६४
मध्य प्रदेश	४,७८०	३,२६१	२३	१,६६७
बरार	४१	३२०	—	२,२४७
मद्रास	१०,२८६	१८	३	५,१६६
कुर्ग, अजमेर मेरवाड़ा और मानपुर ...	८३	२८	६३	३०
मीज़ान	७६,६३७	२५,०२५	८४३३	१,८,३८६

पदार्थों की उत्पत्ति का स्थलक्षेत्र ।

छोड़ दिये गये हैं ।

ज्वार					
कुम्बू या बाजरा	रगी या मरुवा	मकई	छोले	अन्य खाद्य पदार्थ तथा दालें	सम्पूर्ण खाद्य पदार्थ तथा दालें
३१८	—	१६१	३९	४६६	३,४५५
१	—	२१	१	२७	७,९८७
—	२	१९	१	८७	४,७२७
६	१५	९५	१७७	१,४१७	२२,९१०
६७	१,००९	१,६६१	९९२	४,५३७	२८,३५२
२,२४५	१५३	९९८	५.१७५	४,४०७	२७,३९३
६३६	३९	७९६	१,६९७	२,४४८	१०,९५९
१,१५५	१७	९५५	४.१००	१,०१९	१९,३७९
७६	—	४१०	१७४	९९	२,३५५
४१५	१	२	७६	२३२	२,५९१
४,६६४	५८२	१६५	४२२	२,७६३	१,७३६४
४२	२४	१४२	९८३	४,३४९	१५,३१२
७५	—	—	११७	६१७	३,४१९
३,३८४	२४,४८	११८	१३५	७,०२४	२८,५८६
११	६	४४	२८	१५	३१०
१३,०९३	४,२९६	५,५९१	१४,१२९	२९५०७	१९५,०९७

(६) इस चित्र से यह परिणाम निकलते हैं किः

(क) सारे भारतवर्ष में खाद्य पदार्थों का उत्पत्ति-क्षेत्र १६११-१२ में क्रम वार यूं था :—

चावल	....	....	....	३६.२८
गेहूं	....	....	....	१२.८
ज्वार	....	....	....	६.४
छोले	....	....	....	७.२
बाजरा	....	....	....	६.७
जौ	....	....	....	४.३
मकई	....	....	....	२.८
रगी या मरुवा		....	....	२.२
भिन्न	....	....	....	१५.०

(ख) बड़े २ अनाजों की उत्पत्ति में प्रान्तों का क्रम यह है:—

चावल—आसाम, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा, मद्रास, लोअर बर्मा, मध्य प्रदेश, आगरा, अपर बर्मा, अवध, बम्बई, सिन्ध, पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रांत, बरार।

गेहूं—पंजाब, आगरा, मध्य प्रदेश, अवध.........

जौ—आगरा, बिहार उड़ीसा, पंजाब, अवध.........

ज्वार—बम्बई, मद्रास, आगरा, बरार............

मकई—बिहार-उड़ीसा, आगरा, पंजाब, अवध, सिन्ध......

छोले—आगरा, पंजाब, अवध, मध्य प्रदेश।

नीचे दिये हुए दूसरे चित्र से ज्ञात होगा कि तेल निकालने वाले पदार्थ विशेषतया मध्य प्रदेश, मद्रास, बिहार-उड़ीसा, बंगाल, पंजाब, बम्बई, आगरा और बर्मा में बोए जाते हैं और मसाले तथा व्यञ्जनों की उत्पत्ति में जितनी भूमि सारे देश में लगी हुई है-उस का आधा भाग मद्रास में पाया जाता है। ईख बोने के लिये जितनी भूमि आगरा-अवध में लगी हुई है, उतनी सारे देश में नहीं। कपास की उत्पत्ति बम्बै, बरार, मद्रास, पंजाब, मध्य प्रदेश और आगरे में बहुत होती है। सन की उत्पत्ति का ठेका बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम ने लिया हुआ है, अफीम का ठेका आगरा-अवध ने। चाह आसाम और लोअर-बर्मा में बहुत होती है। नील बिहार-उड़ीसा, मद्रास और पंजाब में बहुत होता है। निम्न ब्यौरे में ००० छोड़ दिये हैं।

	तेल निकालने वाले पदार्थ	मसाले और व्यञ्जन	ईख
अपर बर्मा	१,१५०	५४	३
लोअर बर्मा	६८	२१	११
आसाम	३०१	३	३७
बंगाल	१,८८८	१५७	२२३
बिहार और उड़ीसा ...	२०५०	८२	२६३
आगरा	१,१९०	१०६	१,१२०
अवध	३३७	२४	२२१
पंजाब	१,५९९	३२	२९८
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त ...	१०५	५	३२
सिंध	२४०	५	४
बम्बई	१,३५७	२०३	६७
मध्य प्रदेश	२,९८१	५८	२३
बरार	२९६	२५	१
मद्रास	२,९२७	७२१	१०८
कुर्ग अजेमर-मेरवाड़ और मानपुर	५	४	१
योग	१६,४९५	१,५०३	२,४१०

रेशा			नील	कहवा	चाय	अफ़ीम
कपास	सन.	अन्य प्रकार के रेशे				
१७२	—	—	—	—	२	—
२०	—	—	—	—	—	—
३८	९५	—	—	—	३५४	—
३४	२७३८	३९	१	—	१४६	—
८९	२५८	२०	११०	—	२	३
८४२	—	७७	२४	—	८	१०४
६०	—	१८	६	—	—	१११
१४६२	—	२३	३९	—	१०	२
५६	—	१	—	—	—	—
३२६	—	१	५	—	—	—
४,१०७	—	१२०	—	—	—	—
१,३९२	—	६५	—	—	—	—
३,२५६	—	४४	—	—	२१	—
२,६७६	—	२८०	९०	५१	—	—
२८	—	—	—	४३		—
१,४५६८	३,०९१	६८९	२७५	९५	५४४	२२०

	तम्बाकू	सिन कोहना	घास और चारा	सब्ज़ी और फल
अपर बर्मा	३०	—	४१	३४
लोअर बर्मा... ...	५९	—	३	४०३
आसाम	८	—	६	३७२
बंगाल	३०६	१	२८	९४४
बिहार और उड़ीसा	११६	—	३१	६५५
आगरा	७६	—	९९३	२६७
अवध	१८	—	११७	९४
पंजाब	७६	—	२,८९६	१६४
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	१२	—	७१	५
सिंध	१०	—	९	४३
बम्बई	६८	—	७१	१३७
मध्य प्रदेश	१८	—	३५५	८६
बरार	८	—	—	१३
मद्रास	१९२	२	२७३	१,१७३
कुर्ग, अजमेर-मेड़वाड़ और मानपुर... ...	—	—	२	५
योग	९९९	४	४,९७८	४,३८६

अन्य फ़सल		वर्ष में जो भूमि जोती गई उस का क्षेत्र	जो भूमि एक से अधिक बार जोती गई	अतः वर्ष में जो भूमि वस्तुतः जोती गई
खाद्य पदार्थ	अखा पदार्थ			
६४	४	५,०१७	३९७	४,६२०
३७	११५	८,७२६	६	८,७२०
३७	६२	६,१६८	४१६	५,७१२
५११	४४०	३०,४३७	५,५०६	२४,९३१
९१०	४१३	३२,९५६	५,३९९	२६,५५६
१६६	५४	३२,७६१	६,३७०	२६,३९१
६१	४	१२,०३०	२,८३०	९,२००
३०८	१९	२६,३०८	४,०५१	२२,२५७
३९	४	२,९८९	४०४	२२,८५
—	२०	३,२६३	३२२	२,९४१
—	३	२,३४९६	५९३	२२,९०६
४	१	२०,२९५	२,३२६	१८,९६९
६	१	७,०७०	१२	७,०५७
९०	१८८	३७,३५०	४,३१३	३३,०६९
४	१	४०३	३५	३६९
१,८३९	१,३२९	२४९००२	३३,०२०	२१५,९८२

(११) उक्त व्यौरे से ज्ञात होता है कि थोड़ा बहुत तम्बाकू हर एक प्रान्त में बोया जाता है किन्तु बंगाल, मद्रास, बिहार-उड़ीसा, पंजाब, आगरा और बम्बे के प्रान्तों में खास तौर पर होता है। संयुक्त प्रान्त अमैरीका को छोड़ कर अन्य कोई देश भारत वर्ष जितना तम्बाकू पैदा नहीं करता, फिर भी प्रति वर्ष विदेशी तम्बाकू का प्रयोग बढ़ रहा है। विदेशी चुरट तथा सिगारों के पीने की चाह भारतीयों को बहुत है।

संसार में तम्बाकू की उत्पत्ति

	१९०६
सारीपृथिवी	२२०११००००० पाउण्ड्ज़ तोल
अफ्रीका	२०८०००००
दक्षिण अमैरीका ...	१०३७०००००
संयुक्तप्रान्त अमैरीका ...	६८२८०००००
रूस	१६२००००००
शेष योरुप	४६१५०००००
भारत (अंगरेज़ी) ...	४५०००००००

तम्बाकू की मात्रा जो इस देश से गयी या विदेश से इस देश में आई वह पाउण्ड्ज़ (१ पा=१५ रु०) में नीचे दी जाती है:

	आयात	निर्यात
१९०१-२	३००१५७	२३१२६७
१९०२-३	२९७६८१	१८२२१७
१९०९-१०	६३२१५२	१७०५५३

अर्थात् अन्य देशों से अधिक २ तम्बाकू हमारे देश में आता रहा है और हमारे देश में से उत्तरोत्तर कम मात्रा जाती रही है,जब कि संयुक्तप्रान्त अमेरीका के अतिरिक्त कोई देश हमारे जितना तम्बाकू पैदा नहीं करता।

(१३) खनिज पदार्थों की मात्रा—यहां खनिज शब्द बहुत व्याप्त अर्थों में लिया है जैसेः—

१. खाद्य पदार्थ—नमक।

२. भूषण तथा सिक्के के लिये—सोना, चान्दी, रत्न आदि

३. कला तथा औज़ार बनाने के लियेः–लोहा,सीसा, टीन, ताम्बा।

४. बर्तनों के लिये—भिन्न प्रकार की मट्टियां तथा रेत।

५. खाद के लिये।

६. जलाने के लियेः पत्थरी कोयला, मट्टी का तेल।

७. मकानों और सड़कों के लिये(peat)पत्थर, कंकर आदि।

इन पदार्थों की मात्रा की भिन्नता से देशों की उत्पत्ति में बड़ा भेद आ जाता है। जिन देशों में कोयला, लोहा, मट्टी का तेल और सोना नहीं,उन देशों में व्यापार व्यवसाय की अवश्य कमी रहेगी। हमारे देश को परम्परा से 'सुवर्ण भूमि' और 'सोने की चिड़िया' के नामों से पुकारा जाता रहा है। वस्तुतः इस की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और खनिज पदार्थों का आधिक्य है। लग भग सब पदार्थ यहां मिलते हैं किन्तु विद्या और विज्ञान के

अभाव स हम अपनी खानों से लाभ नहीं ले रहे, विदेशी लोग उन का तत्व निकालते जाते हैं। लोहे की अधिकता होते हुए भी बाहिर से लोहे का सामान प्रति वर्ष अधिक २ बन कर देश में आरहा है और साथ ही लोहारों के हाथों से अपना पेशा चला जारहा है।

(१४) इंगलैण्ड तथा भारत वर्ष के खनिज पदार्थों का मुकाबला करके देखिये कि इन की, आधिकता इंगलैण्ड को कैसे धनी बनाती है।

यूनाईटिड किंगडम*—१६१०

नाम पदार्थ			मात्रा टन्ज़ म	मूल्य पाउण्ड्ज़ में
कोयला	...	...	२६४४३३०२८	१०८३७७५६७
लोहा	...	...	१००१२०६८	३४२२४८७१
ताम्बा	...	...	४४६	२७५७०
सीसा	...	...	२१५२२	२८३१६४
टीन	...	...	४७६७	७३८०२७
जस्त	...	...	४१६८	६६८२४
चान्दी	...	...	१३६६६५	१४०५८
सोना	...	...	२४२७	८०८८
			२७४६१५१३६	१४३७७३१६७

* इंगलैंएड, स्काटलैंएड और आइरलैंएड—तीनों का यह नाम है। इस पुस्तक में उन्हें 'संयुक्त राज्य' कहा जावेगा।

भारतवर्षः १६११

पदार्थ	मात्रा	मूल्य
कोयला (टन)	१२७१५५३४	२५०२६१६
सोना (आउन्स)	५८३५६७	२२३८१४३
मट्टी का तेल (गैलंस)	२२५७६१२	८८५३६८
मागंल (टन)	६७०२६०	६४८७०१
नमक (टन)	१२२५४६०	३२६२६५
शोरा (टन)	१४६७४	२२००१२
अबरक (हन्ड्रेटवेट)	४८८७१	२०७७७८
सीसा (टन)	३५३६१	१८१६४६
टंगसटन (टन)	१३०८	६६६८६
लाल, नीलम आदि (कैरे)	२८८२१३	६७५६४
लोहा (टन)	३६६१८०	५४४८७
टीन (टन)	१६४६	६३८८
चांदी	:	११५७५

अर्थात् १६११ में खनिज पदार्थ यदि उन में मकानों के बनाने का सामान सम्मिलित न हों तो ७६५७००० पाउण्ड्ज़ के पैदा हुए, जब कि १६०१ में केवल ४४९२००० पाउण्ड्ज़

के पैदा हुए थे। १९१२ की उत्पत्ति मकानों का सामान मिला कर और भी बढ़ी हुई है:—

१९११	१९१२	एक वर्ष की वृद्धि
पाउण्ड्ज़	पाउण्ड्ज़	
७९८४११९८	९३२१४८९	१७%

किन्तु जब हम संयुक्तराज्य के साथ अपनी उत्पत्ति की तुलना करते हैं तो ज्ञात होता है कि हम केवल उनीसवां भाग एक वर्ष में उत्पन्न करते हैं। तो क्या हमारी खानों की मात्रा थोड़ी है? खानों की कमी नहीं, बल्कि भारतवासियों में कलाकौशल, शिल्प की कमी है, इस लिये या तो विदेशी खानों के मालिक हैं, या जहां हमारे हाथों में हैं, वहां शिल्प के अभाव और अशिक्षित मज़दूरों के कारण कम उत्पत्ति होती है।

इन कथनों को संख्याएं दे कर पुष्ट किया जाता है। कोयले के खोदने और खुदवाने में जितने आदमी लगे हुए हैं, यदि यह देखें कि इन में से हर एक के हिस्से में कितना खुदा हुआ कोयला आता है, तो ज्ञात होगा कि किसी देश में भी भारत जितनी कम उत्पत्ति नहीं की जाती:—

देश			एक आदमी के प्रति वार्षिक उत्पत्ति	
			१८९७-९	१९०५-७ टन्ज़ में
संयुक्तप्रान्त अमैरीका		...	४६७	५५५
न्यूज़ीलैण्ड	...	...	४४९	४७४
आस्ट्रेलिया	...	...	५२७	४७८
कनाडा	...	...		५२५
संयुक्तराज्य	...	...	३०१	२८६
जर्मनी	...	...	२६५	२५५
फ्रांस	...	...	२१३	१६५
रूस	...	...	१६७	...
भारत (आङ्गल)	...	...	७०	९८

अतः स्पष्ट है कि कई देशों में हमारे मुकाबले में हर एक आदमी ६ गुणा कोयला पैदा करता है—इस अन्तर के कारण आगे चल कर बताये जावेंगे। यहां पर यही दिखाना था कि वस्तु के उपस्थित होते हुए मनुष्यों में त्रुटियां होने के कारण कम उत्पत्ति होती है।

भिन्न देशों में कोयले की मात्रा का अनुमान—१९०१

देश				वर्गमील क्षेत्र
चीन	...	...	...	२३२५००
सं० प्रा० अमैरीका	...	...	...	२०००००

कनाडा	६५०००
भारत	३५०००
न्यू साउथ वेल्ज़	२४०००
योरुपी रूस	२००००
संयुक्त राज्य	१२०००
स्पेन	५५००
जापान	५०००
फ्रांस	२५००
जर्मनी	१७००

(१५) समुद्र तट—यद्यपि भारत का समुद्र तट ४००० मील लम्बा है, तथापि उस में रक्षित बन्दर गाहों का अभाव है। तिस पर भी वर्षा ऋतु में सागर की उच्छृंखलता के कारण व्यापार करने में बहुत कठनाई होती है। पश्चिम में बम्बै और कराची, पूर्व में मद्रास, कलकत्ता और रंगून नामक बड़े बन्दरगाह हैं। परन्तु कलकत्ता ८६ मील समुद्र तट से दूर है, मद्रास पर लाखों रुपैये लगाने पर भी रक्षा प्राप्त नहीं हुई। कराची तथा रंगून नदियों के मुहानों पर स्थित हैं। नदियों से मट्टी पङ्क आदि के निकालने में प्रतिवर्ष बहुत धन खर्च करना पड़ता है। अतः अन्य देशों के साथ व्यापार करने में हमें सुभीता नहीं, हज़ारों मील तक रेलों में सामान लाद कर कराची, बम्बै में लेजाना पड़ता है। यदि बन्दरगाह होते तो रेल का खर्च और विलम्ब न

होता, इंगलैण्ड का तट खूब नोकदार है, अतः वहां बड़े २ बन्दरगाह भी बत्तीस हैं, छोटा की तो गिनती ही क्या है? फिर छोटा सा देश है, अतः प्रत्येक व्यापारिक और व्यवसायिक नगर से सामान झट तट पर पहुंच जाता है।

१६. प्राकृतिक शक्तियों की उपलब्धि—यह जल वायु की गति और तेज-गर्मी-की मात्रा पर आश्रित हैं। जल और वायु की गति से लोग चाकियां चलाते हैं और वायु की गति से जहाज़ चलते हैं। विज्ञान ने कोयले और लोहे की सहायता से बड़े २ भाप से चलने वाले एन्जिन बना कर वायु और जल की गति से लाभ लेना छोड़ दिया था क्योंकि उन पर काबू करना मानव शक्ति से बाहिर है। हम वायु को आज्ञा नहीं दे सकते कि तू रात दिन अमुक मात्रा में चला कर किन्तु एन्जिनों का चलाना हमारे अधिकार में है।

जल की गति से भारत में अब भी कहीं २ चाकियां चलाते हैं किन्तु विज्ञान ने उन्नति करली है और जल के प्रवाह और प्रपात से विद्युत पैदा करके कलाएं चलाई जा रही हैं। विद्युत का प्रयोग बढ़ता जाता है और कोयले की भी कमी अनुभव हो रही है, इस कारण प्रपातों तथा समुद्र की लहरों से विद्युत पैदा करने के पीछे सभ्य लोग पड़े हुए हैं। अतः जिस देश और देश के जिस भाग में प्रपात अधिक होंगे और समुद्र

तट अधिक और उपयोग लेने योग्य होगा, वह देश समृद्ध हो सकेगा, भारत वर्ष में दोनों की अधिकता है और विशेष तौर पर दक्षिण में। भारत में भी प्रपातों से विद्युत निकाली जा रही है किन्तु बहुत थोड़े स्थानों में। काश्मीर नरेश ने रामपुर में एक प्रपात से विद्युत निकाली है और उस से जहां श्री नगर में रौशनी होती है, वहां रेल चलाने का भी प्रबन्ध हो रहा है।

दक्षिण में कावेरी वर्क्स और टाटा वर्क्स में इसी प्रकार विद्युत निकाली जा रही है। अभी कुच्छ भी नहीं हुआ। जर्मनी ने तो समुद्र की लहरों से काम लेना आरम्भ कर दिया है। यदि हम अपने नदी नालों, प्रपातों और समुद्र से काम न लेंगे, तो जैसे सहस्रों वर्षों तक उन की शक्तियां निष्फल गई हैं वैसे अब भी जावेंगी और सब सामान होते हुए भी हम निर्धन रहेंगे।

सूर्य्य का तेज भी एक महती शक्ति है, हमारे पूर्वज ईसा के जन्म से कम से कम ४००वर्ष पूर्व सूर्य्य कान्तमणि यन्त्रद्वारा सूर्य्य के तेज का प्रयोग करना जानते थे, जैसाकि भास्काचार्य्य ने अपने निरुक्त में लिखा है और उस की साक्षि अकबर के इतिहास आईने अकबरी से भी मिलती है जिस में सूर्य्यकान्त मणि के साथ चन्द्रकान्त मणि का नाम भी दिया है जिस के

द्वारा जल बनाया जाता था। हर एक आदमी जानता है कि सूर्य्य महा शक्ति का भण्डार है, बस उस की शक्ति का प्रयोग क्यों न किया जावे ?

सस्ते तौर पर कलाओं के चलाने में एक महाशय ने सौर तेज को लगाया है, यदि और अधिक सस्ता हो जावे तो घर्म प्रधान देशों को बहुत सुभीता रहेगा, वहीं सभ्यताओं का केन्द्र होगा क्योंकि कोयले की समाप्ति पर या सूर्य्य की शक्ति का प्रयोग सस्ता होने के कारण लोग उसी का प्रयोग करेंगे। भारत वर्ष इस शक्ति के विचार से भी किसी देश से कम न रहेगा। किन्तु सूर्य्य की शक्ति के प्रयोग में एक कठनाई है कि जब सूर्य्य न निकले, तो क्या किया जावे ? जबरन छुट्टी मनाकर घर बैठना पड़ेगा—यह अनिश्चिति अत्यन्त हानिकारक है, अतः सम्भावना यह है कि सूर्य्य की शक्ति का प्रयोग बहुत नहीं बढ़ सकता।

१७. जल की उपजाऊ शक्ति—नदी, नालों, झीलों और समुद्रों में जो पौदों तथा जीवों को पालने की शक्ति है—उस से प्रयोग लिया जावे। अभी तक विज्ञान ने इस ओर पग नहीं उठाया, नहीं तो पौदों और जीवों से इन स्थानों को ऐसा भरपूर किया जा सकता है कि भूमि के एक २ फुट के समान वे भी उत्पादक बन जावें। काश्मीर में डल पर खेती की हुई है—श्रीनगर की डल और वुलर झील का यह दृश्य अत्युत्तम है।

भूमि के तख़ते इधर उधर बहते रहते हैं और उन पर ही सकड़ों मन सबज़ियां बोई हुई होती हैं, देश की सब झीलों का यही प्रयोग किया जा सकता है और करना चाहिये। वुलर झील में संघारे की उत्पत्ति बहुत होती है, उस के तट पर रहने वाले काश्मीरियों का भोजन उसी संघारे का बनता है, उसी की रोटियां और उसी की सबज़ी बना कर खाते हैं। एवम् मच्छालियों की उत्पत्ति को पालतु पशुओं की उत्पत्ति के समान बढ़ाया जा सकता है। हम लोग सोये हुए हैं। परमपिता परमात्मा ने हमें सब कुछ दिया है, बस हमें उस से लाभ लेना ही नहीं आता। प्राकृतिक शक्तियों की बहुल्यता है, केवल मनुष्य ही आलसी, अशिक्षित, संतोषी होते हुए कुछ नहीं करते।

१८. नाशक शक्तियों का अभाव—मकान, औज़ार, कलाएं, पुस्तकें और सजावट के सामान कई देशों में शीघ्र ख़राब हो जाते हैं क्योंकि बहुत गर्मी वा सर्दी के साथ २ वहां बहुत नमी होती है किन्तु मिश्र जैसे देश म मकानों का नाश अतीव शनैः २ होता है। फिर बाढ़, तूफ़ान, आन्धियां, भूकम्प, पवतों और भूमि का उत्क्षेप, ओला, अग्नि, टड्डी दल-यह शक्तियां जिस देश में अधिक होती हैं, वहां मनुष्यों का यत्न व्यर्थ जाता है, इन्हीं के भय से उत्पत्ति भी कम की जाती है। संयुक्त राज में किसी नाशक शक्ति का भाव, अस्तित्व नहीं किन्तु भारत में इन की कोई कमी नहीं: कहीं आन्धी और तूफ़ान, कहीं अग्नि

और भूकम्प, कहीं बाढ़ और टड्डी दल हमारी पकी हुई फ़सलों का नाश कर जाते हैं—इस कारण उत्पत्ति में कमी आजाती है।

१९. अन्तिम विचार

भिन्न देशों की सम्पत्ति वा स्मृद्धि में अन्तर लाने वाले प्राकृतिक कारणों का निरीक्षण तो हम ने कर लिया है। कहीं इस से यह अशुद्ध विचार न हो जावे कि मनुष्य अपने सुख साधनों के लिये सर्वत: प्रकृति पर आश्रित है। स्मृद्धि की वृद्धि में प्रकृति बहुमूल्य सहायता देती है किन्तु मनुष्य अपनी विशाल बुद्धि से उस को बदल कर सुखकारी बना सकता है।

देखिये, भूमि की उपजाऊ शक्ति पर अनाज, औषधि, वनस्पति, फलों,फूलों की मात्रा का आधार है परन्तु मनुष्य ज्ञान विज्ञान द्वारा उपजाऊ शक्ति को बढ़ा सकता है या मूर्खता से घटा सकता है। एवम् खनिज पदार्थों की उत्पत्ति कलाओं की सहायता से अधिक कर सकता है और यदि देश में खानें ही न हों तो धातुवों के स्थान पर कृत्रिम धातुवें बना सकता है जैसे हीरों के बनाने का यत्न किया जा रहा है। मोती और हाथी दान्त तो बनते ही हैं। कलम लगा कर नये २ फल उत्पन्न किये जाते हैं और जो फल देश में मौजूद हों उन्हें विशेष ज्ञान द्वारा अति उत्तम किया जा सकता है,यदि वर्षा कम होती हो तो विद्युत और यज्ञों द्वारा वर्षा की जा सकती है, यदि अति वर्षा

हो तो विद्युत द्वारा रोकी जा सकती है। बनों के बढ़ा देने से वर्षा की वृद्धि और बनों के काट देने से वर्षा कम की जा सकती है। नहरों के द्वारा बंजर भूमियों को लहलाते खेतों में बदला जा सकता है जैसा कि दक्षिण में प्राचीन काल से नदी, नालों, तालाबों और कूपों से किया जा रहा है। एवम् पंजाब में बार का बंजर इलाका नहरों के द्वारा कैसा हरा भरा किया गया है? सहस्र प्रकार के यत्नों से भारतवर्ष में रोगों का नाश और स्वास्थ्य की वृद्धि हो सकती है। साथ ही यदि अंग्रेज़ इंगलैण्ड में अपने आप को सख्त सर्दी से बचा सकते हैं तो हम अपने आप को गर्मी से बचा सकते हैं। वस्तुतः दयालु प्रभू ने अपने बुद्धिमान सुपुत्रों को अपरिमित शक्ति दी है कि वे इस संसार को सुखमय बनावें। मूढ़ और आलसी जन ही इस जगत् को दुःखों की खान कहते हैं। उन्नतचेता पुरुष इसी को सुख साधनों के बढ़ाने वाला बनाते हैं।

अर्थशास्त्र भिन्न २ देशों की प्राकृतिक अवस्थाओं का इतना विचार नहीं करता जितना वह यह बताना चाहता है कि अपनी २ अवस्थाओं में रहता हुआ मनुष्य सुखी है वा नहीं, कि भारत जैसे निर्धनी देश में पदार्थ सस्ते हैं वा नहीं, मकान ठण्डे हैं वा नहीं, लोग शिक्षित हो कर समृद्धि कर

रहे हैं वा नहीं, एवं इंगलैण्ड जैसे शीत प्रधान देश में घर गर्म हैं वा नहीं। अभिप्राय यह है कि इस भूमि का प्रत्येक भाग सुख तथा समृद्धि का भण्डार हो सकता है, वह वस्तुतः प्रियतम पितृभूमि व मातृभूमि हो सकती है। सहारा के रेगिस्तान किसी दिन कोटि मनुष्यों को स्थान दे रहे होंगे। सारा आधार मानव आयास और बुद्धि पर है—अतः भारतवासियों को इन की वृद्धि करनी चाहिये।

१. उत्पत्ति की शक्ति में गर्मी और सर्दी के कारण जो भेद आ जाते हैं, उन्हें इंगलैण्ड और भारतवर्ष की तुलना से विस्पष्ट करो।

२. भारतवर्ष और संयुक्त प्रान्त अमेरिका का प्राकृतिक शक्तियों की दृष्टि से मुकाबला करो।

३. नदियों तथा पर्वतों की उपयोगताएं क्या हैं?

४. जल-वायु पर फ़सलों का आधार है, भारतवर्ष की फ़सलों से प्रकट करो।

५. जल-वायु को मनुष्य किन साधनों से बदल सकता है?

६. भारतवर्ष में अभी कृषि की खूब उन्नति हो सकती है—इस के प्रमाण दो।

७. खनिज पदार्थों की सूची में क्या २ पदार्थ हैं? भारत की स्थिति अन्य देशों के मुकाबले में कैसी है?

८. रक्षित समुद्र तट भी देश की सम्पत्ति है—इसे सिद्ध करो।

९. प्राकृतिक शक्तियों का भारत ने अभी कहां तक प्रयोग किया है ?

१०. मनुष्य और प्रकृति की शक्तियों की तुलना करो।

११. सभ्यता का आधार आर्थिक साधनों पर है (Economic Interpretation of History), इस का पोषण और खण्डन करो।

१२. देश की स्थिति और आकार का तद् निवासियों की उन्नति के साथ क्या सम्बन्ध है ?

१३. लोहे और कोयले को व्यवसाय का आधार क्यों कहते हैं ?

१४. आजकल की उन्नति में कौनसी बात है जिस से प्रकट होता हो कि भावि में जल की शक्ति का अधिक प्रयोग होगा।

१५. भाप की शक्ति बहतर है वा जल की ?

निर्देश.

C. S. Devas.—*Political Economy. Book I, Chap. I.*
C. Gide.—*Principles of Political Economy, Book II, Chapter II.*
P. Banerjea.—*A study of Indian Economics, Chapter II.*
J. Sarkar.—*Economics of British India, chap. I.*
Webb—*New Dictionary of Statistics.*
Mulhull.—*Dictionary of Statistics.*
Material and Moral Progress of India 1911-12
Statistical Abstract Relating to British India, 1910-11.
N. S. Shaler.—*Nature and Man in America.*

अध्याय ४

भूमि की वृद्धि

भूमि शब्द से हमारा अभिप्राय उस के विस्तृत तल से है तथा वायु मण्डल की उन शक्तियों से भी जो उस के ऊपर हैं। इन को मनुष्य की शक्ति में घटाना बढ़ाना बहुत थोड़ा है और वह भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ होती हैं।

भूमि का प्रधान चिन्ह परिमितता है। अतः यद्यपि वह मानुषिक श्रम का परिणाम नहीं है, तथापि उस का मूल्य होता है। इस परिमित भूमि के तल को हम कुछ बढ़ा सकते हैं और अर्थशास्त्र के लिहाज़ से तो भूमि को बढ़ाने का विचार इस प्रकार भी हो सकता है कि भूमि की उपजाऊ शक्तियों को बढ़ावें। इस अध्याय में हम उन साधनों को बताते हैं जो तल के बढ़ाने में प्रयुक्त होते हैं।

२. तल की वृद्धि

१. समुद्र के तट पर भूमि की वृद्धि करना—जैसे कराची और बम्बई के बन्दरगाहों में मट्टी डाल कर तल बढ़ाया जा रहा है।

२. कलाओं के द्वारा दलदल का पानी निकाल कर कृषि के योग्य भूमि बनाना। यह भूमि अतीव उपजाऊ होती है, केवल जल से आच्छादित होने के कारण उस पर खेती नहीं हो सकती। संयुक्त प्रान्त अमैरीका में ६००००००० एकड़ भूमि दल दल रूप में पड़ी है, उसे उपजाऊ बनाने के लिये राज्य की ओर से यत्न हो रहा है।

३. रेगिस्तान की भूमियों को हम विद्युत द्वारा, या यन्त्रों द्वारा या नवीन वृक्षों द्वारा जो पीरू देश में मिले हैं, पानी पहुंचा कर रहने योग्य बना सकते हैं। ये वृक्ष सब स्थानों में पैदा हो सकते हैं। वायु मण्डल से वाष्पों को चूसते रहते हैं। फिर जल रूप में तना से खासी धारा बहती रहती है जिस से भूमियां सींची जा सकती हैं।

४. पर्वतों को बारूद के द्वारा काट कर वास योग्य ज़मीन बनाना।

५. पर्वतों पर रेल ले जा कर वहां की भूमि को काम में लाना।

६. नवीन २ द्वीपों की खोज करना जैसे अभी रूस के उत्तर में मनुष्य के वास योग्य ग्रीनलैण्ड जितना एक द्वीप मिला है।

बारूद (Dynamite) से भूमि को पोला करने के लाभः—

(१) सख्त भूमियों को बारूद लगा कर उड़ाने से हल चलाने की अपेक्षा कम खर्च होता है।

(२) बड़े २ वृक्षों और उन की जड़ों, पत्थरों और टीलों को शीघ्र उड़ा सकते हैं।

(३) नीचे की उमदा २ मट्टी जिस की शक्तियां फ़सल बोने से गुम नहीं हो गयीं—ऊपर आ जावेगी—इस लिये खूब फसल हो सकेगी।

(४) यदि कीड़ों, चूहों और भूमि में रहने वाले अन्य जीवों के कारण फ़सलें खाई जाती हों, तो बारूद के द्वारा उन जीवों को उड़ाया जा सकता है।

(५) वृक्षों को उगाने के लिये या किसी अन्य उद्देश से गढ़े खोदने हों तो वे भी बारूद के द्वारा खोदे जा सकते हैं। दाक्षिणी भारत की बहुत सी भूमि अतीव सख्त है—उसे इस विधि से पोला करके अतीव उपजाऊ बनाया जा सकता है, क्योंकि जड़ें शीघ्र नीचे जा सकतीं और पौदों को भोजन की प्राप्ति भी सुगमता से होती है। योरुपी लोगों ने इस विधि से बहुत लाभ उठाया है। जिन भूमियों का प्रयोग पूर्व नहीं हो सकता था, अब उन पर भी खेती की जाती है—अतः उन्हों ने भूमि का तल बढ़ा लिया है और जो भूमियां पूर्व कृषि में थीं उन की उपज बढ़ा ली है।:

दक्षिणी और पर्वती लोग अतीव यत्न करके थोड़ा सा धन प्राप्त करते हैं, यदि वे उक्त विधि तथा अगले अध्याय में जो विशेष विधियां बताई जावेंगी—उन का अनुकरण करें तो उन्हें बहुत लाभ हो।

(७) ध्रुवों की भूमि को प्रयोग में लाना—बहुत सरदी के कारण अभी सभ्य मनुष्य उन भूमियों में नहीं रहता किन्तु समय आने वाला है जब वह ऐसे सामान पैदा कर लेगा कि वहां घर बना कर निवास कर ले।

३. सिंचाई की विधियां।

जो भूमियां कृषियोग्य हैं किन्तु जल की कमी से जोती नहीं जा सकतीं उन्हें जल पहुंचाना। पूर्व दिखाया गया है कि १९११-१२ में सारे भारत वर्ष में ११४७०००००० एकड़ भूमि थी जो कृषि योग्य है किन्तु जलादि की कमी से जोती नहीं गयी। सींचाइ तीन विधियां से हो सकती है:—

(क) कूपों से

(ख) तालाबों और छपरों में जल एकत्रित करने से।

(ग) नहरों से।

कूप और तालाब आदि तो किसान लोग स्वयम् बना कर खेती करते हैं किन्तु फिर भी इन के बनाने के लिये धन चाहिये। किसानों की निर्धनता के कारण यह बहुत नहीं बन

सकते। नहरों पर क्रोड़ों रुपैये खर्च होते हैं अतः वे राज्य की ओर से ही बन सकती हैं। आर्य्य और मुसलमान बादशाहों ने कई नहरें बनवाई थीं किन्तु आजकल उन की बहुत ज़रूरत है। भारत वर्ष में वर्षा सब जगह समान नहीं और न हीं प्रर्याप्त है, इस लिये वर्षा के अभाव से यहां फ़सलें बोई नहीं जातीं या सूख जाती हैं। निर्धन कृषकों के सिर पर आपत्ति आजाती है, अकाल से पीड़ित होते हैं और यमराज की गोद में अपने दुःखों को भुलाते हैं। अतः भारत वर्ष में दो कारणों से नहरें चाहियें:—

(१) जो भूमियां वर्षा के जल से सींचीं जाती हैं किन्तु वर्षा का जल पर्याप्त नहीं वा वर्षा की अनिश्चिति के कारण कभी फ़सल होती है और कभी नहीं होती—उन्हें सींचने के लिये। भारत वर्ष में पूर्वी तथा दक्षिणी बंगाल, आसाम और बर्मा में पर्याप्त वर्षा होती है, अतः वहां नहरों की आवश्यकता नहीं। किन्तु पंजाब, संयुक्त प्रान्त, मद्रास डैलटा में भूमि बहुत उपजाऊ है किन्तु पर्याप्त और निश्चित वर्षा नहीं होती अतः वहां नहरों की परमावश्यकता है। किन्तु दक्षिण, मालवा, गुजरात, मध्य प्रदेश, सिन्ध, राजपूताना में वर्षा की बहुत अनिश्चिति है। लगभग १३ लाख वर्ग मील तक विस्तृत यह इलाका है, इस में दुष्कालों का बहुत भय रहता है। अतः इसे नहरों से सींचने का अवश्य यत्न होना चाहिये।

(ii) ११४७०००००० एकड़ भूमि को हरा भरा करने के लिये भारत में नहरें चाहियें। संयुक्त प्रान्त अमेरीका में ७०० लाख एकड़ भूमि को सींचने के लिये नहरें चाहियें जो बनाई जारही हैं। १९११ में भारत वर्ष के सारे अंग्रेज़ी इलाके में ४७४५३ मील लम्बी नहरें थीं, उन से १७०११००० एकड़ भूमि सींची गयी। अतः स्पष्ट है कि अभी छैः गुणा भूमि सींचने के लिये शेष रहती है और जहां २ वर्षा थोड़ी होती है, यदि वहां भी नहरें ले जानी हों, तो एक महान कार्य्य राज्य के सामने पड़ा है।

४. नहरों की कमी।

इस कार्य्य की महानता को देखने के लिये नीचे का व्यौरा बहुउपयोगी होगाः—

(नीचे के अङ्कों में ००० छोड़ दिये हैं)

	१९०१–०२	१९११–१२
राज्य की नहरों	एकड़	एकड़
से सींचा हुआ क्षेत्र	१२८५५	१६८२१
निज नहरों से	१९६३	२०६८
तालाबों से	५०८०	५३६४
कूपों से	११३७४	१०४०८
अन्य साधनों से सींचा हुआ क्षेत्र मिला कर सम्पूर्ण क्षेत्र ...	३२५८२	४०६७९
जोती हुई सम्पूर्ण भूमि ...	१९९७०८	२१५०८२
वर्षा पर आश्रित भूमि ...	१६७१२६	१७५३०३

अर्थात् १९११—१२ में भी मनुष्य के द्वारा जो सिंचाई हो सकती थी वह जोती हुई भूमि का केवल पांचवां भाग थी, ४/५ भूमि का आश्रय अनिश्चित वर्षा पर था। मानवी कार्यों में अनिश्चिति ठीक नहीं, फिर भारत में ७५ प्रतिशतक लोगों का निर्वाह कृषि पर है, यदि किसी वर्ष फ़सल न हो तो निर्धनता के कारण उन्हें भोजन प्राप्त नहीं हो सकता। इस कारण राज्य को नहरों के बनवाने में बहुत ही ध्यान देना चाहिये। जहां एक ओर प्रजा को यह नहरें जीवन और धन प्रदान करने वाली हैं, वहां राज्य को भी बहुत लाभ है। सब प्रकार की नहरों का ख्याल करते हुए ६.५ प्रति शतक लाभ सरकार को सर्व प्रकार के ख़र्च निकाल कर–होता रहा है, इतना लाभ अन्य किस काम में हो सकता है? वस्तुतः लाभ की मात्रा १० प्रतिशतक है। और पंजाब में तो १३.६६ प्रतिशतक तक १९१०-११ में लाभ हुआ है।

१९१०-११ में लाभ की मात्रा

	%		%
पंजाब	......९.४६	लोअर चनाब नहर	......२८.६६
मद्रास	......९.०७	गोदावरी "	— १८.८६
युक्तप्रान्त	...७.०२	पूर्वी जम्ना नहर	... २०.८३
बम्बै	......७.१८		

नहरों पर सम्पूर्ण व्यय	रेलों पर सम्पूर्ण व्यय
१९११ मार्च तक	१९१२
६२.२६ क्रोड़ रु०	४७३.७५ क्रोड़

Material and Moral Progress of India, 1911-12, P P. 317, 312. Statiscal Abstract for B. India, 1910-11, P. 146.

५. सिंचाई का प्रकार ००० छोड़ दिये हैं।

१९११-१२

	सींचित क्षेत्र एकड़				सिंचाई के अन्य साधन सम्मिलित करके सम्पूर्ण सींचित क्षेत्र	सम्पूर्ण भूमि जो जोती गई
	राज की नहरें	निज नहरें	तालाब	कूप		
अपर बर्मा	४२०	२०४	१३६	८	८४९	४,६२०
लोअर बर्मा	—	२२	४	२	१०७	८,७२०
आसाम	१	११९	—	—	२१७	५,७१२
बंगाल	१११	२४४	७२८	२१	१,६७०	२४,९३१
बिहार और उड़ीसा	७९८	३३४	६२९	६२६	३,८४५	२७,५५६
आगरा	१,९७१	२१	४९	२,९७५	६,३२४	२६,३९१
अवध	—	—	—	९००	१,६१३	९,२००
अजमेर मेरवाड़	—	—	२५	६१	११६	२२०
पंजाब	६,९६४	६२०	७	३,४२०	१०९५५	२२,२५७
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	२२१	४३९	—	८९	८४७	२,२८५
सिंध	२,६३७	६७	—	४७	२,८८५	२,९४१
बम्बई	१४७	१६	५८	९९६	१००५	२२,९०६
मध्यप्रदेश	१३	२	४२८	५९	५२४	१७,९६९
बरार	—	—	—	३२	३३	७,०५७
मद्रास	३५३५	१८०	३२९९	१,४४२	९,५८७	३३,०६८
कूर्ग	३	—	८	—	४	१४१
योग	१६,८२१	२०६८	५३६४	१०,४०८	४०,६७९	२१५,९८२

६. नहरों के लाभ गिनती में थोड़े हैं किन्तु महानता में बड़े हैं: (क) जहां जल न हो, वहां जल पहुंचाना, (ख) जब जल की आवश्यकता हो, तभी जल दे सकना, (ग) जिस मात्रा में जल की ज़रूरत हो, उसी मात्रा में मिलना—नहरों के यही लाभ वर्षा की अनिश्चिति के मुकाबले में हैं।

७. नहरों की हानियां—कोई फूल बिना कान्टे के नहीं मिलता, वैसे ही नहरों के उपयोग से तीन हानियां भी हैं किन्तु उन्हें दूर किया जा सकता है और इसी उद्देश से वे दोष दिखाये जाते हैं:—

(क) नदियों के तटों पर रहने वाले लोगों को बहुत हानि हुई है। जब तक नदियों से नहरें नहीं निकली थीं, तो नदियों में जल की अधिकता के कारण किनारों की ज़मीनों में सैलाब रहती थी और कभी २ उपजाऊ मट्टी भी नदी छोड़ जाती थी जिस से घास, अनाज और वृक्ष खूब होते थे, किन्तु अब नदियों में जल कम हो गया है, उन के तटों के वासियों को बहुत कष्ट उठाने पड़े हैं, भावि में ऐसे लोगों की हानियों को भी राज्य की ओर से पूरा करना चाहिये।

(ख) नहरी ज़मीन में जल अधिक दिया जाता है, अतः उस में नमी अधिक रहती है। इस कारण वहां ऋतु ज्वर की अधिकता होती है।

(ग) जल के मिल जाने से किसान लोग प्रति वर्ष ज़मीन को जोत लेते हैं, उस में खादें नहीं डालते। भूमि की शक्ति-चूसी जाती है, अतः वहां कुछ काल के पश्चात् फ़सल थोड़ी हो जाती है। नहरों की वृद्धि ज़रूर करनी चाहिये किन्तु साथ ही इन दोषों का प्रतिकार करना चाहिये।

सारांश

१. भूमि के अर्थ।

२. भूमि का तल कई प्रकार से बढ़ सकता हैः—

(i) समुद्र से मट्टी निकाल कर तट का ऊंचा करना।

(ii) दलदलों को साफ करना।

(iii) रेगिस्तानों की भूमियों का प्रयोग।

(iv) पर्वतों को भिन्न प्रकार से उपजाऊ बनाना।

(v) नवीन द्वीपों की खोज।

(vi) ध्रुवों की भूमि का प्रयोग।

३. (क) जो भूमियां कृषि योग्य हैं किन्तु जल की न्यूनता से जोती नहीं जातीं और वहां मनुष्यों का भी कम वास है, ऐसी भूमियों में नहरें ले जाना।

(ख) वर्षा की कमी और अनिश्चिति को हटाना।

४. नहरों की आवश्यकता भारत में बहुत है।

५. भारत में सिंचाई की विधियां कौनसी हैं?

६. नहरों के लाभ और हानियां।

अध्याय ५

भूमि की उत्पादक शक्ति

भूमियों की किस्में—ज़मीनों के मुख्य २ प्रकार यह हैं:—

१. रेतली भूमि ।

२. चिकनी मट्टी वाली सख्त भूमि ।

३. चूने के पत्थर वाली भूमि ।

४. कोयले (Peat) वाली भूमि ।

५. अर्ध रेतली भूमि (Loam) जिस में मट्टी और रेत मिले हों

६. खट्टिक भूमि (Marl) जिस में चूने का पत्थर और मट्टी हो ।

७. चूने वाली भूमि जिस में दोनों रेत और चूने का पत्थर मिले हों ।

२. भूमि की उपजाऊ शक्ति का अनुमान दो साधनों से होता है:(क) भूमि की बनावट ऐसी होनी चाहिये कि न वह बहुत सख्त और न बहुत नरम हो, क्योंकि यदि भूमि सख्त हो तो पौदों की पतली २ जड़ें नीचे नहीं जा सकेंगी जल-वायु, प्रकाश, तेज जो मनुष्यों के समान, पौदों के लिये

भी आवश्यक है, नीचे नहीं जा सकेंगे। यदि कहीं ऐसी सख्त ज़मीनें हों तो किसानों का काम उन्हें नरम करना होगा। अब यदि रेत और कंकर के कारण भूमि बहुत नरम हो तो उस में जड़ें स्थान नहीं पकड़ेंगी, जल शीघ्र नीचे बह जावेगा, अर्थात् जड़ों को पानी नहीं मिलेगा, फिर जो जल नीचे बह जाता है वह अपने साथ पौदे का भोजन भी बहा ले जाता है, अतः ऐसी भूमियों में पौदे नहीं हो सकते, उन्हें चिकनी मट्टी डाल कर ज़रा सख़्त बनाना चाहिये।

(ख) यह तो भूमि के ऊपर २ का निर्माण हुआ। किन्तु यह भी देखना चाहिये कि भूमि में कौनसे तत्व पाये जाते हैं, उस की रसायानिक बनावट क्या है!? मनुष्यों की न्याई पौदे भी ऐन्द्रिक पदार्थ हैं, उन की पृथक रसायानिक बनावट है, इस कारण पौदों से जज़ब किये जाने योग्य भिन्न प्रकार के तत्व चाहियें। आक्सीजन, कार्बन, हाईड्रोजन, कैल्शियम, मैगनेशियम लोहा, गन्धक, पोटैशियम, प्रस्फुर (फ़ास्फ़ोरस) नत्रजन (Nitrogen)–यह दस प्रधान तत्व पौदों की वृद्धि के लिये अत्यावश्यक हैं।

अब हर एक किसान को देखना चाहिये कि उस की भूमि में कौन्सा प्रधान तत्व नहीं ताकि खाद के द्वारा उसे पूरा कर दिया जावे।

३. किसान को किस बात की चिन्ता करनी चाहिये ? पौदों में ९० प्रतिशतक कार्बन, हाईड्रोजन और आकसीजन होते हैं किन्तु जल वायु में इन की अधिकता है इस लिये पौदों को निर्यास वे पदार्थ मिल जाते हैं। अगले चार कैलसियम, मैगनेशियम, लोहा, गन्धक पौदों को थोड़ी मात्रा में चाहियें किन्तु सब ज़मीनों में ये थोड़ बहुत मिल जाते हैं, अतः इनकी चिन्ता भी किसान को नहीं करनी होती। परन्तु अन्तिम तीन पोटैशियम, प्रस्फुर और नत्रजन पौदों को खासी मात्रा में चाहियें और ये ज़मीनों में प्रायः उपस्थित नहीं होते। जिस नयी भूमि में भी ये पाये जाते हैं, उस पर कतिपय फ़सलें बोने से तीनों तत्व खाये जाते हैं, अतः यदि उन्हें ज़मीन में न डाला जावे, तो फ़सलें कम मात्रा में उत्पन्न होंगी। अतः भूमि में पोटैशियम, प्रस्फुर और नत्रजन नामी तीन तत्व डालने की चिन्ता किसान को करनी चाहिये।

४. भारतीय कृषक की अज्ञानता—किन्तु अति हृदय विदारक घटना है कि हमारे देश के किसानों को यह रहस्य समझ में नहीं आता कि अनाज पैदा करने के लिये भूमि को भोजन की वैसी आवश्यकता है जैसी नर, नारी और गाय, बैल, बकरी को। यदि किसान अपने पशुओं को चारा न दे तो वे

काम न कर सकेंगे और शीघ्र मृत्यु के पाश में पड़ जावेंगे। एवम् जिस मनुष्य को भोजन न मिले, संसार में उस का कोई रक्षक नहीं, वह कतिपय दिनों में अवश्य मर जावेगा। यही अवस्था भूमि की है उसे जीवित रखने के लिये भोजन मिलना चाहिये।

माना कि भूमि उत्पादक शक्ति की भण्डार है। भण्डार कोश, खज़ाने भी निरन्तर निकास से खाली हो जाते हैं। क्या वह नरनारी मूर्ख नहीं जो अपने संचित धन को प्रति दिन खर्च कर रहे हों और फिर भी उन का विचार हो कि हम निर्धन नहीं हो रहे। जिन लोगों की आमदनी खर्च से कम होती है, जो अपनी चादर आमदनी के अनुसार नहीं फैलाते, उन का शीघ्र दिवाला निकलता है। भारत वर्ष की भूमि की शक्तियों का खर्च अधिक है किन्तु किसान उन में कोई शक्ति दायक पदार्थ नहीं डालता, अतः वह चिर काल से दिवाला निकाले हुई है।

शायद कोई पाठक कहेगा कि किसान लोग भूमि में कुछ खाद तो डालते हैं। यह सत्य है, किन्तु नर नारी को भोजन के लिये तो गेहूं, घी और सबज़ी चाहियें परन्तु सदा उन को जल ही दिया जावे, यदि कोई जन मांगे रोटी और उन्हें मिलें पत्थर, तो वे कैसे जीवित रह सकते हैं ? वा चाहिये तो एक सेर भोजन, किन्तु उन्हें एक छटांक दिया जावे, तो

भी मृत्यु का मुख देखना पड़ेगा। इसी प्रकार यद्यपि किसान लोग भूमि में कुछ खाद डालते हैं, तथापि यह नहीं देखा जाता कि कौन सी खाद आवश्यक है और न आवश्यक खाद पूरी मात्रा में डाली जाती है। बस इसी से वह बेज़बान भूमि जो अपनी भूख प्रकट नहीं कर सकती उत्तरोत्तर क्षीण होती जाती है और किसान यह समझता है कि ईश्वर ने हमारे यत्नों का जो फल देना था दे दिया। किन्तु यह मूर्खता है परमात्मा उन्हीं को सहायता देते हैं जो अपनी आप सहायता करते हैं। भूमि सब प्रकार के उत्तम पदार्थ देने को तय्यार है, यदि खाद रूपी भोजन उसे उचित मात्रा में दिया जावे।

५. खादों के सिद्धान्त—निम्न लिखित चार सिद्धान्तों का अवश्य स्मरण रखना चाहिये, (१) कोई भूमि तभी उपजाऊ कही जा सकती है जब पौदे की वृद्धि, पोषण, परवरिश के के लिये जो तत्व, जिस मात्रा और जिस रूप में चाहियें वे उस भूमि में उपस्थित हों।

(२) प्रत्येक फ़सल के काट लेने पर उक्त तत्वों का कुच्छ भाग भूमि से निकल, जाता है क्योंकि उन्हीं से तो पौदा बना है। वायु मण्डल के अपरिमित भण्डार में से निकले हुए तत्वों का कुछ अंश समय बीतने पर ज़मीन में वापिस आजाता है

किन्तु शेष अंश सदैव के लिये भूमि से चला जाता है, यदि मनुष्य उसे वापिस न लौटावे !

(३) भूमि की उपजाऊ शक्ति में कोई भेद नहीं आता, यदि फसलों के बोने से जो तत्व निकल गये हों, उन्हें मनुष्य खादों के द्वारा भूमि में वापिस पहुंचाता रहे ।

(४) जो खादें कृषि करने से उत्पन्न होती हैं जैसे पशुओं का मल मूत्र, सड़े हुए पत्ते, राख, वा हरी खादें, वे भूमि की उपजाऊ शक्ति को पूरे तौर पर बनाये रखने में पर्याप्त नहीं होतीं, उन में कई अत्यावश्यक तत्व मौजूद नहीं होते, अतः उक्त पदार्थों के आतिरिक्त अन्य कई खादों का प्रयोग करना पड़ता है ।

६. भूमि की जांच-(क) निम्न लिखित कारणों से प्रत्येक कृषक को भूमि के गुणों की जांच करना अत्यावश्यक है :

(१) भूमि का प्रकार पता लग जावेगा (देखो अङ्क १)

(२) उस प्रकार के जानने से जल, वायु, तथा उस भूमि की स्थिति का ज्ञान होते हुए, यह कहा जा सकेगा कि उस भूमि पर कौन्सा पदार्थ अधिकतम पैदा हो सकता है ।

(३) यह भी पता लगेगा कि भूमि में अम्लपन या क्षार बढ़ रहा है वा नहीं ।

(४) किस प्रकार का खाद उत्पत्ति बढ़ाने के लिये आवश्यक है, इस बात का ज्ञान हो सकेगा।

(५) उस भूमि के रोग और दोष भी ज्ञात हो जावेंगे।

(ख) राज्य की सहायता—किन्तु इन गुणों का परीक्षण साधारण कृषक तो नहीं कर सकता, इस कारण जाति और राज की ओर से यह काम होने चाहियें जैसा कि अन्य सभ्य देशों में हो रहे हैं। स्थान २ पर रसायन शाला होने चाहियें जिन में किसान अपनी भूमि की मट्टी का नमूना भेज दे और उसको बता दिया जावे कि तुम्हारी भूमि में यह दोष हैं, उन्हें अमुक साधनों से दूर करो और अमुक फ़सल बोने के लिये अमुक खाद दो। स्पष्ट है कि ऐसा करने पर उत्पत्ति खूब बढ़ेगी, किसान के पास धन बढ़ेगा, जाति समृद्ध होगी और राज्य की भी आय बढ़ेगी।

(ग) नौजवानों के लिये काम—शिक्षित लोग परस्पर झगड़े फ़सादों में पड़े हुए हैं किन्तु देश की उन्नति के साधारण साधन उनकी दृष्टि में नहीं हैं। शिक्षित समाज को दीर्घ निद्रा से जाग कर ऐसे कामों में समय लगाना चाहिये। जब तक राज्य इन कामों को नहीं करता, तब तक जाति को स्वधन की रक्षा और वृद्धि के लिये यत्न करना चाहिये। हमारे नव

युवक बी० ए० पास करके ४० रुपैयों की नौकरी के लिये भटकते फिरते हैं, उनके लिये सुवर्णमय अवसर है कि वे अपने घरों में छोटी २ रसायन शाला खोल कर किसानों की मट्टी आदि का परीक्षण करके उन्हें सम्मति दें और इस सम्मति के लिये थोड़ी फ़ीस ले लें।

पोटैसियम—ज़मीन में काफ़ी पोटैसियम डालने की चिन्ता प्रायः कृषक को नहीं करनी पड़ती क्योंकि यह तत्व भूमियों में खासी मात्रा में उपस्थित होता है। किन्तु रेतली और कोइले वाली भूमि में इस की कमी होती है और मकई की फ़सल के लिये इस की अधिक आवश्यकता है। इस लिये उस के प्राप्त करने के साधन बताने आवश्यक हैं। चार साधन निम्न-लिखित हैं:—

(क) मकई के सिट्टे (फली) तोड़ लेने पर जो डंडी बचती है—उस को खेत में आग लगा देनी चाहिये। ज़मीन से जितनी पोटैशियम मकई लेती है, उस के तीन भाग डंडी में होते हैं केवल एक भाग सिट्टे में जाता है,अतः डंडियों के जलने से वह पोटैशियम खेत में रहेगी। या उसी फ़सल पर हल चला देना चाहिये, डंडियों के सड़ने से जहां पोटैशियम मिलेगी, वहां अन्य कई लाभ भी होंगे।

(ख) या मकई के सिट्टे तथा पत्ते आदि जो पशुओं को खिलाये गये हैं—यदि उन का मल मूत्र खेतों में डाला जावे, तो

भी कुछ पोटैशियम खेत में वापिस आ जावेगी। यदि यह भी न हो सके तो

(ग) लकड़ी जलाने से जो राख बनती है, उसे खेत में बिखेरने से भी यही लाभ होता है। जहां २ चावल पैदा होता है, वहां चावलों का भूसा और छिलका जिन्हें पशु प्रायः नहीं खाया करते—खेत में यूं ही बिखेर देने से या खेत में जला देने से भूमि को पोटैशियम मिल जाती है।

(घ) यदि इन से भी पोटैशियम प्राप्त न हो सके तो बाज़ार में से पोटैशियम रखने वाले पदार्थ ख़रीदने चाहियें। वे यह हैं:—

(i) पोटैशियम क्लोराइड —४०% पोटैशियम
(ii) पोटैशियम सल्फेट—४२% ”
(iii) कैनीत —१०% ”

अतः स्पष्ट है कि यदि पोटैशियम डालने के लिये बाज़ार से पदार्थ ख़रीदना आवश्यक हो तो पोटैशियम सल्फेट और पोटैशियम कलोराइड का प्रयोग करना चाहिये। एक एकड़ भूमि में १½ मन यह पदार्थ डालने से अति उत्तम फ़सल—१०० बुशल= ३००० सेर मकई की पैदा हुई है। एक बार इतना पदार्थ डालने से कई वर्षों तक गुज़ारा हो जावेगा, यदि साथ ही पशुओं का मैला भी वहां डाला जावे।

८. चूने की खाद—कभी २ चूने की वृद्धि भूमि में करनी आवश्यक होती है क्योंकि

(क) चूना भी पौदों का भोजन है।

(ख) सख्त चिकनी मट्टी वाली भूमि को नरम करता है।

(ग) जिस भूमि में खट्टापन (acidity) बढ़ गई हो–जिसे हम यूं देख सकते हैं कि नीला लिटमस २० मिन्टों तक गीली भूमि पर रख देने से वह लाल रंग का हो जावेगा–उस में चूना डालने से खट्टापन जाता रहता है।

(घ) कुछ लोहे के सम्मेलन (Iron Salts) जो जल में घुल कर पौदों को हानि पहुंचाते हैं, चूना उन्हें ठीक कर देता है।

(ङ) हरसोठ (Gypsum, Sulphate of lime) चूने का सम्मेलन है, उसे भूमि में डालने से जहां चूना मिलता है, उस के साथ ही पौदों को गन्धक भी प्राप्त होती है।

९. प्रस्फुर—पौदों की उत्पत्ति के लिये यह तत्व अत्यावश्यक है। किसानों को पता नहीं कि मकई और गेहूं के दानों को जब वे बाज़ार में बेच आते हैं, तो अपनी ज़मीन की कुछ प्रस्फुर भी साथ बेच आते हैं। मकई वा गेहूं की फ़सल के लिये जितनी प्रस्फुर चाहिये, उस का तीन चौथाई भाग दानों में होता है और $\frac{1}{4}$ भाग छिलके, भूसे और डंडियों में।

पंजाब, आगरा और राजपूताना में यही फसलें अधिकतर बोई जाती हैं। अतः वहां की भूमियों में यदि प्रस्फुर न डाला जावे, तो फ़सल कैसे हो सकती है? (क) पशुओं के मल मूत्र में भी काफ़ी प्रस्फुर होता है, उसे सावधानी से प्रयोग करने पर कुछ प्रस्फुर तो प्राप्त हो सकती है। किन्तु भारती कृषक पशुओं के मैले का प्रयोग करना नहीं जानता, इस लिये भूमि को प्रस्फुर रूपी भोजन नहीं मिलता।

(ख) इस खाद के अतिरिक्त पाश्चिम निवासी कई प्रकार के पदार्थ प्रयुक्त करते हैं। यदि वहां सब वस्तुएं महंगी होते हुए भी बाज़ार से प्रस्फुर रखने वाले पदार्थ खरीद कर भूमि में डाले जाते हैं, तो क्या भारत में ऐसा नहीं हो सकता? अवश्यमेव हो सकता है, यदि किञ्चित् बुद्धि और उत्साह से काम किया जावे।

पांच प्रकार के पदार्थ बाज़ार से खरीद कर भूमि में डाले जाते हैं:—

१. सुपर्फ़ास्फ़ेट अव लाईम (Superphospnate of lime)
२. परवर्टिड फ़ास्फ़ेट (Perverted Phosphate)
३. स्लैग फ़ास्फ़ेट (Slag phosphate, or basic slag)
४. बायो फ़ास्फ़ेट (Biophosphate)
५. हड्डी का फ़ास्फ़ेट (Bone phosphate)

हड्डी के खाद—कई प्रकार से प्रयुक्त किये जाते हैं, विशेष तौर पर उस भूमि पर जहां अम्लपन्न और कोयला (Peat) अधिक हों।

(ग) हड्डी का चूरा—कलाओं के द्वारा हड्डियों का बहुत महीन चूरा करके बाज़ार में बेचा जाता है। घास और मेवेदार पौदों के उगाने में भी इस का अधिकतर प्रयोग होता है। इस में ३.३० प्रति शतक नत्र जन और ४५ प्रति शतक Phosphate of lime होता है। मोटा चूरा बहुत लाभ नहीं पहुंचाता।

इसे सदा ताज़े गोबर के साथ मिला कर, या हरी खाद के साथ डालने में अतीव लाभ होता है। इस हड्डी के चूरा खरीदने में लगा हुआ धन इस बात के भूल जाने से निरर्थक जा सकता है, अतः इसे सावधानी से याद रखना चाहिये। कटक और बर्दवान में गन्ने की उत्पत्ति करने में परीक्षण किये गये हैं, उन से पता लगा है कि यदि ३ मन हड्डी का चूरा और एक मन शोरा भूमि में डाला जावे, तो वह १०० मन गोबर का काम देता है।

(घ) हड्डी का आटा—चूरा करने से पूर्व भाप के द्वारा हड्डियों से तन्तु (Cartilage) निकाल कर उन्हें पीस दिया जाता है—वह हड्डी का आटा कहलाता है।

(ङ) घुली हुई हड्डियां और हड्डियों का सम्मेलन-यह मंहगे हैं-भारत में इन से काम लेना कठिन है। भारत वर्ष में हड्डियों से कोई काम नहीं लिया जाता, प्रति वर्ष जहाज़ लद कर विदेश में जाते हैं, इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया की भूमियों को खाद मिलता है। उन देशों में मांस का खूब प्रचार है, अतः वहां पहिले ही हड्डियां बहुत होती होंगी। किन्तु अपनी भूमियों को खाद देने के लिये फिर भी सभ्य देशों के निवासी यहां से हड्डियां मंगाते हैं। भारत वर्ष कृषि प्रधान देश होता हुआ जिसे एक २ हड्डी की आवश्यकता है-प्रति वर्ष उस से अधिक २ हड्डियां जा रही हैं, केवल एक वर्ष १९१०-११ में लग भग १,०२,९१,९५० रुपैयों की हड्डियां गयी हैं। खादें जिन में विशेष तौर पर हड्डियां हैं-इस प्रकार विदेश में गईः—

	मात्रा टन्ज़=२७$\frac{३}{४}$ मन	मूल्य पाउण्ड्ज़
१९११-२	९४२४३	३४४१२८
१९०५-६	१३१६५६	४७३१३६
१९०२-२	१५९६५९	६८७१३०

यदि हमारे किसान हड्डियों का प्रयोग करें तो उन की भूमि क्यों निर्बल होती जावे और कृषिप्रधान देश का खाद व्यवसाय प्रधान देशों में क्यों जावे? सब पदार्थों के समान हड्डियां भी रसायनिक पदार्थ हैं, इनके डालने में क्या हानि है?

इन के प्रयोग करने में छूत छात का ख्याल नहीं होना चाहिये। ग्रामों के आस पास हड्डियां बिखरी हुई पड़ी होती हैं,

और नगरों में हड्डियां एकत्र ही नहीं की जातीं—इस कारण लाखों रुपैयों की हानि हो रही है। किसान और उस के बालकों को चाहिये कि जहां कहीं से हड्डी मिले उसे ले कर, चूरा २ करके खेत में विखेर दें,याद रहे कि इसके समान फ़ास्फ़ेट देने वाली अन्य कोई खाद नहीं किन्तु हमारी मूर्खता से या तो हड्डियां एकत्र नहीं होतीं और जो थोड़ी सी होती हैं वे भी विदेश में भेज दी जाती हैं।

(च) रक्त की खाद—पश्चिमी लोग बहुत मांस खाते हैं। इस कारण पशुओं के मारने में जो रक्त बहता है, उसे नष्ट नहीं होने देते बल्कि पशुघातशाला (बूचरख़ाने) ऐसे बनाए हुए होते हैं कि सारा रक्त ठीक तौर पर संचित होता है। इस रक्त को कृषक लोग खाद के तौर पर प्रयुक्त करते हैं। लकड़ी के बूरे के साथ रक्त मिला कर क्षेत्र पर बिखेर देना चाहिये, या थोड़े से चूने के साथ मिला कर और उस को अच्छी तरह पीस कर क्षेत्र पर डालना चाहिये, इस खुश्क रक्त में ११ से १२ प्रति शतक नत्रजन, १ से २ % फ़ास्फ़ोरिक एसिड और ½ से १% पोटैश प्रायः होती है। अंगूरों के लिये यह ख़ाद अतीव उपयोगी है।

अतः पशुघात शालाओं से रक्त ले कर काम में लाना चाहिये। इस में भी छूत छात का ख्याल नहीं होना चाहिये। बूचरख़ाने वालों को उचित है कि वे ही चूने या लकड़ी के

बूरे से मिला कर रक्त रख दिया करें और किसानों से उस की कीमत लें। जहां लाखों रुपैयों की आय बढ़ेगी, वहां देश की कृषि को अकथनीय लाभ होगा।

१०. नत्रजन और हरी खाद—भूमि में नत्रजन डालने के लिये हरी खाद की विधि निकाली गयी है। भारतवर्ष में किसानों को इस का कम ज्ञान है। जहां ज्ञान है, वे लोग भी अशुद्धियां कर देने से हानि उठाते हैं क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होने से ही लाभ होता है। सन, खुलात, चन्ना, किसारी, मट्टर, लोबिया, सेमफली, (मोठ, बाकला,) लाल क्लोवर (अरहर), विलायती गाऊथ, आल्फाफा (alfalfa), भूमि में बो दिये जाते हैं। यह पौदे वायु मण्डल से नत्रजन लेते रहते हैं। अब यदि इन फसलों को काट कर प्रयोग में लाया जावे तो जो २ तत्व पौदों ने भूमि से लिये हैं, वे सदैव के लिये चले जावेंगे, किन्तु यदि उस फ़सल पर हल चला दिया जावे और उसे वहीं क्षेत्र में कुछ दिन तक सड़ने दिया जावे, तो उन्हों ने वायु मण्डल से जो अधिक नत्रजन ली थी—वह भी भूमि को दे देंगे और भूमि से जो पोटैश तथा प्रस्फुर ली थी, वह भी उसे वापिस दे देंगे।

(ख) सावधानी प्रथम—किन्तु जो नई फ़सल उस भूमि पर बोई जावेगी वह पूर्व की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में होने से भूमि से अधिक पोटैश तथा प्रस्फुर निकाल लेगी, अतः हरी खाद के साथ २ उस भूमि पर हड्डियों का चूरा प्रस्फुर के लिये और चावल का भूसा या लकड़ी की राख या पोटैशियम सलफेट डालते रहना चाहिये।

(ग) सावधानी २य—यदि यह दालें पशुओं को खिला दी जावेंगी तो पोटैश, नत्रजन तथा प्रस्फुर का कुछ अंश पशु खा जावेंगे और चूंकि उन का सारा मल मूत्र एकत्रित नहीं किया जाता, इस लिये ऐसी फ़सलों के बोने से भूमि अधिक क्षीण हो जावेगी। अतः स्मरण रहे कि उस फ़सल को काटना नहीं चाहिये बल्कि उस पर हल फेर कर सड़ने देना चाहिये।

(घ) हरी खाद की महानता—अनुमान लगाया गया है कि एक एकड़ भूमि पर जो वायु मण्डल है, उस के ऊपर वाली वायु में ३,३००,००० रूपैयों की नत्र जन है, यदि अमैरीका के बाज़ारों में उसे सम्मेलन के रूपों में ख़रीदा जावे। अतः इन दालों को बो कर वायु मण्डल के अपरिमित भण्डार में से भूमि में अधिक नत्र जन ले लेना अतीव हितकारी घटना है। भारती कृषकों को भी यह विधि अधिक प्रचलित करनी चाहिये।

(ङ) नत्रजन के सम्मेलन—पश्चिम के जो किसान उक्त विधि से नत्रजन नहीं लेना चाहते क्योंकि वे सारा वर्ष भूमि पर सबज़ियां बोए रखते हैं, वे बाज़ार से अमोनियम सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट, सूखा हुआ रक्त ले कर डालते हैं और फिर भी लाभ में रहते हैं।

किन्तु भारत वासियों को अभी हरी खाद या पशुओं का मैला प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि यह सस्ते तरीके हैं। भिन्न २ फ़सलों के लिये भिन्न २ हरी खाद चाहिये जैसे[1] :—

नाम फ़सल	हरी खाद
नारियल तथा तम्बाकू	Sesbania grandiflora.
चाय, कहवा, रब्बर	मुंग फली
चावल	सन

११. नगर की गन्दगी—आज कल नगरों की गन्दगी और गन्दे पानी के बेचने का ठीक प्रबन्ध नहीं। गन्दे पानी

1. Green manuring increases the activity of Bacteria, it causes a more intense respiration, it raises the temperature of the soil, while the greater development of carbon dioxide favours the porosity of the soil and in union with water facilitates the disintegration of insoluble phosphates and si icates.

की मोरियां नगरों से दूर खेतों तक नहीं जातीं, इस लिये वह खाद निरर्थक जाती है, कई नगरों की गन्दगी तो नदियों में डाल दी जाती है, ऐसा करने से मानो सैंकड़ों रुपैये प्रति दिन नदी के भेंट किये जाते हैं। एक रुपैया किसी निर्धनी मनुष्य का नदी में गिर पड़े, वह सारा दिन रोता रहता है किन्तु निर्धनी भारत में नगर वालों की विचित्रता देखिये कि सैंकड़ों रुपैये जान बूझ कर गंवाते हैं, ऐसा नहीं करते कि उस गन्दगी को खेतों में पहुंचाने का प्रबन्ध करदें। एक महाशय ने अनुमान लगाया है कि लण्डन की गन्दगी से इतनी खाद निकल सकती है कि जो ३१,५०,००,००० रुपैये में बिकती, किन्तु उस का अधिकांश व्यर्थ जाता है। उस ने इस गन्दगी की दुर्गन्ध दूर करने और उसे खाद के तौर पर प्रयुक्त करने की विधि निकाली है। भारत वर्ष में नागरिक सभाओं को इस ओर ध्यान देना चाहिये और नगर के आस पास के कृषकों को चाहिये कि शुद्धता रखते हुए जहां तक हो सके, इन पदार्थों का प्रयोग करें, क्योंकि यह सब से उत्तम और सस्ती खाद है।

१२. खल की खाद—सर्व प्रकार की खलें अति उत्तम खाद होती हैं—उन में खाद के कीमती तत्व नत्रजन, प्रस्फुर और पोटैश मौजूद हैं। साथ ही खल गाए, बैल, भैंस, घोड़ा, खच्चर के लिये अतीव उत्तम भोजन है, उन के दूध को बढ़ाती

और गहरा करती है। किन्तु हमारे किसान निर्धनता और अज्ञान के कारण इन खलों का प्रयोग नहीं करते। विदेशी लोग यहां से खलें ले जाते हैं—अपनी भूमि को उपजाऊ बनाते और पशुओं को मोटा ताज़ा करते हैं। देखिये, १० वर्षों में कितनी खल इस देश से विदेश गयी हैः—

वर्ष	मात्रा	कीमत
	हंड्रेडवेट = ५५ सेर	पाउण्ड = १५ रु०
१६०१—२	८२५५६६	१६८८४६
१६०५—६	१४७४६१२	३४६६१३
१६०६—१०	१४८४५३६	३१५२७४

१३. तेल बीज—हम खलें ही विदेशों में भेज कर अपनी भूमि का भोजन बाहेर नहीं भेज रहे बल्कि क्रोड़ों रुपैयों के तेल देने वाले बीज भी बाहिर भेज रहे हैं। इस से जहां भूमि का अधिक २ भोजन बाहिर जाता है, वहां हमारे श्रमियों का काम कम होता है, यदि यहीं से तेल बन कर विदेश जाता तो कितने तेलियों को काम मिलता! देखिये १० वर्षों में कैसे उत्तरोत्तर अधिक बीज बाहिर गये हैंः—

वर्ष	मात्रा हंड्रेडवेट = ५५ सेर	मूल्य रुपैये
१६०१—२	२२६६५२२७	१६७७६२६८५
१६१०—११	३०६८३२४८	२५,१२,३४,४४५
१६०२ से	१६११ तक ही	१५६,५६,२४,२६५

रुपैयों के तेल—बीज बाहिर गये हैं । किसी के मन में यह विचार हो कि इतने रुपैये देश में आये, हमें हानि ही क्या है ? तो यह विचार अतीव भ्रममूलक है । पाठक ! इतने रुपैयों का लाभ तो अवश्य हुआ परन्तु देखना तो यह है कि यदि यह तेल-बीज हमारे भारतवासी प्रयुक्त करते या उन का तेल तथा अन्य पदार्थ निकाल कर बाहिर भेजते तो इस से दुगना तिगुना लाभ होता या न ? तैलादि निकालने की सारी मज़दूरी हमें मिलती, खलें हमारे पास रहतीं-उन से भूमि में खाद दिया जाता और पशुओं को अत्युत्तम भोजन खिलाया जाता । विदेशियों का कोई दोष नहीं । बाज़ार में पदार्थ बिकते हैं, उन्हें देशी ले जावें या विदेशी । बनिये ने तो टके कमाने हैं । यदि भारत वासियों को इन पदार्थों के प्रयोग (इस्तेमाल) करने की रीति आ जावे, तो ही भला हो सकता है ।

१४. तेल-बीज के लाभ-विदेश में तेल-बीज भेजने की हानियां तब स्मरण रहेंगी, जब यह ज्ञात हो कि विदेशी उन से क्या २ लाभ लेते हैं । अमेरीका में २००० पाउण्ड=२५ मन (२ पाउण्ड=लग भग १ सेर) कपास के बीज—बिनौले से निम्न लिखित वस्तुएं प्राप्त होती हैं:—

बिनौला, २००० पाउण्ड्ज़ ।

गूदा १०८६ पाउण्ड्ज़
- खल ७१३ पा०
  (खाद और)
  पशुओं का भोजन)
- तेल २८६
  - पीला तेल
    - साफ पीला तेल
      - तेल
      - सफ़ेद तेल
      - लार्ड (Lard)
      - काटोलीन (Cottolene)
      - (Miner's oil)
      - साबून
    - स्टीरीन (Stearin)
  - नकली घी
  - साबून-तेल
    - साबून

महीन रुई २३ पा०

बिनौले का छिलका ६४३ पा०
- रेशा
  - उमदा कागज़
- जलाने का पदार्थ
  - राख
    - खाद
- छिलका
  - पशुओं का भोजन

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि एक बिनौले का क्या २ बनता है। उसकी राख अत्युत्तम खाद है क्योंकि प्रायः उसमें ६ प्रति शतक जल, ६.०८% फोस्फोरिक एसिड, ५३.४०% पोटैश, ८.८५% चूना, ६.६७% मैगनेशिया, १०.५७% कार्बोनिक एसिड होता है। इस खाद से तम्बाकू की फ़सल बहुत ही बढ़ती है। खल में ५.८८% फोस्फोरिक एसिड, १.७७% पोटैश और ६.७६% नत्रजन होती है। अमेरीका में इसे गन्ना, कपास, मकई, तम्बाकू की फ़सलों में खाद के लिये बहुत प्रयुक्त किया जाता है।

१५. भारत में तेल के पेशे में क्या लाभ हो सकता है ?

सारांश यह है कि बिनौले के बहुतसे लाभ हैं। यदि पठित महाशय तेल निकालने का काम हाथ में लें तो उन को बहुत लाभ हो। एक महाशय ने १६०७ में हिसाब लगाया था कि १६०००००० रुपैये के केवल बिनौले ही भारत में होते हैं। उन का तेल निकालने से यह लाभ हो सकता है। २२४० पाउण्डज़ बिनौला लें, तो

२८० पाउण्डज़ तेल	३७ रुपैये
१८०० ,, खल	४४ ,,
प्राप्त धन (तेल निकालने की केवल सरल विधि से)	८१
बिनौले की कीमत	५६

सूद लगा कर कला आदि का व्यय तेल निकालने में १२

६८

(२७$\frac{3}{4}$ मन बिनौले पर लाभ सर्व प्रकार का व्यय निकाल कर) .१२

१९. नवयुवकों से अपील—अभी भारत वर्ष में तेल निकालने की कलाओं का बहुत प्रयोग नहीं हुआ। खलों और तेलादि की मांग संसार के सभ्य देशों में बहुत है। वहां घी मंहगा हो रहा है, उसके स्थान पर शुद्ध तेल के प्रयोग करने की आशाएं हैं। कला के द्वारा कई टन बिनौलों का प्रयोग रोज़ हो सकता है और जब बिनौलों से जो कीमती पदार्थ निकलते हैं उनका अनुमान लगाया जावे तो ३० रुपये प्रति टन लाभ आ बैठेगा। यह अतीव लाभ दायक काम है। हमारे नव युवकों को ऐसे कामों के करने से लज्जा नहीं करनी चाहिये। इन कामों में लग कर निषिद्ध चाकरी से बचते हुए, स्वतन्त्रता पूर्वक काम करते हुए, वे सैंकड़ों रुपैया एक मास में कमा कर साथ ही साथ देश का भला कर सकते हैं। उठो नौजवानो! भारत के नौनिहालो! इन कामों को हाथ में लो और इस देश को निर्धनता से बचावो!

तेल निकालने की विधि पर Lamborn's 'Cotton Seed Products' और Tompkin's Cotton and Cotton Oil' नामी पुस्तकें पढ़नी चाहियें।

१७. पशुओं का मैला—यह सब से सस्ता और उत्तम खाद है। इस में सब तत्व मौजूद हैं अतः यह भूमि को उपजाऊ बना सकता है यदि इस का बुद्धि पूर्वक प्रयोग किया जावे। पशुओं के खादों में भिन्न २ तत्वों का अनुपात यह है:—

पशु की खाद	नत्रजन%	फ़ास्फ़ोरिक एसिड%	पोटैशियम%
गाय, भैंस	.४२६	.२६०	.४४०
घोड़ा	.४६०	.२६०	.४८०
सूअर	.३४०	.३६०	.३२०
भेड़	.७६८	.३९१	.५९१
बकरी	.८० से २ तक	.५ से २ तक	.८ से .१ तक

अमेरीका में इन खादों के २८ मन का मूल्य क्रमवार ६,७,१०,१०,२१ रुपये लग भग है। उस देश में पशुओं के मैले को एकत्र करने के उमदा २ साधन हैं। मल मूत्र दोनों ही टीनों में जमा होते हैं। चूने गच्च फ़र्श बने होते हैं, प्रति दिन उन्हें धोया जाता है। इन साधनों से सारा मैला प्रयुक्त किया जा सकता है। भारत वर्ष में कच्चे फ़र्शों के कारण खाद के उत्तम तत्व जो द्रव अंश में होते हैं—भूमि चूस लेती है—उसे एकत्रित करने के कदापि कोई साधन नहीं। इस लिये भारत में खाद के अत्युत्तम तत्व व्यर्थ जाते हैं। संयुक्त प्रान्त अमेरीका के कृषि विभाग ने ('A Model Farm' नामी पुस्तक में)

हिसाब लगाया है कि पशु—खाद का $\frac{५}{८}$ भाग द्रवरूप में होता है और ठोस गोबर में केवल $\frac{३}{८}$ तत्व होते हैं। यह सिर मुण्डाते ही ओले पड़ने वाली बात है क्योंकि पशु-खादों के प्रयोग करने में $\frac{५}{८}$ तत्वों का व्यर्थ खो बैठना कोई साधारण बात नहीं।

भारत वर्ष में केवल ठोस गोबर एकत्र हो सकता है। किन्तु उसे भी खाद के काम में नहीं लाया जाता। भारतवर्ष में निर्धनता अधिक है लकड़ी महंगी है और यदि सस्ती भी हो और ग्रामों में भी मिल सके तो घर से पैसे निकलते हैं, उन्हें कौन खर्च करे? गोबर की थापियां बना कर दीवारों और भूमि पर लगा देते हैं. जब वे सूख जाती हैं तो जलाने के काम में लाते हैं। जो गन्दा गोबर इस काम से बच जाता है उसे ग्राम या नगर के मल स्थान पर फैंक देते हैं, जहां वह सड़सड़ कर दुर्गन्ध देता और जीवों के स्वास्थ्य को बिगाड़ता है। साथ ही जब गोबर जलाते हैं तो राख को एकत्र नहीं किया जाता, उसे बर्तनों के साफ़ करने में लगाया जाता है। अतः भूमि को सर्वथा कोई खाद नहीं मिलती।

महाशय संयानी ने सच कहा है कि हमारे अज्ञानी किसानों को पता नहीं कि गोबर जलाने से उन्हें धन की भी हानि है :

एक मन गोबर की कीमत खाद के तौर पर ११½ आने मन

„ जलाने के लिये ४½ आने मन

„ की राख ३½ आने मन

---

८ „

„ हानि ३½ आने मन

कृषकों को इस कारण ख़याल करना चाहिये कि यथा शक्ति गोबर खाद के तौर पर प्रयुक्त किया जावे। जहां गौवें सारा दिन चरने के लिये जाती हैं वहां से भी गोबर एकत्र करने की विधि निकालनी चाहिये। जलाने की लकड़ी की कठनाई अवश्य है—राज्य को चाहिये कि जंगलों में वृक्षों की अधिक उत्पत्ति का और काटी हुई लकड़ी कम किराये से ग्रामों में पहुंचाने का प्रबन्ध करे।

१८. गोबर एकत्र करने की विधि

कहीं २ जो गोबर जमा भी किया जाता है, उस के सब अच्छे तत्व निकल जाते हैं, तभी प्रयुक्त किया जाता है, उस के रक्षित रखने की विधि हमारे किसानों को नहीं आती। खेतों के पास या ग्रामों के बाहिर उस के ढेर लगा दिये जाते हैं और वह कई सप्ताहों तक सूखता रहता है, इसी सड़ान्द में ही उस का कीमती तत्व गुम हो जाता है—वह दुर्गन्ध

अमोनिया गैस की होती है, अर्थात् नत्रजन गोबर से निकलती रहती है। इस वायु मण्डल में तो अपरिमित नत्रजन मौजूद है। मनुष्य को बुद्धि बल से उसे पकड़ने और प्रयोग करने की विधि निकालनी चाहिये, जो हरी खादों की रीति से सभ्यों ने कर ली है किन्तु हमारी मूर्खता देखिये कि अपने काबू में जो नत्रजन है, उसे भी वायु मण्डल में दे रहे हैं। साथ ही सड़ान्द से अपना स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं। भूमि को भूखा रखते हैं और प्रति दिन निर्धन होते जाते हैं।

अनुमान किया गया है कि संयुक्त राज में प्रति वर्ष १५,००,००,००० रुपैयों की पशु खाद पैदा होती है। उसे ठीक तौर पर रक्षित न रखने से कुछ नत्रजन निकल जाती है जिसे यदि बाज़ार से सोडा नाइट्रेट ख़रीद कर खेतों में डालना चाहें, तो ३४५००००० से ५१०००००० रुपैये खर्च करने पड़ेंगे। अर्थात् यदि इंगलैण्ड के शिक्षित किसान भी प्रति वर्ष ५ क्रोड़ रुपैये की हानि उठाते हैं तो हमारे अज्ञानी, अशिक्षित किसानों की हानि का क्या अनुमान होगा? साथ ही जब यह देश कृषि प्रधान हो और संयुक्त राज से ७ गुणा से भी अधिक जन संख्या हो। फिर संयुक्त राज में $\frac{1}{4}$ लोग कृषि में लगे हैं, हमारे $\frac{3}{4}$ नरनारी कृषि में लगे हैं। अतः कम से कम

२२ गुणा हमारी हानि अधिक होनी चाहिये यदि हम इंगलैण्ड वालों जितनी अपनी खादों की रक्षा कर सकें, नहीं तो ११० क्रोड़ों से अधिक हानि होगी ॥

संयुक्त प्रान्त अमैरिका में पशुओं के मैले के संचित करने और उसे क्षेत्र में डालने की उत्तम विधियां मौजूद हैं फिर भी ७८,००,००,००० रुपैये (२५००००००० डालेज़) की हानि का हिसाब सरकार की ओर से पशु-खादों को भली भान्ति प्रयुक्त न करने में लगाया गया है। इस कारण भारत वर्ष जिस में अमैरीका की अपेक्षा आठ गुणा लोग कृषि में अधिक लगे हुए हैं,बहुत ही हानि होती होगी, इसलिये हम ने लिखा है कि यदि हम अंग्रेज़ों के समान पशु-खादों को रक्षित रखते हों तो ११० क्रोड़ों की हानि है नहीं तो इस से भी कहीं अधिक हानि होगी, अमैरीका का हिसाब देख कर यही सत्य प्रतीत होता है।

अतः किसानों को अपना कर्त्तव्य-हानि लाभ समझना चाहिये। खाद को ऐसे ही ढेरों में रखने से उस का आधा लाभ गुम हो जाता है और जब वर्षा पड़ जावे तो उस के तत्व बह जाने का भय रहता है। अतः या तो ताज़ा गोबर डालना चाहिये, नहीं तो एक गढ़ा खोद कर उस में प्रति दिन गोबर डालते जाना चाहिये और साथ ही उसे मट्टी से खूब ढक देना चाहिये ताकि सड़ान्द से बच जाये और वर्षा, पशु, पक्षी, आन्धी आदि भी उसे ख़राब न कर सकें।

१९. गोबर की खाद को महीन नहीं किया जाता— भारत वर्ष में जहां गोबर की खाद को रक्षित रखने की विधि नहीं, वहां साथ ही उस सूखे हुए खाद को भी खेत में डालने की विधि मालूम नहीं, उसे बहुत महीन करना चाहिये और सारे खेत में सब स्थानों पर एकसा खाद पड़ना चाहिये, किन्तु हाथ से खाद डालने से कभी यह बातें प्राप्त नहीं हो सकतीं। पश्चिमी लोग तो बड़ी २ कलाओं का प्रयोग करते हैं। किन्तु हमारे किसान छोटी २ कला से गुज़ारा कर सकते हैं। उन्हें याद रखना चाहिये कि यदि ढेलों के रूप में खाद क्षेत्र में पड़े तो उस का कम से कम आधा लाभ गुम हो जाता है, अर्थात् १ मन खाद केवल अब १० सेर खाद का काम दे सकती है, क्योंकि २० सेर खाद का असर सूखने में ही चला गया था। यदि १२ आने मन खाद मिलती हो, तो ९ आने प्रति मन घाटा हुआ। अतः यदि किसान खाद को ठीक तौर रक्षित रखे और कला के द्वारा आटे जैसा महीन पीस कर उसे कला के द्वारा ही खेत में डाले, तो पूरा लाभ हो सकता है। फिर इस कला से वही खाद दुगनी भूमि पर बिखेरी जा सकती है। साथ ही फ़सल बोने के पश्चात् भी उस कला से खाद खेत में डाली जा सकती है, अतः इस कला से बहुत ही लाभ

हैं। चार पांच किसान मिल कर एक २ कल खरीद लें और अपने २ खेतों में खाद डाला करें, तो खूब धन बढ़ सकता है, देश सुधारकों को चाहिये कि किसानों को ये कलाएं लेकर देवें, उन के प्रयोग की विधि सिखावें, उन के लाभ समझावें। वर्षा ऋतु के मेंडकों के समान शोर करने और परस्पर लड़ते रहने और शाब्दिक जालों में लोगों को फंसाते रहने से देश की उन्नति नहीं होगी।

मच्छली का खाद—जो मच्छलियां खाने योग्य नहीं, उन्हें सुखा कर खाद के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है। इन की खाद अत्युत्तम है। गोबर से इस में दस गुणा अधिक तत्व मौजूद हैं। परीक्षण किया गया है कि एक एकड़ भूमि पर जब २.७ से २.६ टन सूखी मछली डाली गई तो ११००० से १३००० पाउण्ड गुड़ देने वाले गन्ने पैदा हुए, जब कि सारे भारत की प्रति एकड़ गुड़ की मध्यमा केवल ३१५० पाउण्ड है। अर्थात् यह खाद डालने से गुड़ की उत्पात्ति कम से कम चार गुणा बढ़ सकती है। पंजाब में बहुत ही उन्नाति की आवश्यकता है क्योंकि वहां १६०० पाउण्ड गुड़ की उपज प्रति एकड़ है।

गन्ने के लिये निम्न खादें लाभदायक हैं किन्तु उन की मात्रा और प्रकार का परीक्षण किसान को स्वयमं करना चाहिये

या पास वाली सरकारी परीक्षण शाला से मालूम करना चाहियेः—

	प्रति एकड़ टन
पशु खाद	२० से ३०
सूखी मच्छली	१ से १½
अरण्ड की खल	२ से ४
करंज की खल	३ से ५
सरसों "	२ से ३
कुसुम "	१ से २

समुद्र की काई—फूलों और फलों के पौदों के लिये यह बड़ी अच्छी खाद है किन्तु सैंकड़ों मन सुगमता से एकत्र हो सकने पर भी इस काई को खोया जा रहा है। समुद्रतट निवासियों को अवश्यमेव इस का प्रयोग करना चाहिये।

२०. खाद से पली भूमियों की शक्ति का बढ़ना—सारे लेख में इसी बात को ही सिद्ध किया गया है कि उचित खाद, उचित मात्रा और उचित रूप में डालने से भूमि की शक्ति बढ़ती है किन्तु यहां पर कई परीक्षण दिये जाते हैं जो इस विषय पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

(क) एक स्थान पर यह परीक्षण किया गया कि जिन गौओं को खाद से पोषित-पले हुए-खेतों में चराया गया, उन से मध्यम

तौर पर १४½ सेर दूध प्राप्त हुआ और जिन्हें खाद से न पले हुए खेतों में चराया गया, उन से ८½ सेर दूध प्राप्त हुआ। प्रत्येक गाय के पीछे ६ सेर दूध की कमी क्या कोई साधारण बात है ?

(ख) चावल के खाद दिये और बिना खाद दिये खेतों में लाभ की मात्रा एक परीक्षण से यूं प्रकट होती है:—

बिना खाद की भूमि की		कीमत	नैट लाभ
	खाद की कीमत	२७रु०	१० रु०
खाद से पोषित	३-८	४८	२७
”	६-०	४७	२१
”	८-०	६२	३२
”	१६-०	५३	१५

(ग) खाद की महिमा नीचे के ब्यौरे से पता लगेगी। आलुओं के पैदा करने में उत्तरोत्तर कीमती खादें डाली गयीं और उन से लाभ की मात्रा भी बढ़ती गई।

एक बीघे पर सम्पूर्ण व्यय	उस में से खाद का व्यय	उत्पात्ति	सब खर्च निकाल कर लाभ
४८ रु०	० रु०	३० मन	११-८-० रु०
५८ रु०	१० रु०	५०	४१-८-०
८४ रु०	२१ रु०	७५	६६-८-०
९८ रु०	७०½ रु०	७५	५२-०-०
११२	८४ रु०	१००	८८-०-०
११३	९५½ रु०	११५	१०७-०-०

(घ) अमेरीका में देखा गया है कि:—

खाद के बिना	...	६६०	पाउण्ड प्रति एकड़
पौटैश, फास्फेट और खलें डाल कर	...	१६८०	"
केवल फ़ास्फेट और खलें डाली गयीं	...	१३२०	"

पौटैश न डालने से उत्पत्ति कम हो गयी, अतः उचित खाद के देने से उत्पत्ति खूब बढ़ती है, साथ ही दाने भी मोटे पैदा होते हैं।

(ङ) हवाई में जब गन्ने की फ़सल के लिये खाद नहीं दिया जाता था तो प्रति एकड़ ६३०० पाउण्ड् गुड़ निकलता था, जब उचित खाद दिया गया तो १००८० पाउण्ड गुड़ निकला। एक टन (२७¾ मन) गुड़ जिन गन्नों से निकलता है वे भूमि से १३.६ पाउण्ड फ़ास्फ़ोरिक एसिड, १.१४ पाउण्ड पोटैश, ४०.५ पाउण्ड नत्रजन—अमल और ३५ पाउण्ड चूना निकाल लेते हैं। गन्ने की फ़सल के पूर्व और पश्चात् भूमि में यह पदार्थ न डाले जावें तो गन्ने तथा अन्य पदार्थ कैसे पैदा हों? एक एकड़ म १००० पा० भिन्न खादें डालने की आवश्यकता है।

(च) आम तौर पर पंजाब में १२ मन प्रति बीघा के हिसाब से गेहूं पैदा होता है किन्तु लायलपुर में सरकार की ओर से जो कृषि क्षेत्र परीक्षण के लिये रखे गये हैं —

मन गेहूं पैदा किया गया। स्पष्ट है कि यदि हमारे किसान शिक्षित हों और कृषि की उन्नत विधियों का बर्ताव करें तो गेहूं की उत्पत्ति तिगुनी हो सकती है।

खादों के कतिपय अन्य परीक्षण दिये जाते हैं:—

खाद	फ़सल	प्रति एकड़ उत्पत्ति
कोई नहीं	जौ	३ मन ३७ सेर
सन की हरी खाद	"	१६ मन २७ सेर
कोई नहीं	छोला	२० १८ "
सन की हरी खाद	"	१६ २० "
कोई नहीं	ईख	११ ५ १५ गुड़
केलसियम सायानाईड	"	१५ ० ० गुड़
कोई नहीं	कपास	१ २३ ८ "
सुपर्फास्फेट	"	५ ० ५ "
कोई नहीं	गेहूं	७ ४ गेहूं
		१३ १२ भूसा
कैलसियम नाईट्रेट	"	१५ ८ गेहूं
		२८ २८ भूसा

प्रश्न ।

१. भूमि की सात किस्मों के नाम लो ॥

२. भूमि की उपजाऊ शक्ति का अनुमान किन साधनों से करोगे ?

३. पौदों के दस प्रधान तत्व कौनसे हैं ? उन में से कौनसे तत्व बार बार भूमि में डालने की आवश्यकता है ?

४. भूमि को उचित खाद की क्यों आवश्यकता है ?

५. खादों के सिद्धान्तों से उक्त प्रश्न पर अधिक प्रकाश डालो ।

६. भूमियों की जांच करने से कृषक को क्या लाभ होते हैं ? राज्य इस बारे में क्या सहायता दे सकता है ?

७. किस भूमि में पोटैशियम डालने की ज़रूरत होती है और कौनसे चार प्रकार हैं जिन से पोटैशियम भूमि को मिल सकती है ?

८. चार प्रकार की भूमियों के नाम लो जिन में चूना हितकारी है ।

९. किन विधियों से प्रस्फुर भूमियों में डाली जा सकती है । प्रस्फुर के सम्मेलनों के नाम लो । हड्डियों की खाद किन भूमियों में और किन फसलों के लिये प्रयुक्त की जाती है ? हड्डियों की खाद की कितनी किस्में हैं ?

१०. भारतवर्ष से प्रतिवर्ष कितने रुपये की हड्डियां विदेश में जाती हैं ? इस निर्गमन से भारत को क्या हानि है ?

११. रक्त की खाद के विषय मे क्या जानते हो ?

१२. नत्रजन किन विधियों से भूमि में डाली जा सकती है ? भारत में कौनसी विधि का अतीव प्रचार होना चाहिये ?

१३. हरी खाद की विधि को विस्तार पूर्वक समझा दो।

१४. नगरों की गन्दगी के प्रयुक्त करने से देशों को क्या २ लाभ हो सकते हैं ?

१५. खलों की खाद क्यों उपयोगी है ? भारत वर्ष को खलें बाहिर भेजने से क्या २ हानियें होती हैं ?

१६. तेल–बीज विदेश भेजने से क्या हानियां हो रही हैं ?

१७. विनौले से क्या २ पदार्थ बनाये जाते हैं ?

१८. भारत वर्ष में तेल के व्यवसाय करने से प्रतिशतक कितना लाभ हो सकता है ?

१९. पशुओं के मैले में भिन्न २ तत्व प्रति शतक किस मात्रा में पाये जाते हैं ?

२०. अमेरीका और भारत में पशु–खाद के एकत्र तथा संचित रखने में क्या भेद है ?

२१. गोबर की थापियां बनाने में अधिक लाभ है या खाद के प्रयुक्त करने से ?

२२. भारत वर्ष को गोबर के उचित तौर पर संचित न रखने से क्या हानियां हो रही हैं ?

२३. गोबर की खाद के प्रयुक्त करने पर क्या २ सावधानियां चाहियें ?

२४. खाद से पली हुई भूमि में उपज बढ़ जाती है, इस के उदाहरण दो।

निदेश।

Coleman and Addyman—Practical Agricultural Chemistry, Section III.

Mrs. S. N. Singh—*The Improvement of Indian Agriculture, Chapter IV.*

Wealth of India नामी मासिक पत्र के सब गत अंक जिन में कृषि सम्बन्धी पृथक ज्ञान दिया होता है। यह पत्र मद्रास से निकलता है और भारत वर्ष में कोई ऐसा उत्तम पत्र नहीं।

Reports of the Indian Industrial Conference.
S. R. Sayani—*Agricultural Industries in India.*
Review of the Trade of India, 1911—12.

Manures.

C.M. Aikman.—*Manures and the Principles of Manuring.*

B. Dyer.—*Fertilisers and Feeding Stuffs.*
J. O. Fritsch.—*The Manufacture of Chemical Manures.*

J. Griffith—*Treatise on Manures.*
A. B. Hall.—*Fertilizers and Manures.*
J. A. Murray.—*Soils and Manures.*
E. T. Shepherd.—*Practical Farming in Relation to Soils, Manures and Crops.*

C. E. Thorne.—*Farm Manures.*
Van Sylke.—*Commercial Fertilizers.*
M. G. Ville.—*Artificial Manures.*
E. B. Voorhees.—*Fertilizers.*
H.J. Wheeler.—*Manures and Fertilizers.*

SOILS.

C. W. Burkett.—*Soils: Their Properties, Improvements and Problems.*

H. W. Campbell.—*Soil Culture Manual.*
S. W. Fletcher.—*Soils: How to Handle and Improve them.*

W. Fream.—*Soils and Their Properties.*
A. P. Hall.—*The Fertility of the Soil.*
Hunt and Burkett.—*Soils and Crops.*
H. Snyder. *Soils and Fertilizers.*
Lyon and Tippin.—*The Principles of Soil Management.*

अध्याय ६

भूमि की उत्पादक शक्ति

गत दो अध्यायों का सारांश—चौथे अध्याय में कतिपय ऐसे साधन बताये गये थे जिन से भूमि का तल थोड़ा बहुत बढ़ाया जा सकता है या कृत्रिम तौर पर जल दे कर परती भूमि को उर्वरा किया जा सकता या उर्वरा भूमि की उत्पादक शक्ति को जल सेचन द्वारा अधिक किया जा सकता है। पांचवें अध्याय में इन बातों पर बल दिया गया है कि:—

(क) भिन्न २ प्रकार की खादों के द्वारा भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ सकती है, कि

(ख) भारत में चिर काल से खाद देने की रीति नहीं और जो है वह साइन्स अनुसार नहीं, इस कारण भूमि पर थोड़ी उत्पत्ति होती है। कि

(ग) अन्य देशों में खादों के द्वारा भूमि की उत्पादक शक्ति को बहुत बढ़ाया गया है और यदि भारतवर्ष भी दरिद्रता से निकलना चाहता है तो उसे भी उत्तम २ खादें देने

की विधियां प्रयुक्त करनी चाहियें और राज्य तथा जाति का धर्म है कि अपने किसानों को उत्तम विधियां शीघ्र सिखावें ।

किन्तु कृषि की उन्नति के अन्य बहु साधन हैं जिन्हें यदि भारत में प्रयुक्त किया जावे तो दिन दुगुनी और रात चौगुनी समृद्धि बढ़ सकती है। प्रधान २ साधनों को यहां पर लिखा जाता है।

२. गहरी खेती

(क) खेती दो प्रकार की होती है: विस्तृत (Extensive) और गहरी (Intensive)। जब खेतों पर थोड़ा सा—ऊपर २ से हल चला कर बीज बो दिया जावे और जैसी फ़सल हो उस पर सन्तोष किया जावे, साथ ही जब २ अधिक अनाज आवश्यक हो, तब २ नयी भूमियां जोत ली जावें तो यह विस्तृत खेती कहलाती है। परन्तु जब भूमि को उत्तम हलों के द्वारा खूब गहरा खोदा जावे और मट्टी को खूब महीन करके खादों से पोषित किया जावे और साथ ही नये २ खेतों पर जाने की अपेक्षा पुराने खेतों पर ही अधिक गल्ला पैदा करने का यत्न किया जावे तो इस का नाम गहरी खेती है।

(ख) गहरी खेती कब की जाती है ?—जिन देशों म भूमि की कमी नहीं जैसे अमेरीका और आस्ट्रेलिया में तो वहां विस्तृत खेती की जाती है। जब योरुपी लोग वहां आबाद हुए तो पहिले पहिल उन्हों ने विस्तृत खेती की क्योंकि यदि किञ्चित् श्रम से पर्याप्त पैदावार हो जावे तो अधिक श्रम की क्या आवश्यकता है ? किन्तु अब आबादी तथा धन के बढ़ने और अन्य जातियों की मांग के कारण ग़ल्ले की ज़रूरत अधिक हो गयी है–इस लिये वहां भी गहरी कृषि होने लगी है। भारत वर्ष के निवासियों को काफ़ी भोजन नहीं मिलता, अतः बहुत अधिक पैदावार की यहां आवश्यकता है। किन्तु हम आलसी और सन्तोषी हैं-रूखी सूखी खाये के ठण्डा पानी पी कें गुज़ारा कर लेते हैं। अतः बाबा आदम के वक़्त की खेती के तरीके प्रायः प्रयुक्त कर रहे हैं। अब पश्चिम के सम्पर्क से होश आने लगी है, ज़रूरतें बढ़ने लगी हैं, नये २ आविष्कारों की ज़रूरत अनुभव हो रही है–अब आशा है कि गहरी कृषि की ओर लोग ध्यान देवेंगे।

(ग) गहरी खेती से उत्पत्ति बढ़ती है:–जब विस्तृत खेती भूमि में हो रही हो और ग़ल्ले की मांग बढ़ जावे तो विस्तृत कृषि की अपेक्षा अब उस में गहरी (Deep) कृषि करने से भेद आ सकता है-अर्थात् पैदावार की वृद्धि हो सकती है। यह सम्भव है कि बहुत सी भूमियों में ऊपर के पृष्ट के तत्व इतने

उपजाऊ न हों, परन्तु निचला तल बहुत उपजाऊ हो। अतः गहरा खोदने से निचली उपजाऊ मट्टी ऊपर की कम उपजाऊ मट्टी वाली भूमि से मिल कर अत्यन्त अधिक उपजाऊ हो जावेगी।

(घ) भारत में भूमि का दिवाला निकला हुआ है—

ज़रा विचारिये कि यदि भारत वर्ष में एक सहस्र वर्षों से चार इंच गहरा खोदने वाला हल चलाया जा रहा हो तो हमारे खेतों के ऊपर वाले तल के उत्पादक तत्व वारं वार खेती करने से निकल रहें होंगे और यह आश्चर्य्य ही है कि अब तक हमारी भूमियां कुछ न कुछ उत्पन्न करती जाती हैं, नहीं तो ऊपर वाले तल का दिवाला कभी का निकल चुका होगा। वायु मण्डल के द्वारा जो तत्व भूमि में आ सकते हैं, वे हमारी भूमियों में आते रहे हैं क्योंकि छैः २ महीनों तक भूमि को परती छोड़ दिया जाता है, केवल एक फ़सल सारे वर्ष में बोई जाती है, दूसरी फ़सल उस भूमि पर नहीं बल्कि दूसरी भूमि पर बोई जाती है ता कि परती भूमि आराम कर लेवे और जो २ तत्व फ़सल बोने से चले गये हैं, वे आराम करने से उस में फिर वापिस आजावें।

भूमियों को इस प्रकार परती छोड़ने की विधि असभ्यता की दर्शक ह क्योंकि (क) आधी भूमि पर तो कृषि नहीं हो सकती, (ख) जब कृषि की जाती है और कोई कृत्रिम खाद नहीं डाली जाती तो नत्रजन, पोटैशियम तथा प्रस्फुर जो अनाज क

लिये आवश्यक तत्व हैं और जो वायु मण्डल से नहीं मिल सकत, वे भूमि में न होने के कारण फ़सल बहुत कम होती है ॥

अतः भारत में आधी भूमि परती छोड़ने की अपेक्षा खाद डालने से सारी भूमि पर खेती की जा सकती है और उस से पैदावार भी अधिक हो सकती है । फिर यदि भूमि गहरी खोदी जावे तो उपज बहुत बढ़ सकती है क्योंकि सालहा बसाल से ऊपर के तल से ही तत्व लिये गये हैं किन्तु दस या बारह इंच गहरा खोदने से नीचे की मट्टी जो के तत्वों में पुष्ट है—ऊपर आजावेगी और पैदावार खूब बढ़ा देगी ॥

स्याम देश में राज्य ने परीक्षण किया जिसका सारांश-यह है कि चार इंच की खुदाई की अपेक्षा जब १० इंच की खुदाई की गयी तो चावल की फसल $\frac{1}{3}$ बढ़ गयी ।

(ङ) गहरी खेती के लाभों के प्रमाण-जर्मनी ने २० वर्षों में अपनी भौमिक पैदावार बहुत बढ़ा ली है क्योंकि उस देश में गहरी खुदाई होती है, भूमि को भली प्रकार से तय्यार किया जाता है, उचित खादें प्रयुक्त होती हैं, कृषक शिक्षित हैं, राज्य सर्व प्रकार से सहायता देता है और किसानों को कम ब्याज पर धन मिलता है । पिछली सब बातें अमेरीका में भी

है किन्तु वहां गहरी कृषि की प्रथा नहीं, इस कारण वहां २० वर्षों में वृद्धि की मात्रा जर्मनी की अपेक्षा बहुत थोड़ी हैः—

जर्मनी में पैदावार की वृद्धि।

एक एकड़ की उत्पत्ति

गल्ला	१८८६–१८६५	१९०६–१६१०	२० वर्षों में उन्नति
	बुशल	बुशल	
गहू	२०.२	३१.२	४७.८%
राई	१६.६	२८.३	७०.०%
जै (oats)	३४.१	५७.५	६६.६%
जौ	२४'५	३०.२	५१.८%
आलू	१३०.०	२१०.१	६१.६%

युक्त प्रान्त अमेरीका में पैदावार की वृद्धि

गहू	१२.७	१४.७	१५.७
राई	१२'७	१६.४	२९.२
जै (oats)	२५.६	२६.०	१३.३
जौ	२२.६	२४.६	८.८
आलू	७३.२	६६.६	३२.३

अतः स्पष्ट है कि गहरी खेती से बहु लाभ हैं किन्तु साधारण हलों से किसान गहरी खुदाई नहीं कर सकता, उसे नये २ उत्तम हल ख़रीदने चाहियें। अमैरीका के हल अतीव लाभदायक हैं, बड़े २ ज़मीनदारों और शिक्षित किसानों को उन का प्रयोग अवश्य करना चाहिये॥

३. पशुओं के पालने की नई २ विधियां–भारत में बैलों को गन्दा पानी तथा चारा दे कर आयु कम कर दी जाती है, उन के श्रम तथा रोग की परवाह नहीं की जाती, उनकी जगह साफ़ नहीं होती, अन्य देशों में भी इस नवीन सभ्यता के पूर्व यही अवस्थाएं थीं, किन्तु जैसे सभ्य देशों में दशा परिवर्तित हो गयी है वैसे हमें भी परिवर्तन करना चाहिये। नीचे के ब्यौरों से सब बड़े देशों के पशुओं की संख्या ज्ञात होगी और उन की सहायता से देशों की पाशविक सम्पत्ति का भी अनुमान लगाया जा सकेगा॥

भारत में पशुओं, हलों और

निम्न अंकों में ००

प्रान्त	बैल और गाय	भैंस	बछड़े और भैंस के बछड़े	भेड़	बकरी
अपर बर्मा... ...	२,०८६	२१६	८११	३१	११०
लोअर बर्मा... ...	१,४३१	५५०	६३५	२	७३
आसाम	१,६०२	२६३	८४६	८	५८४
बिहार और उड़ीसा	१०,३९१	२,१६१	२,१३६	९५२	३,५६५
आगरा	११,७७८	३,१५०	६,६७६	२,१४७	५,०१४
अवध	५,२४९	१,१००	२,४७०	७०९	२,१३८
पंजाब	७,६३५	२,८६६	३,८२१	४,५९२	४,२५३
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	७५९	१६२	२९४	६२१	५७७
सिंध	१,३१५	२८८	५०२	४२४	१,०७४
बम्बई	४,३१७	१,११२	२,१४३	१,८४७	२,०५२
मध्य प्रदेश... ...	५,७४४	११०८	२,४०८	३३९	१,०१२
बरार	१,४१८	२६३	४९६	१८६	४४७
मद्रास	११,१६५	३,४५०	५,४७४	१०,७५२	७,४२६
सम्पूर्ण भारत वर्ष बंगाल छोड़कर १९०१	६५,१५२	१६,७५१	२९,८१०	२२,९४८	२८,५५५
योग = १९०१-०२	५२,०७९	१३,१३०	२५,९२२	१८,०२९	२५,१७३

गाड़ियों की संख्या।

छोड़ दिये हैं।

घोड़े और टट्टू	खच्चर और गदहे	ऊंट	हल	बैल गाड़ी
६०	१	—	१४८	३२८
२०	—	—	३६६	२६०
११	—	—	४६६	२८
१६३	२५	—	२,६०४	५२५
३६३	२६६	१३	३,३८६	६२८
१४४	४७	३	१,५५६	१५५
३६०	६२३	२७१	२,१७०	२८८
२७	१२२	४१	२१५	६
८४	१०६	११६	२७५	४८
११३	७१	१	१,०१२	५४७
१०७	२०	—	१,२२४	६०६
३१	२४	—	१७६	२०६
५३	१३५	—	३,८६६	१,२७६
१,५४०	१,४४७	४४७	१७,६०४	४,६५०
१,३०२	१,२४६	३६३	१४,१०४	३,३६१

II

भारत वर्ष के पशुओं की संख्या अन्य देशों के साथ मुका-

और शूकर अन्य देशों की अपेक्षा बहुत थोड़े हैं किन्तु बछड़े

देश	तारीख	घोड़े
यूनाईटड किंगडम ...	१९०७	२,०८९,०००
अरजेनटीना	१९०७	५,४६२,२००
अस्ट्रेलिया	१९०७	१,८४९,५००
अस्ट्रिया	१९००	१,७१६,५००
केनाडा	१९०१	१,५७७,५००
फ्रांस	१९०६	३,१६५,०००
जर्मनी	१९०७	४,३३७,०००
जापान	१९०६	१,४६५,५००
यूनाइटेड स्टेटस अमरीका	१९०७	१६,७४६,६००
भारत वर्ष	१९०९	१५४० ०००

बला करने से अल्प प्रतीत होगी। भारत में घोड़े, भेड़, बकरी मिला कर भैंस बैल और गौवें बहुत प्रतीत होती हैं।

बैल और गाय	भेड़	सूकर	बकरी
११,६३०,१००	३०,०११,८००	३,९६७,२००	...
२५,८४४,८००	७७,५८१,१००	२,८४९,७००	२,७४८,९००
१०,०९२,९००	८६,२९२,८००	७७८,२००	...
९,५११,२००	२,६२१,०००	४,६८२,७००	१,०१९,७००
५,५७६,५००	२,५१०,२००	२,३५३,८००	...
१३,९६८,०००	१७,४९१,४००	७,०४९,०००	१,४५६,९००
२०,५९०,०००	७,६८१,१००	२२,०८०,०००	३,५०९,४००
१,१९०,४००	३,५००	२८४,७००	७४,८००
७२,५३४,०००	५३,२४०,०००	५४,७९४,०००	...
१११७१३०००	२२९४८		२८५५५०००

गौवों और बैलों की अधिकता—व्यौरे II से यह ज्ञात होगा कि गौओं, बैलों, भैंसों की संख्या इस देश में सब देशों से अधिक है—इस के दो कारण हैं:—(i) आर्य्य सन्तान गाय को पवित्र पशु मानती है और वैसे भी आर्य जनता हिंसा के विरुद्ध है-इस लिये निर्बल और वृद्ध पशु जो अन्य देशों में मार कर खा लिये जाते हैं-यहां पर यथा शक्ति जीवित रखे जाते हैं। दूसरा (ii) बैलों और भैंसों को कृषि और भार वाहन में लगाया जाता है। अन्य देशों में यह काम कलाओं के द्वारा किये जाते हैं या घोड़ों से काम लिया जाता है, अतः गौओं और बैलों की संख्या अधिक होनी चाहिये ॥

पशु पालन में उन्नति की आवश्यकता—भारतवर्ष में पशु पालन में बहुत उन्नति की ज़रूरत है जिन प्रान्तों में चावल की फ़सल बहुत होती है वहां पर चावलों के भूसे के अतिरिक्त अन्य चारा बहुत ही कम दिया जाता है और चरागाहें भी वहां कम हैं-इस कारण वहां के पशु अति दुर्बल होते हैं। दक्खन में भी चारे की कमी है। उत्तर भारत में भी जन संख्या के बढ़ने से उत्तम चरागाहों की कमी हो रही है।

गर्मी की ऋतु में पशु प्रायः भूखे रहते हैं, भारत में चारा जमा करने की चिन्ता नहीं की जाती, जंगलों का घास सूख कर ख़राब हो जाता है-उसे काट कर रक्षित रखने के साधन नहीं, खलों के खिलाने के लिये भारती किसानों के पास धन नहीं-इस

लिये दुर्बल पशु दुष्काल में सहस्रों मर जाते हैं। १८६६-१६०० के दुष्काल में गुजरात के कई ज़िलों में ७५ प्रति शतक तक पशु मर गये। भारत में चारा पैदा करने की यह दशा है कि केवल ४८७८००० एकड़ भूमि सारे भारत में चारे के लिये १९११-१२ में लगायी गयी थी (देखो पृष्ठ १५६) इस में से २८६६००० एकड़ भूमि तो केवल पंजाब में थी, शेष २०८२ एकड़ सम्पूर्ण भारत में। अतः पंजाब के पशु अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अच्छे भी हैं। संयुक्त प्रान्त अमेरीका में पशुओं के लिये १५४,७८,७९,३५२ रुपैयों के लग भग का घास ही पैदा किया आता है, इसी कारण वहां के पशु मोटे ताज़े, सुन्दर, खूब काम करने वाले और गौवें खूब दूध देने वाली होती हैं-किन्तु हम पशुओं के लिये क्या कर रहे हैं?

प्रत्येक देश में पालतू पशु देशीय सम्पत्ति का बड़ा भारी अंश हैं, किन्तु भारत में पशु पालन की विद्या के अभाव से यह सम्पत्ति अतीव न्यून हो गयी है। इसका कारण यह है कि हम तो नाम मात्र में गौ को माता मानते हैं-वस्तुतः उसे गन्दगी में रखते, गन्दा पानी पिलाते और भूसा तक नहीं खिलाते।

किन्तु अमेरीका वाले सच्च मुच्च उसके साथ श्री, लक्ष्मी, देवी और माता के समान बर्ताव करते हैं। पक्के मकानों में जहां चूने गच्च फ़र्श होते हैं, नरम २ गदेले बिछे होते हैं, गर्मी और सर्दी की अति को रोकने के पूरे साधन होते हैं वहां गौवों को

रखा जाता है,विद्युत का प्रकाश किया जाता है,स्वच्छ जल दिया जाता, पुष्टि दायक चारा उचित मात्रा में खिलाया जाता है-उनके मल मूत्र को लेने के लिये पियाले लटके रहते हैं या ऐसी पक्की नालियों में जमा होता रहता है जो प्रति दिन धोई जाती हैं। यही कारण है कि अमेरीका में २० सेर प्रति दिन दूध देने वाली गौवों की कमी नहीं।

भारत में गौओं के रखने, खिलाने और सन्तान पैदा कराने का ख्याल ही नहीं किया जाता। इस लिये यहां की गौवें कम दूध देने वाली, पशु मुर्दा, सड़यला और रोगी हैं। आज कल दूध, दही, मक्खन, घी की कमी है। जब दूध देने वाले पशुओं का पोषण न किया जावेगा, जब दूध निकालने के पेशे में शिक्षित सज्जन न होंगे तो अच्छा दूध कैसे पैदा हो सकता है? हर एक नगर में पानी मिले हुए दूध की शिकायत है, यदि वहां साइन्स के कथनानुसार गोशालाएं बनाई जावें और लोगों को पवित्र दूध दिया जावे तो बड़ा लाभ हो सकता है। प्राचीन आर्य्य पशुपालन को वैश्यों के लिये अत्युत्तम कर्म समझते थे, आज भी उसी प्रकार इसे सन्मान की दृष्टि से देखना चाहिये नहीं तो दूध, दही, मक्खन, घी के बिना आर्य्यों का नामो निशान मिट जावेगा। शिक्षित नौ जवानों को यह काम अपने हाथों में लेना चाहिये, और जाति तथा राज्य को निम्न कर्म अवश्य करने चाहियें:—

राज्य के कर्म:—चरागाहों और जंगलों में कम बदला ले कर पशु चराने की आज्ञा देनी चाहिये।

२. नये २ घासों और चारे के पौदों के बीज किसानों को मुफ़्त दिये जावें।

३. सरकारी पशु शालाएं जिन में सन्तान उत्पत्ति के लिये उत्तम २ पशु रक्खे जाते हैं—अधिक होनी चाहियें और सन्तानोत्पात्ति के लिये कई बैल, घोड़े, दुम्बे और बकरे हर तहसील में रखे जावें।

४. पशु रोगों के निवारण करने वाले डाक्टर हर एक तहसील में रखे जावें। पंजाब में तो ऐसा कर दिया गया है किन्तु अन्य प्रान्तों में इस की अधिक आवश्यकता है।

५. प्रान्तिक भाषाओं में पशु पालन की विद्या देने वाले पत्र और पुस्तकें मुफ़्त क्रोड़ों बांटे जावें, जैसे अमैरीका में किया जाता है।

६. नगरों में नागरिक सभाओं को गवालों की गोशालाओं के सम्बन्ध में अमैरीका जैसे नियम बनाने चाहियें।

समाज के कर्त्तव्य

(क) किसानों और गवालों को चारे के पैदा करने की चिन्ता करनी चाहिये।

(ख) पशुओं के रखने, खाने और पिलाने में अधिक सावधानी चाहिये। इस से अधिक और शुद्धतर दूध प्राप्त होगा। खादों के लिये उत्तम मल मूत्र मिलेगा।

(ग) ग्रामों के पशु खुले इधर उधर फिरते रहते हैं और सारी गौवों को ग्राम के बाहिर दिन भर रखते हैं—एक छोटा सा बालक उन के साथ होता है। यह अतीव हानि-कारक रीति है, गौवों की सन्तानोत्पत्ति पर काबू नहीं रहता, बाल विवाह और शंकर वर्ण की खराबियां होती हैं—बच्छे बच्छियां बहुत कम कीमत की पैदा होती हैं, इस विषय पर जितना अधिक ध्यान दिया जावे उतना आर्य्य जाति का धन बढ़ेगा।

(घ) सब प्रकार की गौवों के इकट्ठा होने से एक दूसरे के रोग उन में शीघ्र फैल जाते हैं इस से सैंकड़ों रुपयों की हानि उठानी पड़ती है। अतः अपने २ खेतों में पशुओं को रखना चाहिये और वहीं चारा खिलाना चाहिये।

(ङ) बैलों के सींग उतार देने अभीष्ट हैं ताकि एक दूसरे से लड़ कर परस्पर ज़ख़मी न करें। बच्छे के पैदा होते ही कास्टिक पोटैश लगा देना चाहिये, पशु को कष्ट नहीं होता।

(च) शोक है कि आज कल गोकुलाष्टमी का मेला नहीं मनाया

जाता है—इसे ग्राम २ में पुनर्जीवित करके सुन्दर गौओं और बैलों के लिये पारितोषक देने चाहियें।

राज्य की ओर से भी ज़िलेवार प्रदर्शनियां होनी चाहियें जहां सरकार की ओर से पारितोषक दिये जावें।

(छ) पशुओं के दूध को बढ़ाने और दोहने की विद्याओं का अभ्यास करना चाहिये। हाथों से काम करने में दूध और मक्खन खराब हो जाते हैं। मशीनों से काम करना चाहिये। पवित्रता, नीरोग्यता और दूध की अधिकता तभी होगी।

(ज) कलोवर, कसावा, और अलफ़ाफ़ा बोने से चारे का प्रश्न हल हो सकता है।

किन्तु मीठा कसावा [cassava] भारत के बहुत से स्थानों में स्वभावतः पैदा होता है किन्तु उसे मनुष्यों और पशुओं को खिलाने के लिये खेतों में बोने से बड़ा लाभ हो सकता है जिन स्थानों में १४ से १६ इंच वर्षा वर्ष में होती है वहां भी यह पौदा पैदा होता है। एक सरकारी परीक्षण क्षेत्र के एक एकड़ में १६२४८ पाउण्ड खाने योग्य पदार्थ पैदा हुआ। मुक्ति फौज इस का प्रचार कर रही है। दुष्काल से पीड़ितों को कसावे का आटा 'मुक्ति फौज के आटे' के नाम से दिया जाता है।

इस से भी बढ़ कर अधिक लाभ देने वाला पौदा अलफ़ाफ़ा है, यह भारत के सब स्थानों में पैदा हो सकता है और

जहां थोड़ी वर्षा होती हो, भूमि पोली और रेतली हो वहां तो अच्छी उत्पत्ति हो सकती है। पशुओं के खिलाने के लिये इस के बराबर कोई और चीज़ ही नहीं। चारे का प्रश्न बल पकड़ रहा है। अमेरीका निवासियों ने अलफ़ाफ़ा बोने से इस प्रश्न को हल कर लिया है। भारतीयों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये, राज्य को भी चाहिये कि किसानों को इस के बीज मुफ़त देकर उन्हें बोने पर उद्यत करावे, नहीं तो जंगलों के बन्द होने और चारे के महंगा होने से किसानों को अकथनीय हानि होगी।

४. जल निकालने तथा खेतों को जल देने के तरीकों में उन्नति—इस देश में कूपों, तालाबों और नहरों से जो भूमि जोती जाती है वह कृषि वाली भूमि का केवल छटवां भाग है। किन्तु इन भूमियों पर भी उचित रीति से जल नहीं दिया जाता।

जल निकालने की कलाएं—हरट वाले कूपों में से बैलों के द्वारा जल निकाला जाता है। पश्चिम में पम्पों के द्वारा खेतों में जल पहुंचाया जाता है, कहीं २ इस देश में जल निकालने की कलाएं लगाई हुई हैं, किन्तु वे थोड़ी हैं—उन का प्रयोग बहुत आम होना चाहिये। म० चैटरटन ने अपनी पुस्तक Lift Irrigation में दिखाया है कि बैलों के द्वारा कूपों में से ४००० घन फुट जल एक फुट तक उठाने में एक आना खर्च होता है किन्तु एक

छोटा सा एंजिन लगा कर कूप से जल निकाला जावे तो २ पैसे खर्च होते हैं और यदि बड़ा एंजिन लगाया जावे तो १/६ से १/८ आना केवल खर्च होता है। इतना कम खर्च होते हुए बैलों को दुःख नहीं देना पड़ता और नाहीं सारी रात हरट पर बैठा हुआ मनुष्य मीठी २ निद्रा गंवाता है। बैलों के मर जाने का भय लगा रहता है किन्तु एंजिनों में यह भय भी नहीं। एंजिनों के खरीदने में धन की ज़रूरत होती है सो बैलों पर भी धन लगता है। सरकार से तकावी लेनी चाहिये या ग्रामीन बैंकों से उधार पर रुपैया लेना चाहिये।

पवन हरट—समुद्र तट के आसपास के प्रान्तों में वायु निरन्तर चलती रहती है,उस से कोई उपयोग नहीं लिया जाता। किन्तु पवन हरट लगाने से कूपों से जल निकाल सकते हैं।पाठक! दयालु प्रभु ने इस देश में सब कुछ दिया है, तुम अपनी प्राकृतिक अवस्था को सुधारने की चेष्टा करो, सन्तोष को त्याग दो और पाशविक जीवन से भी घृणा करो, तभी तुम में शक्ति आवेगी, नहीं तो सदैव के लिये राक्षसी दरिद्रता के दास बने रहोगे।

वर्षा-जल का संचय ।

वर्षा का जल नदियों के द्वारा समुद्र में बह जाता है। आवश्यकता है कि जहां २ जल का अभाव हो वहां २ वर्षा ऋतु में बड़ी २ झीलें जल से भर दी जावें ताकि उन से भूमियां सींची जा सकें ।

जहां गर्मी के कारण नालियों में ही जल भाप बन कर उड़ जावे या भूमि के बहुत नरम होने के कारण उस में जज़ब हो जावे, वहां लोहे की नलिकाओं में से पानी खेतों तक पहुंचाया जा सकता है ।

कृत्रिम वर्षा

बून्दा बान्दी से कई फ़सलों को जल दिया जावे तो वे बहुत फलती फूलती हैं और जल भी कम ख़र्च होता है, अतः पश्चिम में खेतों में कृत्रिम तौर पर वर्षा की जाती है ।

बादलों को तोपों से उड़ाना ।

भारत के कई स्थानों में बहुत वर्षा होती है या अकाल वर्षा हो जाती है जैसे पकी हुई फ़सल के समय वर्षा का होना । पश्चिम में तोपों के द्वारा बादलों को उड़ा दिया जाता है । वहां की बहुत सी नागरिक सभाओं का यह काम है कि जब कभी अकाल बादलों का जमघटा हो तो उन्हें अपनी तोपों

से उड़ा दें। हमें यह बात अतीव विचित्र प्रतीत होती है किन्तु फ्रांस, जर्मनी, इटली, आस्ट्रया आदि देशों में ऐसा किया जाता है। यह सभ्यता, बुद्धिमता और उत्साह है जिन के कारण योरुपी लोगों ने प्रकृति की अच्छी बुरी शक्तियों को अपने वश में करलिया है। हततभागे भारत में जहां २४ कोटि नर नारी कृषि में लगे हैं, वहां अचेतन प्रकृति ने उन्हें अपना दास बनाया हुआ है। देश निवासी तो सोये हुए हैं।

किन्तु अकाल मेघों को हटाने के लिये हमारे सभ्य राज्य की ओर से प्रबन्ध होना चाहिये, क्योंकि जाति के हितों का रक्षक राज्य ही है।

सिंचाई के विना खेती (Dry Farming)

सभ्य देशों के निवासियों ने कृत्रिम सिंचाई के बिना ही खुष्क भूमियों को जहां पहिले पौदों की शकल नहीं दीख पड़ती थी-ऐसा हराभरा कर दिया है कि सिंचित भूमियों से उन का भेद करना कठिन हो गया है। जिस भूमि पर बारह इंचों की वर्षा होती हो, वह लहलहाते खेतों में परिवर्तित की जा सकती है। संयुक्त प्रान्त अमैरीका में राज्य ने सिर तोड़ यत्न से भिन्न २ देशों से वे बीज मंगाए हैं जिन की फ़सलें खुष्क इलाकों में पैदा हो

सकती हैं। रूस से दुरूम गेहूं मंगा कर किसानों को दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि १६०१ में तो १००००० बुशल (=६४ पाउण्ड) उत्पत्ति हुई थी, किन्तु १६०६ में २०००००० बुशल के लगभग उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार वहां बीजों के चुनाव और खेतों को कृषि साइन्स के कथनानुसार तय्यार करने से फलों, मेवों और सबज़ियों के सैंकड़ों उद्यान लगा दिये गये हैं।

एक महाशय लिखते हैं कि अमेरीका में जल की कमी से फ़सलें नहीं मर सकतीं क्योंकि किसान लोग वर्षा ऋतु में ही अपने खेतों को ऐसा तय्यार कर लेते हैं कि उन के नीचे काफ़ी जल रहता है किन्तु शिक्षित, धीर, कर्मरत्त, उत्साही कृषक ही ऐसा कर सकते हैं। जब तक भारती कृषक अज्ञान और आलस्य के दलदल में फंसे रहेंगे, तब तक कुछ नहीं हो सकता। इस विषय का अधिक अध्ययन निर्देश में लिखी पुस्तकों में करना चाहिये।

५. यानों में उन्नति—ज्यों २ यानों में उन्नति होती है त्यों २ एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल सस्ता आ सकता है। इस का ठीक २ अनुमान नीचे के ब्यौरे से लगेगा कि कलकत्ता और लण्डन का यद्यपि ७००० मीलों का अन्तर है तथापि सामान का किराया नाम मात्र है:—

प्रति टन=२७$\frac{1}{2}$ मन का किराया

पदार्थ	पाउ०	शि०	पैंस
शोरा	०	१५	०
चावल और गेहूं	०	१७	६
मटर	०	१७	६
अलसी	१	०	०
सन और कपास	१	०	०
खालें	२	०	०
चाए	१	१५	०

यदि पुरानी किशतियों के द्वारा लण्डन का कलकत्ते के साथ व्यापार होता तो जहां उन किशतियों को एक वर्ष यहां आते हुए लगता, वहां साथ ही किराया बहुत ही अधिक होता, इसी प्रकार रेलों के होने से ग्रामों का माल नगरों में और नगरों का माल ग्रामों में बहुत कम किराये से आ वा जा सकता है। अतः यानों के सस्ते और शीघ्र गामी होने से पैदावार करने में कम खर्च होता है।

६. कृषि सम्बन्धी कलाओं का प्रयोग करना—भारत में कृषि के सब काम प्रायः हाथ के औज़ारों से किये जाते हैं किन्तु पश्चिमी देशों में जहां जल सेचन की कलाएं हैं वहां

हल चलाने, सुहागा फेरने, खाद बिखेरने, बीज बोने, खेत को नहलाने, फ़सल काटने, उसे पूलों में बान्धने, उस से दाने निकालने आदि की पृथक २ कलाएं हैं जो घोड़ों से खींची जाती हैं या भाप वा विद्युत की शक्ति से चलती हैं। ऐसी कला भी है जो एक ही समय में हल चलाए, सुहागा फेरे और बीज बो दे। शोक है कि भारत के बड़े २ ज़िमींदार भी इन कलाओं का प्रयोग नहीं करते, मुज़ेरों और छोटे ज़िमीनदारों के पास तो धन नहीं कि इन कलाओं को ख़रीद सकें किन्तु जिन के पास धन है वे भी सोये हुए हैं। छोटे ज़मीनदारों के लिये भी धन की क्या पर्वाह है, राज्य और ग्रामीन बैंकों से उधार पर धन लिया जा सकता है।

पंजाब में कहीं २ फ़सल काटने वाली कला प्रयुक्त की गई है, उस के द्वारा ४० मिन्टों में एक एकड़ फ़सल कट जाती है।

अमरीका और भारत—अमरीका में हाथों से कोई काम नहीं किया जाता क्योंकि हर एक काम के करने के लिये कला है। कलाओं में बर्कत है। हाथों से कृषि करने में जहां रुपैये मिलते हों तो कलाओं से काम करने में मोहरें प्राप्त होती हैं, कलाओं की बर्कत से अमरीका के कृषक अतीव आनन्द का

जीवन व्यतीत करते हैं। यहां अशिक्षा और आलस्य के कारण हमारे किसानों को फूस की झोंपडियों, फटे पुराने वस्त्र, एक बार खाने के लिये भोजन, गन्दे सड़े हुए ग्राम, टूटी हुई चारपाइयां ही नसीब होती हैं। दो देशों की आर्थिक अवस्थाओं में ज़मीन आसमान का भेद है। किन्तु अमेरीका और योरुप निवासियों ने १९ वीं शताब्दी में ही उन्नति की है वैसे बीसवीं शताब्दी में हम भी उन्नति कर सकते हैं। बड़े २ ज़मीनदारों को हर एक किसम की कला प्रयुक्त करने से बहुत लाभ होगा और ग्रामीन बैंकों तथा सहकारी समितियों के द्वारा जिन का वर्णन आगे किया जावेगा—छोटे २ कृषक भी इन कलाओं का प्रयोग कर सकते हैं। सरकार की ओर से हर एक प्रान्त में कई परीक्षण क्षेत्र हैं और एक कृषि का एंजिनियर भी है—कलाओं के सम्बन्ध में इन से मुफ़्त सम्मति कृषकों को मिल सकती है अतः उन से लाभ उठाना चाहिये, हर्ष का अवसर है कि पंजाब में ६९२ और युक्त प्रान्त में ७४४ हल, फ़सल काटने वाले, भूसा पृथक करने वाले और जल निकालने वाले पम्प बेचे गये।

७. फ़सलों का भ्रमण (Rotation of Crops) भारत वर्ष में इस असूल को किसान थोड़ा सा समझते हैं किन्तु इस के अधिक विस्तार की आवश्यकता है, बहुत सी भूमि पर केवल एक फ़सल बोई जाती है देखिये सारे भारत में १९११-१२ में २४९००२००० एकड़ भूमि जोती गयी उस में से केवल ३३०२०००

एकड़ भूमि अर्थात् लग भग आठवां भाग एक से अधिक वार जोती गई। यदि हमारे किसान खेती की उत्तम रीतियों को जानते, तो २१५६८२००० एकड़ भूमि पर एक फ़सल क्यों बोते?

फ़सलों के भ्रमण से हमारा यह अभिप्रायः है कि क फ़सल ने कुछ तत्व (च, छ, ज, झ) भूमि से निकाल लिये हैं अभी कुछ और तत्व (त, थ, द, ध) भूमि में मौजूद हैं अतः ख फ़सल जो त, थ, द, ध तत्वों को लेने वाली है, भूमि पर बो देने से खूब उत्पत्ति होगी और साथ ही वायु, जल, प्रकाश, वर्षा से च, छ, ज, झ तत्व भी उसी भूमि में जमा होते जावेंगे। इस प्रकार भूमि को सारा वर्ष जोता जा सकता है और निरर्थक परती नहीं छोड़ना पड़ता। कुछ वास्तविक उदाहरण लीजियेः।

मकई, नील या सन	(के पश्चात्)	गन्दम
ज्वार	,,	मसूर और छोले
चावल	,,	जौ, मसूर, मटर, अलसी
कपास या शलगम	,,	मकई
कपास या मकई	,,	सेंजी
सेंजी	,,	खरबूज़े
ज्यूट (पात)	,,	चावल
ज्वार, बाजरा, गेहूं	(के साथ २)	दालें, तेल बीज
छोलों	,,	अलसी और कुसुम

भारत में इस रीति का अधिक प्रचार तभी हो सकता है जब

(क) किसानों के पास रुपया अधिक हो।

(ख) मज़दूरे शिक्षित हों।

(ग) गाय बैल बहुत हों या कलाओं का प्रयोग हो।

(घ) भूमियों को उचित खादें दी जावें।

(ङ) किसान कृषिविद्या में निपुण हो, अतः इन की बृद्धि का यत्न करना चाहिये।

८. नये २ पौदों का लगाना—भारतवर्ष में नये पौदे किसानों के अशिक्षित होने के कारण शीघ्र २ नहीं लगाये जाते, कतिपय पौदे हर जगह लगाये गये हैं—आलू, चाह, अंग्रेज़ी फल और सबज़ियां, अरब की खजूरें, अमैरीका की मकई और कपास पंजाब में पैदा हो रहे हैं, किन्तु कपास और मकई पर अभी पूरा ध्यान नहीं दिया गया, यद्यपि ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

निम्न लिखित पदार्थों के उत्पन्न करने में ध्यान दिया जावे तो बहुत लाभ हो सकता है।

१. Rhea	८. रब्बर	१५. अरंड
२. Soy bean	६. काफूर	१६. कपास

३. Prickly Pear	१०. नींबू-घास	१७. तम्बाकू
४. Clover	११. हाथी-घास	१८. मुंगफली
५. Alfafa	१२. अरबी खजूरें	१९. केला तथा अन्य फल
६. Cassava	१३. नारियल	२०. अंग्रेज़ी सबज़ियां
७. Rhamie	१४. औषधियों की बूटियां	२१. चंबेली और गुलाब के फूल

इन के अतिरिक्त रेशम, ऊन, शहद और मोम, उमदा लकड़ी, रंग, लाख और तेल देने वाले वृक्षों की उत्पत्ति की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इन में से कोटिशः रुपये कमाये जा सकते हैं।

प्रत्येक के सम्बन्ध में पुस्तकें पढ़ कर और क्रियात्यक ज्ञान लेकर शिक्षित नव युवकों को धनोत्पत्ति में लग जाना चाहिये। साहसी एन्ट्रैंस पास नौजवान भी सैंकड़ों रुपये कमा सकते हैं: देखिये तीन चार पदार्थों का आप को अन्दाज़ा लगा कर दिखाते हैं।

अरंड का पौदा आज कल बहुत लाभ दायक है क्योंकि अच्छे मोटे बीज़ बोए जावें तो हर एक वृक्ष से एक साल में एक रुपैया का बीज उत्तरता है। एक बीघे में ५०० वृक्ष लग सकते

हैं। पंजाब, सिन्ध, युक्तप्रान्त में इस पौदे का घर समझना चाहिये किन्तु शोक है कि इस के पैदा करने में सावधानी से काम नहीं लिया जाता।

तम्बाकू की फ़सल से एक एकड़ में ६० रुपैया का नैट लाभ का अनुमान लगाया गया है किन्तु सावधानी से यदि उस की कृषि की जावे तो १०० रु० प्रति एकड़ लाभ साधारण बात है। यह तो ४ मासों की मुफ़त फ़सल है: मार्च में गेहूं काट कर खेतों में तम्बाकू का बीज बो दिया और जून में काट लिया, और फिर सावनी बो दी। कृषि की विद्या से ही किसानों को लाभ हो सकता है क्योंकि ऐसी अवस्था में भूमियों को उचित खादें देना आवश्यक है।

केला।

आज कल सब फलों में से केले की मांग बहुत है। इस के उगाने में कोई यत्न भी नहीं करना पड़ता। और इस के बराबर लाभ दायक शायद ही कोई फसल हो, ऐसा होते हुए किसान काफ़ी उत्पत्ति नहीं करते। $१\frac{१}{२}$ बीघे भूमि पर १२ फुट की दूरी पर एक वृत्त लगाते हुए ३८४ वृत्त लग सकते हैं- सारे वर्ष में एक वर्ष से कम से कम १ रुपैया के केले भी तोड़े जावें तो ३८४ रु०वार्षिक आय हुई और उस पर बहुत

अधिकतम खर्च ८४ रुपैये हो सकता है। इस प्रकार २०० रुपैया प्रति बीघा लाभ होता है। जिस नौजवान के पास छैः बीघे भूमि हो वह सौ रुपैया मासिक कमा सकता है और यह भी कृषि का किसी प्रकार का काम न करते हुए! रात दिन घर में मौज करता रहे वा जाति की सेवा में लगा रहे। हाय! हमारे पठित नवयुवक कब जागेंगे ?

७. राष्ट्रिक उन्नति, मानसिक उन्नति, जातीय उन्नति, शिक्षा सम्बन्धी उन्नति, शिल्प, पूंजी और मज़दूरों के हुनर की उन्नति और प्रायः सब ही प्रकार की उन्नति कृषि की उन्नति को अधिक करने वाली होती है। इस का सविस्तर वर्णन किसी अगले अध्याय में किया जावेगा किन्तु यहां पर यह प्रश्न उठता है कि भूमि की पैदावार को हम यथेच्छा बढ़ा सकते हैं या कोई ऐसी सीमा वा अवधि है जहां तक पहुंच कर आगे पैदावार नहीं बढ़ सकती ? इस प्रश्न का उत्तर अगले अध्याय में दिया जावेगा।

प्रश्न

१. भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ाने वाले साधनों की गणना करो।

२. गहरी खेती भारत में क्यों नहीं की जाती ? उस के क्या लाभ हो सकते हैं ?

३. भारत में पशु पालन की त्रुटियां बतावो, उन्हें कैसे सुधारोगे ?

४. पशु पालन में उन्नति करने से भारत को क्या लाभ होंगे ?

५. कौन से नये चारे पशुओं के लिये उपयोगी हैं ?

६. जल निकालने की नई २ विधियों का वर्णन करो।

७. थानों की उन्नति से कृषि को क्या लाभ होते हैं ?

८. भारत में कलाओं का प्रयोग क्यों नहीं किया जाता ? जाति और राज्य को उन के विस्तार के क्या साधन प्रयुक्त करने चाहियें ?

९. फसलों के भ्रमण के लाभ बताओ और भ्रमण के अर्थ उदाहरणों सहित समझा दो।

१०- भारत वर्ष में किन २ नये पदार्थों की उत्पत्ति करने से अतीव लाभ हो सकता है ?

J. C. Ghose.—*Indian Industrial Guide.*

W. Macdonald.—*Dry-Farming : Its principles and practice.*

Widste.—*Dry Farming : A system of Agriculture for countries under the Low Rainfall.*

L. Wilcox.—*Irrigation Farming.*

J. C. Willis.—*Agriculture in the Tropics.*

H. A. A. Nichols.—*Text-Book of Tropical Agriculture.*

W. H. Johnson.—*Elementary Tropical Agriculture*

F. H. King.—*Irrigation and Drainage.*

Wright.—*Standard Cyclopaedia of Modern Agriculture and Rural Economy.*

J. W. Leather.—*Water Requirements of the crops in India.*

J. A, Voelcker.—*Report on the Improvement of Indian Agriculture.*

J. Mollison.—*Text-Book on Indian Agriculture.*

Govt. Report.—*Progress of Agriculture in India 1907-09 Reports of the Indian Industrial conference*

Punjab Govt.—*Agricultural year Book.*

Provincial Govt.—*Annual Reports of the Departments of Agriculture.*

अध्याय ७

कृषि में क्रमागत ह्रास नियम

उत्पत्ति की बृद्धि की सीमा है—ज़मीनों की पैदावार यथेच्छा नहीं बढ़ सकती। यदि कोई किसान एक बीघे पर दस मन गेहूं पैदा करता हो, तो उस से पूछिये कि क्या तुम पचास मन गन्दम इस खेत पर पैदा कर सकते हो? स्यात् वह किसान आप को पागल समझ कर उत्तर नहीं देगा क्योंकि कभी सम्भव नहीं कि एक खेत की पांच गुणा पैदावार बढ़ जावे। अब उस से पूछिये कि क्या तुम १५ मन गेहूं पैदा कर सकते हो? स्यात् भारती किसान तो यह उत्तर दे कि 'फ़सल का पैदा करना परमात्मा के हाथ में है, मैं तुम्हें क्या कह सकता हूं कि १५ मन गेहूं पैदा होंगे या नहीं'। किन्तु एक योरुपी किसान झट उत्तर देगा कि "हां, मैं १५ मन गेहूं पैदा कर सकता हूं यदि मुझे ज़मीन को गहरा खोदने, उस पर उचित खाद डालने और ठीक तौर पर खेती करने दिया जावे'। कोई बुद्धिमान् कृषक शायद ५० मन गेहूं पैदा कर देने का दावा करे किन्तु सौ मन गेहूं पैदा करने का दावा कदापि नहीं करेगा। क्योंकि पैदावार की मात्रा भूमि की उत्पादक शक्ति पर आश्रित है। माना कि खादों के द्वारा

यह शक्ति बढ़ाई जा सकती है किन्तु प्रत्येक पौदे को स्थान, वायु, प्रकाश, उष्णता भी तो चाहियें। यदि यह अपर्याप्त हों तो फ़सल कैसे होगी? क्या कभी आप ने नहीं देखा कि जहां खेतों में घने पौदे लगे हों, उन में से कईयों को किसान उखेड़ देता है। क्यों? इस कारण कि इतने घने पौदों को वहां पर्याप्त भोजन नहीं मिल सकता।

साथ ही विचारिये कि यदि अधिक पैदावार करने में आमदनी की अपेक्षा खर्च अधिक हो जावे, तो ऐसी पैदावार का क्या लाभ हुआ? हर एक किसान हानि लाभ का विचार करके पैदावार करता है, अतः जिस फ़सल के पैदा करने में आमदनी से खर्च अधिक हो, वह पैदा नहीं की जावेगी। अतः निम्न परिणाम निकले किः—

(क) भूमि की उत्पादक शक्ति परिमित है, अर्थात एक खेत पर परिमित उत्पत्ति होनी चाहिये, अपरिमित्त, असीम उपज यथेच्छा नहीं हो सकती। यदि यह सम्भव होता तो एक बीघा भूमि पर सारे भारत वर्ष के लिये गेहूं पैदा हो सकता।

(ख) भूमि की उत्पत्ति खादों, कलाओं आदि के द्वारा बढ़ाई जा सकती है किन्तु यदि ऐसा करने में आमदनी से

अधिक खर्च हो, तो ऐसी अधिक उत्पत्ति करना मूर्खता है।

(ग) अतः किसान वहीं तक अधिक २ पूंजी और श्रम लगाता है, जहां तक खर्च से अधिक आमदनी हो, या कम से कम खर्च और आमदनी बराबर हों उसे अपने घर से कुछ न देना पड़े।

यदि उक्त व्याप्त सिद्धान्तों को सर्व देशों की कृषि पर घटाएं, तो पता लगता है कि उत्तम भूमियों पर भी अपारिमित उत्पत्ति नहीं हो सकती, कि जब २ अधिक पूंजी और श्रम बढ़ाया गया है, तब २ प्रायः अधिक उत्पत्ति की प्राप्ति नहीं हुई। इसी घटना का नाम क्रमागत ह्रास नियम है।

• इसी नियम के आधीन होने के कारण हर एक देश में ऐसी भूमियां हैं जिन पर कृषि करने में आमदनी की अपेक्षा खर्च अधिक होता है—उन पर कृषि नहीं की जाती और उन्हें कृषि की सीमा से नीचे की भूमियां कहते हैं। ऐसी भूमियां भी होती हैं जिन पर आमदनी और खर्च बराबर होते हैं—उन का नाम कृषि की सीमा वाली भूमियां है। फिर ऐसी ज़मीनें भी होती हैं जिन पर खर्च की अपेक्षा अधिक आमदनी होती है—उन्हें कृषि की सीमा से ऊपर वाली भूमियां कहते हैं॥

अतः सिद्ध हुआ कि क्रमागत ह्रास नियम लगने के कारण भूमि पर यथेच्छा उत्पत्ति नहीं हो सकती, कि कृषक वहीं तक अधिक २ पूंजी और श्रम लगाता है जहां तक उसे लाभ की आशा हो, कि प्रायः इस अधिक धन का बदला कम अनुपात से मिलता है।

इसी की अब साविस्तर व्याख्या की जाती है।

१. क्रमागत ह्रास नियम का व्याप्त लक्षणः—

जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम किसी एक वस्तु के उत्पन्न करने में बढ़ाया जाय, उत्पत्ति की विधियों के समान रहते हुए यदि उस अनुपात से उत्पत्ति न बढ़े, तो इस घटना को क्रमागत ह्रास नियम कहते हैं; यदि उस अनुपात से बढ़े तो क्रमागत सम नियम और यदि उस अनुपात से अधिक बढ़े तो क्रमागत बृद्धि नियम कहते हैं॥

२. कृषि में क्रमागत ह्रास नियम का लक्षणः—जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम भूमि के किसी भाग पर बढ़ाया जाता है—उत्पत्ति की विधियों में भेद न होते हुए उस अनुपात से उत्पत्ति प्रायः नहीं बढ़ती। इसी घटना का नाम क्रमागत ह्रास

नियम है। प्रोफेसरमाशल के शब्दों में इसी नियम को इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं :

४. यद्यपि कृषि में उत्पत्ति की विधियों की उन्नति के कारण जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम लगाया जावेगा, उस अनुपात से अधिक उत्पत्ति होगी, और यद्यपि प्रायः जो पूंजी और परिश्रम भूमि के किसी भाग पर लगाया गया है वह इतना अपर्य्याप्त हो सकता है कि उस भूमि की पूर्ण शक्तियों का विकास न कर सका हो, तब उत्पत्ति की अवस्थाओं वा विधियों के समान रहते हुए भी यदि कुछ पूंजी और परिश्रम अधिक लगाया जावेगा तो उसके अनुपात से उत्पत्ति अधिक बढ़ जावेगी; तथापि यह दोनों अवस्थाएं पुराने देशों में बहुत थोड़ी मिलती हैं। और जब तक उपर्य्युक्त दोनों अवस्थाएं उपस्थित न हों, तब तक जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम बढ़ाया जावेगा, उस अनुपात से उत्पत्ति न होगी और भविष्यत में कृषि की विधियों की कितनी भी उन्नति क्यों न हो, भूमि में पूंजी और श्रम की निरन्तर वृद्धि जिस अनुपात से की जावेगी उस अनुपात से कदापि उत्पत्ति न हो सकेगी—और क्रमागत ह्रास नियम लग जावेगा।

५. गणित की सहायता से क्रमागत ह्रास नियम तथा क्रमागत बृद्धि वा सम नियमों को यूं स्पष्ट करते हैं:—

पूंजि तथा श्रम की मात्रा	उत्पत्ति की मात्रा		
	सम नियम	ह्रास नियम	बृद्धि नियम
१ क	१ ख	१ ख	१ ख
२ क	२ ख	१½ ख	२½ ख
३ क	३ ख	२ ख	४½ ख
५ क	५ ख	३ ख	९ ख

वास्तविक कृषि में उक्त तीनों नियम समयान्तर में यूं लगते हैं :—

१ क	१ ख	समनियम
२ क	१½ ख	ह्रास नियम
३ क	६/४ ख	समनियम
५ क	९ ख	बृद्धि नियम

※ ६. उपर्युक्त उदाहरण से हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कृषिजन्य पदार्थों की उत्पत्ति में वस्तुतः ह्रास नियम

लगना आवश्यक नहीं। ह्रास नियम से हमारा केवल यह अभिप्राय है कि उन्नति के प्रत्येक पद में एक अवधि होती है जिस से बढ़ कर यदि श्रम और पूंजी भूमी के किसी टुकड़े पर लगाई जावे, तो अनुपात से कम उत्पत्ति होगी।

परन्तु वह अवधि सदा अवस्थाओं की उन्नति के कारण परिवर्तित होती रहती है—और यह कहना कि हम अवधि से पार हो गये हैं यदि असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन तो है। फिर यदि किसी समय कृषिजन्य एक पदार्थ की उत्पत्ति में क्रमागत ह्रास नियम लग जावे, तो अन्य सब कृषि जन्य तथा शिल्पजन्य पदार्थों में भी ह्रास नियम लग जावेगा—यह विचार असत्य है।

इस नियम के लक्षण में हम कहते हैं कि "जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम बढ़ाये जावें, अब इन शब्दों में यह आवश्यक नहीं कि कल्पित परिश्रम सदा समान कल्पित पूंजी से सहायता लेगा। जब अधिक पूंजी पूर्ववत् श्रम को सहायता देवे और पूंजी का बदला कम हो रहा हो, तो श्रम का बदला उतना भी रह सकता है और उस से अधिक भी हो सकता है।

७. भूमि की उपजाऊ शक्ति स्थिर नहीं है—उस में लचक पाई जाती है। अतः यदि किसी प्रकार का भेद उत्पत्ति के

साधना में न आवे,तो भी क्रमागत ह्रास नियम का निरन्तर लगना आवश्यक नहीं है। पूर्व अध्यायों में कृषि की उन्नति के नाना प्रकार के जो साधन हम नेबताये हैं। यदि उन में निरन्तर उन्नति होती जावे तो क्रमागत ह्रास नियम भूमि पर कदापि नहीं लग सकता–यही बात प्रो॰ मार्शल ने क्रमागत ह्रास नियम के लक्षण में भी कही है। उस के यह शब्द हैं: 'यद्यपि कृषि में उत्पात्ति की विधियों की उन्नति के कारण जिस अनुपात से पूंजी और परिश्रम लगाया जावेगा, उस अनुपात से अधिक उत्पत्ति होगी'। भारतवर्ष में सैंकड़ों वर्षों से कोई उन्नति कृषि की विधियों में नहीं हुई, इस लिये इस देश की पुरानी भूमियों में अवश्यमेव उत्तरोत्तर कम उत्पत्ति होती गयी होगी, अर्थात् यदि अकबर के समय में एक बीघे पर १० मन गेहूं पैदा होता था तो अब ५ वा ६ मन गेहूं पैदा हो रहा होगा। सभ्य देशों में उन्नति के कारण एक बीघे की उत्पत्ति बढ़ती गयी है किन्तु भारत वर्ष में उन्नति के अभाव और क्रमागत ह्रास नियम के कारण एक बीघे की उत्पत्ति कम हो रही होगी। भारत वर्ष दिन प्रति दिन निर्धन होरहा होगा। हमारा विचार है कि यदि पदार्थों की कीमतें भारत में न बढ़तीं,तो कृषि करना लोगों के लिये असम्भव होता।

यदि भारतवासी धनी होना चाहते हों तो उन्हें उन्नत विधियों से कृषि करनी चाहिये, तभी खेतों की उपज तिगुनी चौगुनी हो सकती है जैसा कि योरुप में अब हो गयी है। इसी से उन का धन तिगुना चौगुना हो सकता है। किन्तु यदि वे सोये रहेंगे तो प्रति दिन उन की सम्पत्ति, यश और शक्ति घटती जावेंगी।

८. भूमि की हत्या।

पाचवें अध्याय में कहा गया था कि भूमि में उत्पादक शक्ति का कोष है, कि कोष, खज़ाने और भण्डार तभी तक भरपूर रहते हैं जब तक जितना निकाला जावे उतना या उससे भी अधिक उन में डाला जावे। नहीं तो खज़ाने भी शीघ्र खाली होजाते हैं। गेहूं, मकई, चावल, सबाज़ियां, फल, घास आदि सब पदार्थ भूमि की शक्ति को निकाल लेते हैं यदि यह शक्ति भिन्न २ प्रकार की खादों से वापिस न डाली जावे तो भूमि क्षीण, निर्बल होती जाती है और समय आ सकता है जब कि उसकी सत्या, शक्ति, प्राण निकल जावे। यही भूमि की हत्या है। आजकल बड़ी निर्दयता वा अज्ञानता और अदूरदर्शता से भारत वर्ष में भूमि की हत्या की जा रही है।

प्रो० थाम्सन साहब ने सत्य कहा है कि जब तक खेतों की उपज उन के निकट ही प्रयुक्त की जावे तब तक किसान मलमूत्र

और अवशिष्ट पदार्थों को खाद के तौर पर खेतों में डाल कर भूमि की शक्ति को रक्षित रख सकता है। किन्तु जब खेतों की उपज प्रयुक्त होने के लिये दूर देशों में चली जावे तो कृषक भूमि की शक्ति को रक्षित रखने में अशक्त हो जाता है। सर्वोत्तम भूमि भी चिरकाल तक ऐसी निःसारता सहन नहीं कर सकती, यदि उसके मालिक भूमि के स्वभाविक धन को दूरस्थ देशों में भेजने पर तुले हुए हों'।

स्पष्ट है कि जब तक भारतवर्ष में रेलें चली थीं तब तक प्रत्येक ग्राम में जो कुछ पैदा होता था वह वहीं खाया जाता था और मैला कूड़ा किर्किट खेतों में डाल दिया जाता है। किन्तु रेलों और जहाज़ों के हो जाने से भारतवर्ष की भौमिक उपज समुद्र पार चली जा रही है। हमारी भूमियों की शक्तियों पर योरुप वाले पल रहे हैं किन्तु भारतवासी अपनी भूमियों की हत्या निर्दयता वा अज्ञान से करते जाते हैं। देखिये एक वर्ष में कितने पदार्थ विदेश में गये।

१६१०--११ में निर्गत भौमिक पदार्थों की कीमत

पदार्थ	प्राउण्ड्ज़
कपास	२४०३७०५१
चावल	१५४८७७७०

गेहूं	...	...	८६३८८१८
तेल-बीज	...	...	१६७४८९६३
सन	...	...	१०३२६६४६
योग	...	...	७५२३१२५७

अर्थात् एक वर्ष में लगभग ११३ क्रोड़ रुपैयों के पांच पदार्थ गये, इनके अतिरिक्त कई क्रोड़ रुपैयों की दालें, जवार, बाजरा, छोले, फल, सबज़ियां आदि विदेश जाती हैं। याद रहे कि—

१००० पाउण्ड चावलों में				१००० पा० चावल-भूसे में
नत्रजन	...१२ पा०	...	...	७.५ पा०
पोटैश	...१.६ पा०	...	...	४.२५ पा०
फ़ास्फ़ोरिक एसिड	३.२ पा०	...	...	२.५ पा०

होते हैं। इसी प्रकार एक टन (=२७$\frac{3}{8}$ मन) गुड़ देने वाले ईख भूमि से निम्न पदार्थ निकालते हैं :

नत्रजन	...	...	४०.५	पाउण्डज़
पोटैश	...	...	१.१४	,,
फ़ास्फ़ोरिक एसिड		...	१३.६	,,
चूना	...	...	३५	,,

हम ने एक ही वर्ष में ४७६६६७३१×११२ पाउण्ड्ज़ चावल भेज कर अपनी भूमि को कितना निःसार किया होगा ?

एवम् अन्य पदार्थों को दृष्टि गोचर करते हुए पाठक स्वयम् अनुमान कर लें कि कितने मन भौमिक शक्ति प्रति वर्ष हम विदेशियों को सौंप रहे हैं। यदि यह भूमि की अपारिमित्त हत्या नहीं तो क्या है? याद रखना चाहिये कि आगामी सन्ततियों की ओर हमारी ज़िम्मेवारी है यदि उन के लिये चूसी हुई नारंगी की तरह हम ज़मीनें छोड़ जावें तो वे कैसे जीवित रहेंगी?

अतः भारतवासियों को साधन ढूंढने चाहियें कि जिन से कच्चा माल देश में रहे और विदेश में न जाने पावे।

प्रश्न।

१. क्या भौमिक उत्पत्ति की वृद्धि की कोई सीमा है?

२. क्रमागत ह्रास नियम का लगाव सब देशों में होता है—इस के प्रमाण दो।

३. सिद्ध करो कि ह्रास नियम को दूर किया जा सकता है।

४. ह्रास नियम के व्याप्त और कृषि सम्बन्धी लक्षण दो। उन्हें उदाहरणों सहित समझा दो।

५. भूमि की हत्या का तुम क्या अभिप्राय समझते हो?

६. भारत वर्ष से कितने के खाद्य पदार्थ पिछले १० वर्षों में विदेश गये

७. हिसाब लगावो कि भूमि की कितनी उत्पादक शक्ति उनके साथ चली गयी।

८. रेलों के चलने से कृषकों को क्या हानि लाभ हुए हैं?

अध्याय ८

क्रमागत ह्रास नियम

खानों के खोदने में क्रमागत ह्रास नियम

खनिज पदार्थों के निकालने में भी क्रमागत ह्रास नियम लगता है क्योंकि

(क) नीचे जाने से प्रायः पदार्थ थोड़ा मिलता है और अधिक हुनर वाले मज़दूरों की आवश्यकता होती है।

(ख) ज्यों २ नीचे जावें त्यों २ खान के मुंह तक पदार्थ लाने में अधिक श्रम और पूंजी दर्कार होती है। पदार्थ उठाने और खोदने के लिये अधिक उत्तम कलाओं की भी आवश्यकता होती है।

(ग) प्रायः खान को नीचे २ खोदते हुए जल निकल आता है, अतः जल निकालने वाले पम्पों पर खर्च करना पड़ता है॥

(घ) खानों के अन्दर बहुत गहराई में काम करने वालों को शुद्ध वायु नहीं मिल सकती वहां कलाओं के द्वारा शुद्ध वायु ले जानी पड़ती है और गन्दी वायु बाहिर निकालनी होती है।

(ङ) ज्यों २ नीचे खोदें त्यों २ छतों को सम्भालने के लिये लकड़ी और लोहे के स्तून अधिक २ लगाने पड़ते हैं।

(च) काम करने वाले नर नारियों को नीचे ऊपर ले जाने में उठाने वाले लिफ़्ट लगाने पड़ते हैं ॥

भारत वर्ष में बहुत सी खानें ऊपर २ से खोद कर छोड़ दी गई थीं क्योंकि गहरा खोदने के सामान लोगों के पास न थे और खर्च की अधिकता के कारण हानि होती थी।

२. कृषि और खानों में ह्रास नियम के लगाव में भेद है–भूमि में जब ह्रास नियम लग जाय तब पूर्व तीन अध्यायों में बताए हुए साधनों से वह हटाया जा सका है किन्तु खानों में ऐसा नहीं हो सकता। जब एक बार खानों से कोइला, लोहा, सोना, चान्दी और संगमरमर आदि निकाल लिया जावे तो फिर हमारे पास कोई विधि नहीं कि वे धातुएं या पत्थर फिर पैदा कर सकें। जितनी खानें हम एकवार खोद लें वे सर्वदा के लिये निरर्थक हो जाती हैं–उन से हम या हमारी सन्तानें लाभ नहीं उठा सकतीं। यदि कोई पुरूष अपनी पूंजी में से थोड़ा २ खाता जाय तो एक दिन उस पूंजी की समाप्ति हो जाती है। किन्तु जो पुरूष अपनी पूंजी के ब्याज पर गुज़ारा करता हो, उस का मूल धन सदा बना रहता है। भूमि पर पैदावार करना ब्याज पर निर्वाह करने के बराबर है और खानों से पैदावार निकालना मूल धन को निरन्तर उपयोग करने के तुल्य है। बुद्धिमान्

पुरुष सदैव यत्न करते हैं कि यदि मूल धन व्यय करना हो तो थोड़ा २ किया जाये और उस से लाभ भी अधिक उठाया जाय।

३. खानों की रक्षा—उक्त कारण से सभ्य देशों में सदैव यह चर्चा रहती है कि खानों को रक्षित रखने के कौनसे साधन हैं। किन्तु भारतवर्ष में खानों की रक्षा का प्रश्न नहीं उठाया जाता। सोना, ताम्बा, मांगल, कोइला, चकमक, संगमरमर, मट्टी का तेल, आदि खनिज पदार्थों के निकालने का सब काम अंगरेज़ों के हाथों में है। बे हुनर (अकुशल) भारतीय श्रमी केवल मज़दूरी लेते हैं और कोई लाभ हमें अपनी खानों से नहीं हो रहा। उक्त पदार्थ हमारे देश से बाहिर चले जा रहे हैं और हमारी खानें ख़ाली होती जाती हैं।

"As far as our mineral resources are concerned, there is unlimited room for profitable enterprise: the country is sufficiently endowed by Nature, not only to meet its own requirements, but to take advantage of its central position for competing with others in the Indian Ocean markets; metallurgical and mechanical workshops as attractive to our high-caste students as the class-rooms for law and literature now are, the cry of Swadeshi, no matter how worthy the spirit it embodies, will remain but an empty word." *T. H. Holland, Director-General of the Geological Survey of India.*

"Were India wholly isolated from the rest of the world, or its mineral productions protected from

competition, there can not be the least doubt that she would be able, from within her own boundaries, to supply nearly all the requirements of a highly civilized community." *Ball's "Economic Geology of India."*

"**India the mine of wealth** !! It has wonderful natural resources, whether agricultural, mineral, or industrial, but they are to a great extent dormant. It has coal of an excellent quality: it has fine petroleum, large quantities of timber and charcoal: it has iron, of a purity that would make an English iron-Master's mouth water, spread wholesale over the country in most places to be had by light quarrying over the surface: it has chrome iron capable of making the finest Damascus blades, manganiferous ore, splendid hematites in profusion. It has gold, silver, antimony, tin, copper, plumbago, lime, kaolin, gypsum, precious stones, asbestos. "**India in poverty ! Midas starving amid heaps of gold does not afford a greater paradox ; yet here, we have India, Midas-like, starving in the midst of untold wealth** !!"

हालैण्ड महाशय ने सच कहा है कि खनिज के काम में लाभकारी उद्योग का अपरिमित स्थान है। प्रकृति ने इस देश को बहुत कुछ दिया है। वे पदार्थ केवल इस देश के लिये ही काफ़ी नहीं बल्कि हिन्द सागर के सब देशों में उन्हें बेचते हुए वह बहुत लाभ प्राप्त कर सकता है। किन्तु जब तक ऐसे रसायनिक, यान्त्रिक, खनिक वर्कशाप हम न खोलें जो उच्च जाति के विद्यार्थियों को अपने अन्दर ऐसे बल से खींचें जैसे बल से वकालत और साधारण ज्ञान के कालिज खींचते हैं, तब तक सुदेशी की

घोषणा शाब्दिक रहेगी'।

हमारी सरकार को भी इन शब्दों की ओर ध्यान देना चाहिये क्योंकि रसायनिक, यान्त्रिक और खनिक विद्यालय तथा वर्कशाप उस ने ही खोलने हैं। अभी तक हमारी सोई हुई जाति स्वयम् कुछ नहीं कर सकती, अतः राज्य की सहायता की परमावश्यकता है।

बाल साहब का कथन है कि "यदि संसार के अन्य देशों से भारत को जुदा किया जा सकता या उसकी धात्विक उपज को विदेशी मुकाबले से बचाया जा सकता तो निस्सन्देह भारत इस योग्य है कि एक अतीव सभ्य जाति की सर्व आवश्यकताओं को वह अपने अन्दर से ही पूर्ण कर सकता"।

किन्तु शोक है कि जहां १९११-१२ में १०४७८३७ पाउण्ड्ज़ का लोह सामान आया था वहां साथ ही भिन्न धातुयें ९९५७८५८ पाउण्ड्ज़ की आयी थीं—अर्थात् एक वर्ष में विदेश से ३०,०३,८५,४२५ = तीस क्रोड़ रुपैयों का धात्विक सामान भारत में आया। हर साल बाहिर से आने वाला लोह सामान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है जैसे

१८९९—१९००............१३३४१४५०३पा०

१९०६— ०७............२६८६४९६०५पा०

महाशय बी० बाल के अनुसार यह सारा सामान यहीं पैदा किया जा सकता था यदि विदेशों के मुकाबले से इस देश

को बचाया जाता या हालैण्ड के विचारानुसार यदि यहां सर्व प्रकार के विद्यालय खोले जाते ।

महाशय मालेसवर्थ का कथन अतीव उपयोगी हैः—

भारत भूमि धन की खान है !!

इसमें चित्र विचित्र के खेती, खनिज और उद्योग के लिये प्राकृतिक सामान हैं ।

किन्तु अधिकतर वे गुप्त पड़े हैं। भारत में अतीव उत्तम कोयला हैः उमदा मट्टी का तेल है, लकड़ी और कोयले बहुतायत से हैं। इस में लोहा ऐसी शुद्धता का मिलता है कि उसे देख कर इंगलैण्ड के लोहकारख़ाने वालों के मुंहों में पानी आ जावे और ऐसा लोहा सारे देश में स्थान २ पर पाया जाता है और आसानी से खोदा जा सकता हैः इस में क्रोम (chrome) लोह ऐसा उत्तम है कि दमश्क की तलवारें बन सकती हैं, मांगल, ऐल्यूमीनियम, चकमक भी बहुत सा मिलता है। साथ ही उस में सोना, चान्दी, सुरमा, टीन, ताम्बा, चूना, हरसोंठ, और रत्नों की कमी नहीं ।”

जिस देश का लोह दमश्क नगर की तलवारें बनाने में काम आता था जिस के कारीगरों ने ४०० ईस्वी में देहली की कुतुब मीनार जैसी लाठ बनाई जिसका कोफ़्त गारी का काम सारे संसार में प्रसिद्ध था—जिसमें सरजरी के १५० लोह बनाये जाते थे जिन में से एक ऐसा यन्त्र भी होता था कि वह बाल को खड़े बल काट

दें, उस में सस्ते विदेशी सामान ने लोह के कार्य्य को बन्द करा दिया है। "The Native iron smelting industry has been practically stamped out by cheap imported iron and steel within range of the railways" Imp. Gaz. 1907, III, 145.

यही कारण है कि जहां १९०१ में १९२१८०४ नरनारी धातुवों के शिल्प व्यवसाय में लगे थे वहां १९११ में १७९४७६३ लगे थे अर्थात् १०० के स्थान पर ९३.४ आदमी इन व्यवसायों में लगे हैं। इस सभ्यता की वृद्धि में यह व्यवसाय बढ़ने चाहियें थे किन्तु भारत के दुर्भाग्य से इस प्रकार अवनति हो रही है!

यही कारण है कि भारत निर्धनता में फंसा है। वस्तुतः माईडस सोने के ढेरों में बैठा हुआ भी इतना विचित्र प्रतीत नहीं होता। किन्तु हाय! हमारी आंखों के सामने ही पुण्य भूमि भारत माईडस की न्याईं अपरिमित धन के होते हुए भी भूखी मर रही है!! यदि आर्यावर्त को रसातल से निकालना हो और विदेश में जाते हुए क्रोड़ों रुपयों की बचत करनी हो तो उस की खानों को स्वयम् खोदने का प्रबन्ध करना चाहिये, तदर्थ पूंजी एकत्रित करनी चाहिये, खनन विद्या का अध्यन करना चाहिये, तभी भारत का कल्याण हो सकता है।

१९०४ तक खनिज पदार्थों के निकालने का काम जो सरकार ने युरूपी लोगों और भारत वासियों को दिया है उस का

ब्यौरा नीचे दिया जाता है। उससे ज्ञात होगा कि खानें अधिकतर युरुपियों के हाथ में हैं :—

	योरूपी लोग	भारतवासी
१८९५ से, १८९९ तक	२३,७७२.४० एकड़	६८८२.१३ एकड़
१९००	१५४९५.१० ,,	३९२.७७ ,,
१९०१	१५०५७.८६ ,,	२८११.८१ ,,
१९०२	६११४.४४ ,,	२०६७.९८ ,,
१९०३	७८८३.६० ,,	३१.०० ,,

५. मकानों के बनाने में ह्रास नियम—ज्यों २ अधिक मन्ज़लों वाला एक मकान बनावें, त्यों २ ह्रास नियम का लगाव होता है। अमेरीका में चालीस मन्ज़ले महल हैं—उनके निर्माण का उदाहरण लेने से ह्रास नियम का लगाव समझ में आ जावेगा।

(१) एक महल ज्यों २ ऊपर जावे त्यों २ ईंटें, लोहा, लकड़ी, गाड़ा, चूना आदि सामान अधिक २ श्रम से ऊपर ले जाना पड़ता है, अर्थात् दूसरी मन्ज़िल के बनाने में व्यय अधिक होता है।

(२) यदि बहु मन्ज़िला मकान बनाना हो तो नींव बहुत गहरी खोदनी पड़ेगी, दीवारें अधिक मोटी और मज़बूत बनानी होंगी, छत तथा ऊपर की सब मन्ज़िलों का भार सहने के लिये बड़े मोटे और मज़बूत स्तूनादि बनाने होंगे।

(३) यदि एक नगर में सब मकान ही चालीस मान्ज़िले बनने लगें और सब साथ २ हों, तो उन में शुद्ध वायू कहां से आवेगी ? इस कारण बाज़ार अतीव चौड़े २ बनाने पड़ेंगे और एक मकान दूसरे मकान से कुछ दूरी पर बनाया जावेगा। ऐसा करने में भूमि छोड़नी पड़ेगी जिस पर मकान बन सकते थे, यदि कम मान्ज़िले मकान होते।

(४) चालीस मान्ज़िले मकान पर चढ़ना अतीव कष्ट दायक और समय नाशक न हो, इस लिये अमैरीका में विद्युत से उठने वाले लिफ्ट होते हैं। ऊपर की मान्ज़िलों पर जाने वाले लोग लिफ्ट पर बैठ जाते हैं, जिस २ मान्ज़िल पर किसी ने उतरना होता है, लिफ्ट वहीं वहीं ठैहरता जाता है और लोग उतरते जाते हैं। जैसे आंख की झपट में स्टेशनों पर तार दूर तक पहुंच जाता है वैसे ही आंख की झपट में एक आदमी चालीसवीं मान्ज़िल पर पहुंच जाता है—सभ्यता ने इस प्रकार श्रम तथा समय बचा दिया है नहीं तो देहली की पांच मन्ज़िल कुतबा-मीनार पर चढ़ने में ही मज़बूत आदमी भी हांप कर बैठ जाता है—भारत वर्ष में नरनारी अभी रींगना जानते हैं बिजली से उड़ना नहीं जानते। खैर! इतना स्पष्ट है कि जब उत्तरोत्तर अधिक मन्ज़िलों वाला मकान बनाया जावे तो इन लिफ्टों के लगाने में उत्तरोत्तर अधिक खर्च होना चाहिये। अतः उक्त चार कारणों से विस्पष्ट हुआ कि भवन निर्माण में भी ह्रास नियम का लगाव है॥

६. शिल्प में क्रमागत ह्रास नियम—पुराने अर्थशास्त्र वेत्ता शिल्प में क्रमागत ह्रास नियम का लगाव नहीं मानते थे, परन्तु नवीन शास्त्रवेत्ता इसे व्याप्त नियम समझते हैं। कृषि में इस का लगाव तो आवश्यक है ही क्योंकि यह तीन बातें उस में नहीं पाई जातीं:—

क. भूमि का प्रायः न बढ़ सकना।

ख. श्रम विभाग का न हो सकना।

ग. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के लाभों का न हो सकना। परन्तु शिल्प में ये तीनों बातें पाई जाती हैं। अर्थात् वहां दो ही साधन (श्रम+पूंजी) उत्पत्ति के होते हैं और उन्हें, हम यथेच्छा बढ़ा सकते हैं। श्रम विभाग का भी लाभ वहां होता है। बड़ी मात्रा में उत्पत्ति तो ख़ूब बढ़ा सकते हैं।

इतनी बातों के होने पर भी शिल्प में क्रमागत ह्रास नियम लगता है क्योंकि

(१) जैसा आगे चल कर दिखाया जावेगा श्रमविभाग की भी सीमा होती है। हां! यह सत्य है कि यदि एक पुरुष १ काम करे तो उस जैसे १० पुरुष १० का काम तो अवश्य करेंगे और सम्भवतः २० का काम कर लेंगे। किन्तु जब १००० पुरुषों को उसी काम पर लगाया जावे और उन से काम लेनेवाला कोई विशेष अध्यक्ष न

हो तो शायद वे ५०० क. काम करें, तो इस से क्रमागत ह्रास नियम लग गया न ?

(२) ह्रास नियम लगने का दूसरा कारण यह है कि शिल्पीय पदार्थ कृषि जन्य पदार्थों के बने हुए हैं और कृषि जन्य की उत्पत्ति में क्रमागत ह्रास नियम लगता है । कोई शिल्पीय पदार्थ कृषि जन्य पदार्थों के जितना समीपस्थ हो उतना कृषि जन्य पदार्थों के मूल्य में भेद आने से उसके मूल्य में भेद आवेगा ! और जितना शिल्पीय पदार्थ कृषि जन्य पदार्थ से दूरस्थ हो, उतना उसके मूल्य में भेद कम आवेगा ।

देखिये ! लोहे की नाना प्रकार की वस्तुएं बनती हैं जैसे : सीधी सादी चादरें, तव्वे और कढ़ाइयां, मेख और पेंच, घुड़नाल, आरे, कैंचियां, चाकू, घड़ियों के स्प्रिंग, सर्जनों के औज़ार—यह उत्तरोत्तर अधिक क़ीमती चीज़ें हैं । इन की क़ीमतों की वृद्धि का अनुमान बैब्बेज साहब ने १८३२ में यूं लगाया था-यद्यपि बहुत पुराना हिसाब है तथापि स्मरणीय है क्योंकि (क) भारत वासियों को पता लगेगा कि किस प्रकार विदेश से वस्तुएं मंगा कर वे अपने देश को लुटवा रहे हैं और अन्यों को माला-माल कर रहे हैं तथा (ख) इस नियम की पुष्टि होती है कि

कच्चे माल के निकट जो शिल्प पदार्थ हो उस का कीमत मे शीघ्र भेद आ जाता है जब कि कच्चे माल की क़ीमत में भेद आ जावे।

एक डालर (=३ रु० २ आ०) कीमत वाली लोह शिलाखा की क़ीमतें जब उस के शिल्प पदार्थ बनाये जावे तो निम्न होती हैं:-

			डालज़
रेल की पट्टरियां	...	...	१.१०
घोड़े के नाल	...	...	२.५५
आरे	...	...	१४.२८
कैंचियां (उत्तम)	...	...	४४६.९४
चाकुओं के फल	....	....	६५७.१४

यदि लोहे की कीमत चौगुनी हो जावे तो रेल की पट्टरियों की कीमत भी चौगुनी हो जावेगी किन्तु आरों पर थोड़ा प्रभाव पड़ेगा और चाकुओं की कीमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि ६५७ के मुकाबले में ४ की क्या हस्ती है? यह बात कपास और उससे बने वस्त्रों पर घटती है।

अब किञ्चित् इस बात को देखिये कि केवल लोहे का सामान कितने रुपैयों का भारत में आता है और उससे कितनी हानि इस निर्धन देश को हो रही है:-

१६१०-११

घड़ियां	....	१३४३३४	पाउण्डज़
चाकू, औज़ार आदि	....	२२३१२७४	,,
साइन्स और डाकटरी के औज़ार		८२४५६५	,,
कलाएं	....	३१५३६४१	,,
रेलों का सब सामान जो			
कम्पनियों ने मंगाया	....	२८३०२२१	,,
जो सरकार ने मंगाया	....	१२६३८०२	,,
योग	....	१०४६७८३७	,,

अर्थात् लग भग १६ क्रोड़ रुपैया का विदेशी लोह सामान भारत में आया—उस में लोहा कितने का होगा और बाकी सामान बनाने की उजरत कितनी—इन का हिसाब बब्बेज साहब के उक्त ब्यौरों से पाठक स्वयम् ही लगा लेवें !

प्रश्न

१. सिद्ध करो कि खनिज पदार्थों में क्रमागत ह्रास नियम लगता है।

२. कृषि और खानों के ह्रास नियम के लगाव में क्या भेद है ?

३. खानों की रक्षा का महत्व बताओ।

४. हालैंण्ड, बाल और मालेसवर्थ की सम्मितियां दो।

५. मकानों के बनाने में ह्रास नियम का लगाव सिद्ध करो।

६. शिल्प में ह्रास नियम क्यों लगता है ?

७. विदेश से लोह सामान मंगाने में भारत को क्या हानि हो रही है ?

निर्देश

V. Ball.—*Economic Geology of India.*

P. H. Holland.—*Review of the Mineral Production of India.*

Imperial Gaz. of India—*Vol. III.* 121-167.

G. Watt.—*The Commercial Products of India.*

G. Molesworth.—*Economic Facts and Fallacies.*

R. Ghose.—*The Indian Industrial Guide, Part II.*

अध्याय ९

भारतीय कृषि।

प्राचीन काल में कृषि की उन्नति—हमारे पूर्वजों में ३२ विद्याएं और चौसठ कलाएं प्रचालित थीं, कृषि सम्बन्धी कलाएं यह हैं:—

वृक्षादि प्रसवारोपपालनादि कृतिः कला। वृक्षों, अनाज, पौदों के लगाने, कलम लगा कर नयी २ किस्में पैदा करने और पौदों के रक्षण की कलाएं।

सीराद्याकर्षणे ज्ञानं !

हल, सुहागादि कृषि यन्त्रों के खेंचन की कला; पशुओं, भाप व विद्युत में से कौन, हलादि खेंचे और कितना गहरा तथा चौड़ा चलने वाला हल हो, इन बातों का ज्ञान देने वाली कला।

संसेचनं संहरणं जलानां तु कला स्मृता ।

खेतों के सेचन की क्या २ विधियां हों और जल किस प्रकार से खींचा जावे, पशु वा कलाएं लगाई जावें ? आज कल के पम्प नयी बात नहीं हैं। देखिये शुक्रनीति ! में राज भवन की सुशोभा के लिये लम्बे चौड़े तालाब, कूप और जल यन्त्र

(Water-pumps or pumping Machines) बनाने की आज्ञा है:—

प्रशस्तवापीकूपादि जल यन्त्रैः सुशोभितम् ।

अध्याय १. १२८

इसी प्रकार अध्याय २. १६५ में कहा है कि राजागण ऐसे मालियों को नौकर रखें जो बाग, कृत्रिम जंगल और मनविनोद–उद्यान कृत्रिम तौर पर बना सकें। कृषि के विशेष ज्ञान के बिना यह बातें नहीं हो सकतीं।

यह भी विचित्र है कि दूध दोहने, राक्षित रखने आदि और मक्खन निकालने की दो कलाएं पृथक २ मानी हुई थीं।

दुग्धदोहादि विज्ञानं घृतान्तन्तु कला स्मृता ।

२. अर्वाचीन काल में कृषि की दुरावस्था—परन्तु बौद्ध तथा पौराणिक मतों ने कृषि,व्यापार,शिल्प,व्यवसाय का सत्यानाश कर दिया। बौद्ध तथा जैनी लोग अहिंसा के प्रचारक थे। समय था जब जैनी लोग झाड़ूओं से सड़कों को साफ़ कर के चलते थे ताकि कोई कीट उन के पैरों के नीचे दब कर न मर जावे और मुख पर वस्त्र बान्धे रखते थे ताकि कीट मुख में न जावें। यह अहिंसा का भाव यहां तक बढ़ा कि कृषि को भी हेय समझा गया, मनुस्मृति में बार बार लिखा है कि कृषि बुरी है, किसी भले आदमी को किसी ब्राह्मण व क्षत्रिय को कृषि नहीं करनी चाहिये।

'ब्राह्मण और क्षत्रिय यदि वैश्य वृत्ति करें तो बहु जीवों की हिंसा करने वाली पराधीन कृषि को यत्न से छोड़ दें। कोई लोग कहते हैं कि 'कृषि अच्छी है' परन्तु इस वृत्ति को साधु जन निन्दित समझते हैं क्योंकि कुदाल और हलादि को जो तीक्ष्ण लोहा लगा होता है वह पृथिवी तथा पृथिवी पर रहने वाले जन्तुओं की हिंसा करता है—१०. ८३, ८४. मनु।

'भूमि भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्'।

इस प्रकार कृषि करने वालों को हिंसक, घातक, पापी समझा गया और यह घृणा यहां तक बढ़ी कि यज्ञों और श्राद्धों के समयों में निम्न लिखतों का भी अपमान किया जाने लगा:—

वैद्य, वाणिज्य से जीने वाला, ब्याजजीवी, वृत्ति के लिये गाय, भैंस, बकरी इत्यादि का पालने वाला, गायक; नट; कथक; समुद्र पर जाने वाला, तेली, रस बेचने वाला, धनुष् वाण का बनाने वाला; हाथी, बैल, घोड़ा वा ऊंट के सिखाने वाला; पक्षियों का पालने वाला; युद्ध विद्या सिखाने वाला, गृहवास्तुविद्या से जीविका करने वाला; वृक्षों का लगाने वाला; कुत्तों और बाज़ों

के पालने वाला; खेती करने वाला, गवाला, भैंसों के पालने वाला, आदि।

'द्विजों में श्रेष्ठ विद्वान् के लिये उचित है कि उक्त निन्दित आचार वाले और पङ्क्ति बाह्य, द्विजों में से अधमों-नीचतमों को देव और पितृकर्मों में त्याग देवे'।

अतः किसान, पशुपालक, पक्षिपालक, व्यापारी, पूंजी पति, साहसिक और शिल्पकार के पेशे जब अतीव घृणित समझे जाने लगे और द्विजों की पङ्क्तियों से इन पेशे वालों को निकाल दिया गया तो इन में क्या उन्नाति हो सकती थी? ऐसी अवस्था में तो दरिद्रता, आलस्य, निरुत्साह, दासत्व के दलदल में भारत वासियों ने शीघ्र पड़ना ही था!

मनु धर्मशास्त्र में उक्त शलोकों के मिलाने में धूर्त्तपन किया ही गया था किन्तु पराशरस्मृति में भी यही बात मिलती है:

संवत्सरेण यत पापं मतस्यघाती समाप्नुयात्।
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली॥

एक मच्छलीगीर मच्छलियां पकड़ने से सारे वर्ष में जितना पाप करता है उतना एक किसान एक दिन में अपने लोहे वाले हल से कर देता है!

अर्थात् मच्छली गीरों से किसान, लोग ३६५ गुणा अधिक पापी होते हैं। ऐसे वाक्यों के लिखने वालों से कहो कि तुम अनाज न खाया करो, कि यदि किसानी, पशुपालन और व्यापार के बिना तुम जी सकते हो तो जी कर दिखावो। धूर्त्तों की ऐसी शिक्षाओं ने भारती किसान की यह दुर्दशा कर दी है और सुवर्ण भूमि भारत में दरिद्रता की राक्षसी का वास कराया है। समय है कि एसी कुशिक्षाओं से दूर रहते हुए हम धनी, यशस्वी, वीर्य्यवान् और विद्वान् बनें। शुक्राचार्य्य ने सच्च कहा है कि

इस संसार में धन से ही सर्व कर्म होते हैं अतः उसकी प्राप्ति के लिये सुविद्या, सुसेवा, शौर्य्य, खेती, व्याज, दुकानदारी, शिल्पकारी और भिक्षा से भी मनुष्य यत्न करें।

खनिः सर्वधनस्येयं देव दैत्य विमर्दिनी।
कृषिस्तु चोत्तमा वृत्तिया सारिन्मातृका मता।
मध्यमा वैश्यवृत्तिश्च शूद्रवृत्तिस्तु चाधमा॥

भूमि ही सब धनों की खान है।

उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निखिद चाकरी, भीख बेकार।

मूर्खों की शिक्षाओं के साथ २ भारती किसान को मुसलमानी राज्य के अन्धकारमय काल में सात सौ वर्षों तक रहना पड़ा, इस कारण कृषि सम्बन्धी प्राचीन हुनर व विद्या भी लुप्त हो गये और निदान उस की शोचनीय अवस्था होगयी।

३. भारतीय कृषक की प्रशंसा—१ भारतीय कृषक जिस के पास कलाएं नहीं, (२) जो नये आविष्कारों से लाभ नहीं उठाता, (३) जो उन विधियों को काम में ला रहा है जिन्हें उसके पूर्वजों ने सहस्रों वर्ष पूर्व निकाला था, (४) जो अनुन्नति प्रिय (conservative) है (५) जो सर्वथा अज्ञानी और मूढ़ है—वह योरुपीय कृषकोंका मुकाबला कदापि नहीं कर सकता। परन्तु कतिपय योरुपीय महाशयों ने इस दुरावस्था में भी पड़े हुए भारतीय कृषक की प्रशंसा की है। डा० वील्कर लिखते हैं: "साधारण तौर पर भारतीय कृषक योरुपीय कृषकों से कई बातों में उच्चतर हैं और यदि उच्चतर नहीं तो समान योग्यता वाला तो अवश्य है। भारतीय कृषक जिन २ कठिनाइयों का मुकाबला धीरता पूर्वक करता है वे कठिनाइयां संसार में कहीं नहीं देखी जातीं।

१. भूमि को घास पात (Weeds) से पृथक करने के लिये बहुत होशियारी दिखाई जाती है।

२. भूमी को सींचने की विधियां भी बहुत विचित्र हैं। और समयानुसार भूमि सींचने के नये २ तरीके निकाल लिये जाते हैं।

३. कृषि के विज्ञान से अनभिज्ञ होते हुए भी भारतीय कृषक यह जानते हैं कि भूमि के प्रकार की होती है और प्रत्येक प्रकार में क्या २ उत्पन्न हो सकता है और कब २ वे वस्तुएं उत्पन्न हो सकती हैं?

४. साथ ही मिश्रित फ़सल वा भूमि को छोड़ने के तरीक़े उसे ठीक २ तौर पर ज्ञात हैं। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि ऐसी सावधानी की कृषि, अधिकश्रम, धीरता और नये तरीक़ों के निकालने की विधियों से मिली हुई बुद्धि मैं ने कहीं नहीं देखी"।

४. भारतीय कृषक की दशा में उन्नतिः—

प्रति दिन भारतीय कृषक की दशा उन्नति हो रही है। पहिले तो ग्राम के साहूकार उस से अधिक सूद लेते थे और साथ ही उस सीधे साधे कृषक को धोखा भी देते थे, फिर भूमिपति-जिमींदार लोग-कृषक को खूब सताते थे और निश्चित लगान से यथा तथा अधिक धन कृषक से प्राप्त करते थे। राज्य कर्मचारियों की रिशवत खोरी से भी सदैव कृषक तंग रहता था अब यह तीनों प्रकार के अत्याचार पूर्ववत् नहीं हैं। साहूकार लोग कम सूद ले रहे हैं क्योंकि-

१. बाज़ार में सूद की मात्रा कम हो रही है।

२. कृषक का ज्ञान और मुकाबिले की शक्ति बढ़ गई है।

३. राज्य ने सहकारी (क्रैडिट) बैङ्क खोल दिये हैं जो यद्यपि इस समय कम हैं तथापि कृषकों को उन के अद्भुत लाभों का पता लगने पर खूब बढ़ जायेंगे।

४. राज्य ने भूमिपतियों के अत्याचारों से कृषकों को बचाने के लिये प्रत्येक प्रान्त में सरल कानून बना दिये हैं।

५. सर्व साधारण में सभ्यता के बढ़ने से और प्रत्येक को अपने २ अधिकार लेते देख कर सीधे सादे कृषकों की भी आंखें खुल गई हैं और अब वे पूर्ववत् बुद्धू कृषक नहीं रहे।

६. बाज़ार में कृषक की उपज की कीमत बढ़ गई है वह थोड़ा बहुत देख लेता है कि किस बाज़ार में उसे वस्तु की क़ीमत अधिक मिल सकती है। किन्तु राली ब्रादर्ज़ और सन्डे पैटरिक आदि कम्पनियों ने स्वजाल बहुत फैलाया हुआ है और कीमतों के निश्चय करने में उन का बड़ा भाग होता है। इस लिये कृषकों को पैदावार बेचने में सावधान होना चाहिये।

७. पहिले रेलें न होने से उस की फ़सल स्थानीय बाज़ार में ही बिक सकती थी। परन्तु अब लगभग सारे देश में पदार्थों का एक ही भाव हो गया है। वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुगमता से जा सकती हैं। रेलों से पूर्व काल में जब फ़सल बहुत होती थी तब वस्तुएं कहीं बाहर नहीं जा सकती थीं-अब सारे देश में जा सकती हैं। अतः पहिले फ़सल की अधिकता से जहां कृषक को कम कीमतें मिलती थीं अब उतनी कम नहीं मिलतीं।

५. कृषि सम्बन्धी पूंजी

यह साधारण बात है कि श्रमी के पास जितनी अधिक पूंजी हो वह उतनी अधिक उत्पत्ति कर सकता है। ख़राब औज़ार, साधारण औज़ार, तीक्ष्ण औज़ार, भाप और बिजली से चलने वाले औज़ार और कलाएं इन के द्वारा एक

ही श्रमी उत्तरोत्तर अधिक उत्पत्ति कर सकता है। इंगलैण्ड में भूमि पर पूंजी खूब लगाई जाती है, अतः अन्य सब देशों की अपेक्षा उस में प्रति एकड़ उत्पत्ति भी अधिक हो सकती है। फ्रान्स और जर्मनी में अल्प मात्रा की उत्पत्ति होने के कारण, पूंजी और कलाओं का इंगलैण्ड जितना प्रयोग न होने से उत्पत्ति इंगलैण्ड जितनी नहीं। भारत में सब देशों से ही कम उत्पत्ति होती है। भिन्न २ देशों में भिन्न वस्तुओं की जो मात्राएं प्रति एकड़ उत्पन्न होती हैं वे नीचे के ब्यौरे में दिखाई गई हैं।

प्रति एकड़ उत्पत्ति।

देश	गन्दम बुशल	पौंउण्ड रूई	मक्की	जौ
संयुक्तराज्य	३२.०			३३
जर्मनी	२६.८			३४
फ्रान्स	१९.८			२३
हंगरी	१७.६		११	२२
आस्ट्रिया	१६.८		११	२३
युक प्र० अमे०	१३.५	२३३	२५	
भारत वर्ष	१०.	८८	१६	१३
आस्ट्रेलिया			२३	
बैलजियम				५१
नदरलैण्डज़				४७

भारत राज्य ने कृषि में पूंजी बढ़ाने के कुछ यत्न किये हैं:—

१. राज्य स्वयं कृषकों को सूद पर रुपया देता है और बाज़ार से सूद की कम मात्रा पर कृषकों को ऐसे रुपये के देने का नाम "तकावी" है—पर यह रीति आज कल बहुत कम हो रही है। जब तक सरकार खुले दिल से तकावी नहीं देगी, तब तक देश की उन्नति रुकी रहेगी।

२. ग्रामीण नागरिक और सैन्टरल बंक्स खोले जा रहे हैं—इन का पूर्ण वृतान्त आगे दिया गया है।

३. कूप, तालाब और नहरें सरकार खुदवा रही है। देखो अध्याय ४।३।

४. नवीन फ़सलों के बोने का अनुभव और पुरानी फ़सलों को नये तरीक़े से बोने का यत्न राज्य स्वयम् कर रहा है: लायलपुर, सरगोधा, नरवाल, गुरूदासपुर, हांसी, बसाल पेशावर, अलीगढ़, कानपुर, जलाउं, सूरत, धारवर, धूलिया, पूना, मन्जिरी, गणेशखण्ड, मीरपुर, अहूर, हगरी, वेलरी, पलूर, समल कोटा, जारहट, शिलांग, रंगपुर, राजशाही, ढाका आदि में परीक्षण क्षेत्र सरकार ने खोले हैं। उन के सुप्रयोग करने पर बहुत लाभ होगा।

५. कृषि सम्बन्धी प्रदर्शनियां भिन्न २ स्थानों पर की जाती हैं।

६. भूमिपति व कृषकों के सम्बन्धों को राज्य ठीक कर रहा है ।

७. भौमिक लगान को कम करने का ध्यान है ।

८. कृषि शिक्षक कालेज भिन्न २ प्रान्तों में खोले गये हैं अब इन में से दो साधनों का संक्षिप्त वृतान्त दिया जाता है:—

६. तकावी की विधि संक्षेप से यह है—सरकार से प्रार्थना—राज्य ने दो नियम पास किये:—

1. Land Improvements Loan Act (1883).
2. Agriculturists Loan Act (1884).

भूमि की उन्नति करने, पशुओं, बीज और अन्य कृषि की वस्तुओं को खरीदने के लिये कृषक को जो धन आवश्यक हो, वह राज्य से ले सकता है । उक्त दो नियमों के अनुसार सरकार ने किसानों को यह धन दिया है:—

भूमि की उन्नाति के लिये राज–धन (१८८३ के नियमानुसार)

भारती सरकार ने	५१६३२६ रुपये
प्रान्तिक सरकार ने	२४७६८५४३ "
	२५२८७८७२ "

किसानों की सहायतार्थ राजधन (१८८४ के नियमानुसार)

भारती सरकार	३०३२५४
प्रान्तिक सरकार	३२३१४०५४
	३२६१७३०८

१९०८–०९ तक सम्पूर्ण योग ... ५,७६,०५,१८० रु०

स्पष्ट है कि यह विधि कामयाब नहीं हुई। कारण यह है कि राज कर्म्मचारी वास्तविक भाव को न समझ कर किस्तों में रुपया वापिस लेने में कृषकों को तंग करते हैं परन्तु जो विधियें तकावी कमीशन ने बनाई हैं वे सर्वथा ठीक प्रतीत देती हैं जैसेः १) नहरी जल सस्ता दिया जावे।

२–ऋण वापस लेने में ढीलापन दिखाया जावे। यदि फ़सल न होने से ज़मींदार किस्त का रुपया न दे सके, तो उस वर्ष किस्त न ली जावे और नाहीं अगले वर्ष उसे दुगना किया जावे।

३–परन्तु ऋण वापस देने का समय बढ़ा दिया जावे जिस से कि थोड़ा धन वह किश्तों में देवे। यदि माल अफ़सर इस ओर झुकें, तो तकावी और सहकारी बंकों के द्वारा भारत की कृषि बड़ी प्रफुल्लित हो सकती है। किसानों को स्वयम् उन्नति का ख्याल चाहिये और वे सरकार को तकावी बढ़ाने के लिये वारं वार प्रार्थना करें, तो कामयाबी होगी। राज्य को

उचित है कि क्रोड़ों रुपये २ से २½ प्रतिशतक सूद पर इंग-लैण्ड की धनाढ्य कम्पनियों को न देकर इस देश के दीन किसानों को ५ प्रतिशतक पर रुपैया दे। आज कल ६¼ प्रति शतक सूद अधिक प्रतीत होता है। इस से सरकार की आय भी बढ़ेगी और यह देश भी मालामाल होगा। क्या यह विचित्र नहीं कि साठ क्रोड़ (३८,३६०,०१३ पा०) रुपैये सरकार ने इंगलैण्ड में सूद पर दिये हुए हों जब कि इस देश की कृषि, व्यापार और व्यवसाय धन की कमी से शिथिल हो रहे हों !

क्या यह विचित्र नहीं कि जिस किसान की समृद्धि पर व्यापारी, दलाल, बनिया, सेठ साहूकार, शिल्पकार, मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों और राज की आय का आधार हो, उसे अपना काम चलाने के लिये राज से धन न मिल सके ? बल्कि धन से पूरित इंगलैण्ड में क्रोड़ों रुपये सूद पर दिये जावें ?

साथ ही अतीव विचित्र है कि भोजन, आच्छादन और वस्त्र कलाएं चलाने के लिए इंगलैण्ड का आधार बहुत कुछ भारती किसान पर है। ज्यों २ समय व्यतीत होगा त्यों २ हम पर आश्रय बढ़ता जावेगा। ऐसा होता हुए सरकार के लिये

1. Advance India by M. De. P. Webb, page 107.

उचित है कि प्रत्येक वर्ष करोड़ों रुपैये कृषि की वास्तविक उन्नति के लिये लगावे। इस बारे में उपेक्षा उचित नहीं।

प्रश्न

१. प्रमाण दे कर सिद्ध करो कि प्राचीन भारत में कृषि विद्या की उन्नति थी।

२. मनु और पराशर ने कृषि के बारे में क्या लिखा है ?

३. मध्यम काल में कृषि क्यों अवनत हो गई ?

४. डाक्टर वील्कर ने भारती कृषक पर क्या विचार प्रगट किये हैं ?

५. सिद्ध करो कि कृषि में उन्नति हो रही है।

६. भिन्न २ देशों में प्रति एकड़ उत्पत्ति की मात्रा बताओ।

७. भारतीय कृषक की उन्नति के लिये सरकार ने क्या काम किये हैं ?

८. तकावी की रीति पर तुम्हारे क्या विचार हैं ?

निर्देश।

२५५ पृष्ट पर जिन पुस्तकों के नाम दिये हैं–उन्हें पढ़ा जावे।

N.G. Mukarji–Hand Book of Indian Agriculture.

E.C. Schrottky-Rational Agriculture.

अध्याय १०

सहकारी बंक
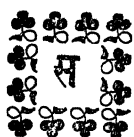
सहकारी बंकों का उद्भव—सहकारी बंकों की विधि जर्मनी, डैन्मार्क, स्विटज़लैण्ड, इटली आदि देशों में अतीव लाभकारी साबित हुई है। सरकार ने भारती किसानों और नगर के शिलपकारों की दशाओं को सुधारने के लिये उन बंकों को यहां भी प्रचालित करना चाहा। कई वर्षों के विचार के पश्चात् १९०४ में सहकारी बंकों के सम्बन्ध में एक नियम बनाया जिस के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में ऐसे बंक बनाने आरम्भ किये गये। अब तीन प्रकार के सहकारी बंक हैं :-

ग्रामीन—एक ग्राम या कई समीपवर्ती ग्रामों के १० आदमी मिल कर एक बंक बना लेते हैं।

नागरिक—एक नगर के शिलपकारों, व्यापारियों, लेखकों, मज़दूरों की सहायतार्थ नागरिक बंक बनाये गये हैं।

सैन्ट्रल—उक्त दो प्रकार के बंकों में धन की राशि थोड़ी होती है अतः उन्हें धन की आवश्यकता रहती है-उन की सहायतार्थ यह बंक खोले जाते हैं-इन में राज का निरीक्षण अधिक होता है।

मद्रास में सहकारी निधियों की रीति पहिले ही प्रचलित थी किन्तु वे ऐसी उपयोगी न थीं। किन्तु इन सहकारी बंकों ने भारत में भी बहुत उन्नति की है जैसा नीचे के ब्यौरे से स्पष्ट है:—

भारत में सहकारी निधियों १ की वृद्धि।

वर्ष	निधियों की संख्या	सभ्या की संख्या	उन की पूंजी की मात्रा, रुपये
१९०५–०६ तीनों प्रकार के बंक	२८३	२८६२९	
१९११–१२	सैन्टरल=१२०	११३६१	१०७७३९८४
	नागरिक=४९५	६७०९७	५३५९२९७
	ग्रामीन=७५६२	३२४८६०	१८२२९०६१
	८१७७	४०३३१८	३४३६२३४२

सहकारी निधि के व्याप्त गुण—यह हैं:—

(क) यह निधियां सर्वथा स्थानिक हैं–एक ग्राम या समीपवर्ती कई ग्राम मिल कर एक निधि बना लेते हैं।

---

१. बंक को हिन्दी में निधि कह सकते हैं, इस कारण कहीं २ यह शब्द भी प्रयुक्त किया है।

(ख) उस का प्रबन्ध वहां के निवासी ही करते हैं, अपनी सेवाओं के लिये कुछ नहीं लेते। सभासद् ही निधि के कर्मचारी हो सकते हैं। अतः धोके का अवसर नहीं होता और बंक चलाने में खर्च भी कम होता है।

(ग) सभ्यों की धरोहर-रकमों और बंक के उत्तरदातृत्व पर अन्यों से उधार लेकर काम चलाया जाता है। सूदादि का व्यय निकाल कर शेष लाभ 'बचत फंड' में डाला जाता है, ज्यों २ यह 'बचत फंड' अधिक हो त्यों २ अधिक रकमें बंक को धरोहरों और उधार के तौर पर मिल सकती हैं।

(घ) निधि के स्थानिक सभ्यों को ही उधार पर रकम निधि से मिल सकती हैं।

(ङ) प्रत्येक निधि में एक ग्राम या ग्राम समूह के निवासियों की बचतें होती हैं जिन के द्वारा ग्राम निवासी कृषि या शिल्प में उन्नति कर सकते हैं।

(च) प्रत्येक प्रान्त में इन निधियों की देख भाल के लिये Registrar of Co-operative Credit Societies नामी एक अफ़सर होता है। हर साल निधि के हिसाब की पड़ताल करने के लिये सरकार की ओर से एक अन्य अफ़सर आता है।

(छ) ग्रामीन निधियों में प्रत्येक सभ्य का उत्तरदातृत्व अपरिमित है-अर्थात् यदि निधि का दिवाला निकले तो सर्व सभ्यों से

उचित धन लेकर निधि के लेन दारों का रुपया चुका दिया जा सकता है। किन्तु नागरिक निधियों में उत्तरदातृत्व परिमित है और लाभों का $\frac{1}{4}$ भाग बचत फंड में अवश्य रख कर $\frac{3}{4}$ यथेच्छा खर्च किया जा सकता है।

(ज) इन निधियों की आय पर सरकार आय-कर नहीं लेती और नांही रजिस्ट्री की फ़ीस या स्टाम्प लेती है।

(झ) यदि कोई किसान इस निधि का ऋण अदा न करे तो राज्य का लगान दे चुकने पर निधि का अधिकार किसान की जायदाद पर अन्य सब लेनदारों से पहिले होता है।

भारत में सहकारी बंकों की विशेष आवश्यकता है क्यों-कि १. इस देश में सूद की मात्रा बहुत ज़ियादह है। बीस रुपया प्राति शतक बार्षिक सूद प्रायः लिया जाता है, ३० और ४० प्राति शतक के उदाहरण भी आम हैं। नीचे दो विचित्र उदाहरण दियेजाते हैं:-(क)पूर्वी बंगाल में एक किसान ने १५ रुपये एक बानिये से उधार लिये और उसे प्रतिमास प्रति रुपैया ७ पैसे व्याज देने किये। साथ ही प्रति तीन मासों के पश्चात् चक्र व्याज देना किया। ३ वर्षों तक किसान ने ऋण न चुकाया। बनिये ने उस पर ५०० रुपयों का दावा किया और रुपया लेने में न्यायालय की डिगरी ले ली, जिससे १३१$\frac{1}{4}$ प्रति शतक वार्षिक व्याज लेना उचित ठहराया गया।

१५ रुपयों के स्थान पर ५०० रुपया देने से उस किसान की क्या अकथनीय दशा हुई होगी ?

(ख) एक और किसान ने १५ रुपये उधार लिये और प्रति दिन एक रु० व्याज देना किया। ३ वर्षों तक उस ने रुपये न दिये। बनिये ने ९९९ रुपयों का दावा किया (शेष १११ रुपये किसान पर कृपा कर के छोड़ दिये थे)। विचित्र है कि न्यायाधीश ने ९९९ रुपयों की ही डिगरी देदी ! इस प्रकार के असंख्य उदाहरण हैं किन्तु यदि किसानों और शिल्पकारों को दुर्दशा, दासत्व, दुःसाध्य, चिन्ता, दरिद्रता और दुरालस्य से बचाना हो तो सहकारी बंक खोलने चाहिये। क्योंकि यह बंक १२ प्रति शतक में किसानों को सूद देते हैं, कई किसानों को आठ रुपया प्रति शतक पर उधार मिल जाता है।

२. इन बंकों से उत्पादक कामों में ही धन लगाने के लिये रुपया मिलता है इस लिये फ़ज़ूल खर्ची नहीं हो सकती। कृषि में बहुत उन्नति करने की आवश्यकता है जो धन से ही पूरी हो सकती है।

३. ग्राम का बनिया ही किसानों को सूद पर रुपया दे सकता है, अन्य साहूकारों को स्थानिक अवस्था मालूम नहीं होती, इस लिये वे किसानों से सूद अधिक लेते हैं। सहकारी बंकों ने यह दोष दूर कर दिये हैं।

४. किसान सदैव ऋणी रहता है क्योंकि थोड़ी सी भूमि का स्वामी होने से उस के पास धन नहीं बच सकता। १ से ५० एकड़ भूमि जोतने वाले किसान भारत में बहुत पाये जाते हैं। साथ ही फ़सलों में अनिश्चित रहती है पशुओं में रोग फैल जाते हैं, अतः किसान ऋणी रहते हैं।

५. भारत वर्ष में उधार देने के लिये पूंजी थोड़ी है और जो है उसे एकत्रित करने के साधन नहीं।

६. लोगों के पास रुपये रखने का रक्षित स्थान नहीं और न हमारे देश वासी ऐसे उत्साही हैं कि व्योपार, कृषि और शिल्प में रुपया लगावें। इस लिये १९११-१२ में सेविंग्ज़ बैंकों में १२,५९,९९,०२९ पाउण्ड्ज़ और सरकार के पास १४० करोड़ रुपया पड़ा है। अंगरेज़ी बैंकों में जो धन राशि पड़ी है वह ज्ञात नहीं। इस सारे धन को सहकारी बंकों के द्वारा अतीव लाभदायक बनाया जा सकता है, किन्तु अब अंगरेज़ी कम्पनियां उस से लाभ उठारही हैं।

Land Alienation Bill—किसान से उस की ज़मीन नहीं खरीदी जा सकती, ऐसे नियम के पास होने से किसानों को साहूकारों की ओर से व्याज पर रुपया कम मिल सक्ता है। ऐसे समय में सहकारी बंकों की विशेष आवश्यकता है।

कतिपय देशों में सहकारी बंकों की स्थिति का ब्योरा नीचे दिया जाता है।

देश	कृषि में लगे जन	उक्त जनों की प्रति शतक मात्रा	सहकारी बैंकों की संख्या	१०००० जनों के प्रति बैंकों की संख्या	प्रति बैंक पर कृषि किये हुए एकड़ों की संख्या
स्विटज़रलैण्ड	४८१०४९	३०.९	५३६६	१११	...
बैलजियम	६९७३७२	२२.७	३८४१	५५	९४३
जर्मनी	९८८३२५७	३५.२	२६०२६	२६	३०५८
डैन्मार्क	५३०६८९	४८.२	१२२०	२३	५२८७
हालैण्ड	५९२७७४	३०.७	१३७६	२३	१६०६
आस्ट्रिया	८२०५५७४	६०.९	१०५१५	१३	२५३१
फ्रांस	८८४३७६१	४२.७	७२००	८	८२२६
हंगरी •	६०५५३९०	६९.७	५००६	८	७११०
आयरलैण्ड	८७१९८९	४४.७	९७०	११	३३७८
इटली	९६६९४६७	५९.४	८६३०	९	३९६४
भारत	२२०१६०९७६	७०	८१७७	.३७	३३०००

सभ्य देशों के मुकाबले में भारत में सहकारी बंक न होने के बराबर हैं। स्विटज़लैंण्ड और बैलजियम की भारत से तुलना करने से भारत की दुरावस्था का पता लगता है। अतः देश हितैषियों को इन की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

सहकारी बंकों के लाभ

१. भारत में दरिद्रता ने घर किया हुआ है अतः यहां पूंजी का अभाव है। किन्तु कृषि में अति अल्प पूंजी पाई जाती है। इस अल्पता को बड़ी सुगमता से हटाया जा सकता है यदि यहां सहकारी बंक हों। यह बंक कृषकों को ग्रामीण साहूकारों के हाथों से छुड़ाते हैं।

२. किसानों और शिल्पकारों के पुराने ऋणों के उतारने में यह बंक सहायक हैं।

३. अमितव्ययता (फ़ज़ूलख़र्ची) को रोकते हैं, उत्पादक कामों में रुपया लगाने के लिये धन उधार दिया जाता है और फ़ज़ूलख़र्च को उधार पर धन नहीं मिल सका।

४. मुक़दमा बाज़ी बहुत कम हो जाती है। १९११-१२ में केवल भारत में न्यायालय के स्टाम्पों पर ४,८८,९५,६१० रुपये ख़र्च हुए, जब कि १९०१-०२ में ३,५८,६५,७६५ रुपये ख़र्च किये गये। वकीलों और उन के मुन्शियों, चपरासियों, न्यायाधीशों और उनके मित्रों की फीसें और उपहार, रेल पर आने जाने के किराये, टमटमों और होटलों के ख़र्च जमा किये जावें तो १९११-१२ में मुक़दमा बाज़ी पर ३० करोड़ रुपये का अन्दाज़ा बहुत न होगा। इन बंकों से मुक़दमा बाज़ी का सत्या-नाश हो सकता है। ३० करोड़ रुपये बच सकते हैं, कृषि व्यापार; व्यवसाय और शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सुख की वृद्धि

हो सकती है। भारत में जो थोड़े से बंक प्रचलित हुए हैं उन्हों ने मुक़द्दमा बाज़ी को कुछ कम किया है।

पंजाब रिपोर्ट १९११ में लिखा है "जालन्धर के इलाके के सैंकड़ों ग्रामों से बनिये गुम हो गये हैं। मध्य पंजाब की कृषि की अवस्था में आक्रान्ति आरही है और पंजाबी किसान अपनी खेती के लिये स्वयम् धन दे रहा है। जालन्धर के डिवीज़न जज की सम्मति में ११०० दीवानी मुकद्मे—अभियोग इन विधियों के कारण एक वर्ष में कम हुए हैं"।

५. सरकारी नौकरों, शिल्पकारों, किसानों और मज़दूरों की बचत इन बंकों में रक्खी जा सकती है। एक तो सब बंकों से अधिक ब्याज मिलता है और दूसरा इन में रुपया खोये जाने का भय नहीं।

६. परस्पर सहायता, विश्वास और प्रेम के भावों की वृद्धि होती है। भारत वासियों में राग द्वेष कूट २ कर भरा है किन्तु यह बंक ईर्ष्या द्वेष को सर्वथा दूर करके सामूहिक उन्नति करायेंगे।

७. इन बंकों के द्वारा उत्साह, दृढ़ता, दूरदर्शिता, मित व्ययता के गुण किसानों में बढ़ते हैं। जर्मनी की राईन नदी की तराई में जहां उपर्युक्त बंक चिरकाल से पाये जाते हैं, सब

खेत लहलहा रहे हैं, वहां के कृषक अमीर हैं, कलाओं का खूब प्रयोग करते हैं, प्रति दिन उत्तरोत्तर धनी हो रहे हैं और स्वतन्त्र और सुखी रहते हैं।

८. पुरानी पंचायतें नगरों और ग्रामों में अब नहीं दीख पड़तीं किन्तु यह सहकारी बंक उन का स्थान ले सकते हैं।

९. छूतछात, जात पात के सब झगड़े मिट जांयगे। सब लोग एक दूसरे के भाई २ होंगे जैसा कि बम्बई प्रान्त में हडास्पर नामी ग्राम की निधि में ब्राह्मण, माली, महरट्टा, दर्ज़ी, धोबी, बानिया, मुसलमान, किरानी, चण्डाल, और अछूत जातियों में से कई आदमी उस के सभ्य हैं। साथ ही इन निधियों में धनियों और निर्धनियों के भेद नहीं रहते। जैसे रेलों की सवारी में जात पात, मज़हब और मिल्लत का भेद नहीं होता वैसे ही इन निधियों में सब लोग पहिले भारत वासी हैं और सामूहिक तौर पर वृद्धि करने के इच्छुक रहते हैं।

(१०) साहूकार लोग भी कम व्याज लेंगे—क्योंकि उन के रुपये की मांग थोड़ी हो जावेगी और किसान अधिक बुद्धिमान् होजाने से बनिये के हाथों में शीघ्र नहीं पड़ेगा।

(११) मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों और बंकों के सिद्धान्तों के समझाने में यह बंक बहुत सहायक हैं।

[१२] इन बंकों से कृषि, व्यापार, शिल्प, विद्या, सफ़ाई, अच्छे मकानों और सुन्दर पशुओं की वृद्धि होती है। दलदलों को साफ़ किया जाता है, भूमि को खादों से उन्नत किया जाता है और ग्राम के सुखार्थ कई साधन किये जाते हैं। जर्मनी में कृषि बंकों ने

पुस्तकालय	४५८	विद्यालय	१०८
रात्रि सभायें	६६	व्याख्यान भवन	२४
बालक सभायें........	२३	भिन्न विद्यालय	२३७
बालकों की बचत के बंक........	१८१		

बनाये हैं। भारत में भी यही काम किया जा सकता है और इस के अतिरिक्त निम्न लिखित कार्य्य हो सकते हैं:—

(i) प्रत्येक ग्राम में शिक्षित वैद्य और योग्य दाइयां रक्खी जासकती हैं। (ii) कृषि सम्बन्धी पत्रों के वाचनालय बनाये जा सकते हैं। (iii) परीक्षा क्षेत्रोंका प्रबन्ध हो सकता है। (iv) कृषि सम्बन्धी पुस्तकों और पत्रों को सुनाने का प्रबन्ध हो सकता है (v) मुफ्त बाधक शिक्षा बालक और बालकाओं को दी जा सकती है, नये २ पौदों के मंगाने का प्रबन्ध हो सकता है। (vi) जिन कृषकों के पास भूमि नहीं

उन्हें भूमि लेने और जिन के पास अपनी भूमि है उन्हें भूमि में उन्नति करने की उत्तेजना दी जा सकती है।

(१३) इन बंकों को जो बचत हो उस का कुछ अंश गेहूं और चावलों के रूप में रक्खा जा सकता है ताकि यदि दुष्काल पड़े तो सभ्यों को सस्ता अनाज मिल सके और यदि दुष्काल न पड़े तो बाज़ार में बेचा जावे।

(१४) बचत के रुपये से कृषि सम्बन्धी कलाएं और उत्तम औज़ार ख़रीद कर बंक अपने पास रक्खें और अपने मैम्बरों को किराये पर वे औज़ार और कलाएं दें। इस से बचत और भी बढ़ेगी-किसानों को भी लाभ होगा।

(१५) सहकारी बंकों का मुकाबला जब साधारण बंकों से किया जावे तो निम्न लिखित लाभ प्रतीत होते हैं:— (i) उधार लेने वाले किसान को अपना काम रोक कर नगर के किसी साहूकार के पास नहीं जाना पड़ता, प्रत्युत उस के गांव में ही बंक मौजूद है। (ii) इन बंकों में उसी गांव का धन संचित होता रहता है, सचमुच बिन्दु २ से तालाब भरने का दृश्य इन बंकों में दीख पड़ता है। (iii) यह बंक छोटी रक़में भी उधार पर देते हैं किन्तु साधारण बंक ऐसी छोटी रक़में इतने सूद पर कम दिया करते हैं। (iv) इन बंकों के चलाने में कोई ख़र्च नहीं होता, सर्व कर्मचारी निर्वेतन काम करने वाले होते हैं या होने चाहियें (v) बंक के चलाने में जो लाभ हों वे भी ग्राम में रहते हैं—"अंधा

बांटे रेवाड़ियां फिर २ अपनों को दे" का सिद्धान्त यहां लगता है। (vi) बंक के लाभ सभ्यों और उधार लेने वालों में बांटे जाते हैं। यदि कभी हानि हो तो उस का दुःख ग्राम तक ही परिमित रहता है। [vii] राज और ग्रामीणों के दरमियान मध्यस्थों का काम यह बंक करते हैं।

(१६) यतः इन बंकों से केवल उन्हीं कृषकों को जो विश्वास पात्र हों-ऋण मिल सकता है, अतः कृषक मद्यादि का पान छोड़ देते हैं। एक पादरी ने सत्य कहा है कि मेरे उपदेशों की अपेक्षा यह बंक धर्म्म कर्म्म फैलाने में अधिक कृत कृत्य हुए हैं। ग्रामीण लोग परस्पर एक दूसरे का चाल चलन जानते हैं और चूंकि ऋण का देना व न देना उन के हाथ में होता है, अतः प्रत्येक जन सदाचारी, मितव्ययी, कार्य्य में तत्पर रहने का प्रयत्न करता है ताकि उसे भी समय पर ऋण मिल सके।

सहकारी बंकों के चलाने में नीचे लिखी हुई बारह बातों का ख्याल रखना चाहिये।

(१) बहुत नक़द धन अपने पास न रखें। यदि वह धन जमा हो जावे तो सभ्यों को ऋण लेने में उत्साहित किया जावे या सैन्टरल बंक में रुपया भेज देना चाहिये।

(२) केवल चौधरियों, पञ्चों या धनाढयों को ही उधार नहीं देना चाहिये, बल्कि छोटे २ किसानों को ऋण लेने पर उत्साहित करना चाहिये क्योंकि उन्हीं के लिये ही तो यह बंक है।

(३) बेनामी उधारें नहीं होनी चाहियें। जब कभी बंकों के प्रधानों या मन्त्रियों को रुपये की ज़रूरत हो और वे अपने नामों पर उधार न लें बल्कि किसी मित्र को उधार दिलवा दें तो यह बेनामी उधारें कहलाती हैं।

(४) छोटे २ किसानों और शिल्पकारों को बंकों से व्यवहार करने की रीति अभी तक नहीं आई। जब वे उधार बंक को वापिस देते हैं तो अपना दिया हुआ प्रण पत्र-प्रोनोट वापिस नहीं लेते। कोई शठ मन्त्री वह रुपया ग़बन कर लेता है और किसान को रुपया फिर से देना पड़ता है—यह दोष हटाना चाहिये।

(५) उधार देते समय अधमर्णों की जायदाद तथा आचरणों की देख भाल करनी चाहिये। असावधानी करनी उचित नहीं।

(६) जब एक अधमर्ण बंक का पहिला रुपया अदा नहीं कर सकता तो उसे अधिक उधार नहीं देना चाहिये। ऐसे समयों में लज्जा करने की ज़रूरत नहीं।

(७) बंक का सब काम एक पुरुष के सपुर्द नहीं करना चाहिये। कई महाशय मिल कर काम करें, नहीं तो ऐसी ठगी होती रहेगी जिस का पता लगाना कठिन होगा।

(८) ऋण लेते समय अपने घरों की अवस्थाएं पंचायत को बताने में ग्रामीणों और शिल्पकारों को घबराना नहीं चाहिये, कृषि और शिल्प का आधार रुपये पर ही है। छोटी हैसीयत वाले आदमियों के पास नकदी कहां से आ सकती है? अतः निडर होकर और सदाचारी रह कर उधार लेना चाहिये। साथ ही बचत बंक में एकत्र करनी चाहिये।

(९) बंक के अपरिमित उत्तर दातृत्व से घबराना नहीं चाहिये। एक दूसरे को सहायता देने से परस्पर के दोष हट जावेंगे और धन की खूब वृद्धि होगी। एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं। मिल कर अर्थात् इर्ष्या द्वेष को छोड़ कर धन-वृद्धि करनी चाहिये।

(१०) प्रति वर्ष कुछ धन अवश्यमेव बचाना चाहिये और बचत (Reserve Fund) को व्यय नहीं करना चाहिये। आपत्ति के समय बंक का यही रक्षक होता है।

(११) सहकारी समितियों के चलाने के लिये पहिले पहिले कुछ रुपया चाहिये। हर एक दुकान के चलाने में पहिले प्रायः घाटा ही रहता है—लाभ की आशा कम होती है। वैसे ही बंकों, उत्पादक तथा क्रय विक्रय समितियों का धन पहिले पहिल कलाओं, मकानों और उन का सामान खरीदने में व्यय होगा—इस कारण आरम्भ में ही लाभ नहीं मिल सकता। कुछ मासों तक आत्म-त्याग करना पड़ता है।

(१२) सहकारी बंकों में धरोहर में रखने के लिये जो धन दिया जाता है उसे चिरकाल की उधारों में नहीं देना चाहिये। छोटी २ और अल्प कालीन उधारों में लगाना चाहिये। इन बातों पर व्यवहार करते हुए यदि सहकारी बंक चलाए जावें तो कृषि और शिल्प, धन और धर्म की बहु वृद्धि हो।

ग्रामीण बंकों में ऋणों की रक्षा का आधार तीन बातों पर है:—

[क] उसी किसान को ऋण दिये जाते हैं जो सत्यवादी, उत्साही और सदाचारी होता है। अतः ऋण के खोये जाने का भय नहीं होता।

[ख] दो ज़मानतें देने पर ऋण मिल सकता है। ज़मानत देने वाले पुरुषों की स्थिति भी बंक को ज्ञात होती है।

(ग) बंक को हानि होने पर बंक के प्रत्येक सभ्य का अपरिमित उत्तरदातृत्व होता है। अतः बड़ी सावधानी से बंक का काम चलाया जाता है। यही कारण है कि १८४६ से अब तक जर्मनी में ३००० सहकारी बंक होते हुए भी एक आने तक की हानि बंक के हिस्सादारों वा उत्तमर्णों को नहीं उठानी पड़ी।

देश हितैशियों से अपील—भारत में जो बंक खोले गये हैं वे जर्मनी का अनुकरण करके खोले गये हैं। इन बंकों को रफ़ाईसन बंक भी कहते हैं। रफ़ाईसन नामी महा पुरुष जर्मनी के एक अत्यन्त दरिद्र ग्राम का अधिपति था। उस ग्राम की

भूमि अनुपजाऊ थी, अन्य ग्रामों के साथ गमनागमन के साधन कठिन थे, अतः इस ग्राम के वासी सर्वदा दरिद्र रहते थे—अति श्रम करके भी उन्हें कुछ प्राप्त न होता था। उत्पत्ति करने के लिये जो धन उन्हें चाहिये था वह यहूदियों को बहुत सूद देकर लिया जाता था। परिणाम यह होता था कि उन की भूमि, अन्य सामान और उन के पशु यहूदियों के पास सदैव रहन रहते थे।

इस विपत्ति को देख कर रफ़ाईसन का हृदय पिघल गया। इस महा पुरुष ने उन की कठिनाईयों को दूर करने के साधन विचारने आरम्भ किये परन्तु जब वह लोगों की दशा देखता था तो बड़ी विचित्रता पाता था। उन में मितव्ययता, आत्मा सहायता, परस्पर सहायता का प्रेम, सामूहिक कार्य्य करने की महत्ता का ध्यान, धीरता आदि न थे। ऐसी दशा में उन्हें कौन ऋण दे सकता था? परन्तु उसी महान् पुरुष ने उन सब कठिनाईयों को दूर कर दिया। उस ने वे सहकारी बंक खोलने आरम्भ किये जिन के लाभ ऊपर बताये जा चुके हैं। इन के द्वारा जर्मनी—कि जिस की कृषी की दशा भारत से भी गई गुज़री थी—आज योरुप में शिरोमणि हो रहा है। जब कि सहकारी बंकों की रीति अन्य देशों में कृतकृत्य हो चुकी है और भारत में भी रफ़ाईसन के ग्राम की सी दशा नहीं है, तो यहां कृत कार्य्यता सुगमता से हो सकती है। यदि यहां कोई कठिनाई है तो एक रफ़ाईसन जैसे शक्तिशाली, आत्म त्यागी, दूरदर्शी महा पुरुष की है। यदि

कोई ऐसा पुरुष हो तो वह पत्थरों में से भी अन्न पैदा कर लेगा और दरिद्रता, अज्ञानता, ईर्षा द्वेष से भी विश्वास पैदा कर लेगा। यदि कोई ऐसा महानुभाव न हो तो भारत की इस विकट समस्या की पूर्ती करना कठिन है। आंग्ल राज्य की ओर से भारत में सहकारी बंक खोले गये हैं– उन की उन्नति की तरफ़ देश हितैषियों की आंखें लगी हुई हैं। परन्तु जब उन की कृत कार्य्यता प्रजा पर निर्भर हो तो गवर्नमैन्ट उस में क्या कर सकती है? जर्मनी में कृत कृत्यता गवर्नमैन्ट की तरफ़ से नहीं हुई क्योंकि वे लोग अच्छी तरह से जानते थे कि आत्म विश्वास और वैयक्तिक उत्तरदातृत्व इस राजकीय सहायता से नष्ट होते हैं।

अतः पुनरपि यही कहना पड़ता है कि भारत में रफ़ाईसन जैसे मनुष्यों के होने से ही काम चल सकेगा। धार्मिक वा राष्ट्रिक शिक्षा सम्बन्धी कामों में कई महा पुरुषों ने अपने जीवन दान दिये हुए हैं, पर क्या कोई एक वा दो भी ऐसे महापुरुष न निकलेंगे जो ९० प्रति शतक भारतीयों को निर्धनता, अविश्वास, ऋण से उत्पन्न होने वाली चिन्ताओं से बचा सकें और उन को सुख का मार्ग दिखा कर भारत की उत्पत्ति बढ़ावें तथा यश के भागी हों? बहुत से नवयुवकों

के लिये प्रसिद्धि प्राप्त करने का यह स्वर्णमय मार्ग उपस्थित है—अतः इस को हाथ से न गंवाना चाहिये।

सहकारी बंकों के अतिरिक्त अन्य सहकारी उद्योग भारत के लिये बहु उपयोगी होंगे। सहकारी बंकों से इनको सहायता मिल सकती हैं किन्तु उनको चलाने की अपनी २ विधियां होती हैं। उक्त सहकारी उद्योग दो प्रकार के हैं: उत्पादक सहोद्योग और व्ययी सहोद्योग।

उत्पादक सहोद्योग—एक वस्तु बनाने वाले भिन्न २ श्रमी मिल कर सब काम करते हैं, अर्थात् किसी कारखानेदार के आधीन न होकर स्वतन्त्रता पूर्वक स्वयम प्रबन्ध करते हुए पदार्थ उत्पन्न करते हैं। यहां पर संक्षिप्त वर्णन ही दिया जाता है।

भारतवर्ष में सहोद्योग के नमूने

इस समय तक निम्नलिखित सहकारी समितियां भारत वर्ष में मिलती हैं :

जुलाहा समिति............	२०	............भारत वर्ष	में
सहकारी भण्डार............	१	.... "	में
ईख समिति	१	............बनारस	में
चावल बेचने वाली.........	७	............बर्मा	में

पशु बीमा करने वाली......	२३	............बर्मा	में
खाद खरीदनेवाली.........	२	....बंगाल	,,
गेहूं निधि	५	....भारत	,,
कारखानों के मज़दूरों की...	१	............बम्बई	,,

समिति

बी०बी० एण्ड सी०आई० और जी०आई०पी० रेलवे में काम करने वालों की समितियां भी हैं।

गवालों की समितियां।

प्रयाग, लखनऊ और बस्ती में गवाला-समितियां बनाई गई हैं। यह बड़ी कामयाबी से काम कर रही हैं। किन्तु जर्मनी के साथ तुलना करिये तो आप को ज्ञात होगा कि वहां किस प्रकार सहस्रों गवाला-समितियों से शुद्ध दूध तथा मक्खन जर्मन जनता को दिया जाता है-तभी तो वे लोग खूब हृष्ट पुष्ट हैं- भारत वासियों को दूध दही मक्खन घी न मिलेगा तो कैसे बढ़ेंगे? इन गवाला-समितियों की बनाने की बड़ी आवश्यकता है। देखिये मांसाहारी देशों में गवालों की समितियां यूं हैं:—

जर्मनी................५००० फ्रांस............१०००

स्विटज़ैलैण्ड......२००० आयरलैण्ड........५००

डैन्मार्क..........२००० फिनलैण्ड.........५००

फ्रांस में २५००००००० डालर्ज़ का गौका दूध और ५०००००० डालर्ज़ का बकरी का दूध व्यय होता है, अर्थात् प्रत्येक नर नारी वा बालक के हिस्से में २३ रु० का दूध आता है। मांस से भरपूर होने वाली जाति में इतना दूध का खर्च है! दीन भारत वासी कुछ न खाते हुए अपने शरीरों को कैसे पुष्ट रख सकते हैं? यहां तो लाखों गोशालाएं होनी चाहियें जिन में विज्ञानुसार पशु पाले जावें, दूध दोहा जावे और मक्खन और मलाई निकाली जावे। पुरानी विधियां रोग वर्धक होने से हेय हैं। भारतवासियों को नगर २ और ग्राम २ में गवाल-समितियां बनानी चाहियें। पेन्शनरों के लिये यह अतीव उत्तम काम है।

निम्न लिखित समितियों की भारत वर्ष को आवश्यकता है:—

१. उत्तम २ बीज चुनने वाली समितियां और

२. पैदावार की भिन्न २ क़िस्में करने वाली समितियां होनी चाहियें ताकि अनाज की भिन्न २ किस्मों के लिये पर्याप्त क़ीमत मिल सके। इस समय अनाजों की क़िस्मों का

वर्गीकरण बनिया करता है और अपने श्रम का बदला लेता है किन्तु यदि किसान अपनी पैदावार की किस्में स्वयम् कर दे तो उसे अधिक लाभ हो।

३. उपज बेचने वाली समितियां।

४. पशुओं के बीमा करने वाली समितियां।

५. टिड्डी दल, अतिवर्षा, ओला, अनावृष्टि से फ़सलों का बीमा करने वाली समितियां।

६. पशु ख़रीदने वाली समितियां।

७. किसान के रोग और मृत्यु का बीमा करने वाली समितियां।

८. पशुओं की रक्षा करने वाली समितियां।

९. पशुओं का चारा पैदा करने वाली समितियां।

१०. गो परीक्षण समितियां जिन के सभ्यों का यह कर्तव्य हो कि वे किसानों के घर में जा कर गौओं के दूध के बढ़ाने और रोगों के निवारण करने की शिक्षा दें।

११. पक्षियों और मुर्गियों के बढ़ाने वाली समितियां।

१२. कलाओं के प्रयोग कराने वाली समितियां--जर्मनी में ६०० से ७०० तक बिजली देने वाली समितियां हैं। इन की बिजली से किसान लोग अपने मकानों को प्रकाशित करते हैं और अपनी कलाएं चलाते हैं या दूध से मक्खन निकालते हैं।

१३. ग्रामों की सफ़ाई कराने वाली समितियां।

१४. फ़सलों का भ्रमण (Rotation of crops) सिखाने वाली समितियां।

१५. सन्तानोत्पत्ति करने वाले बैलों, घोड़ों और दुम्बों को रखनेवाली समितियां। डैन्मार्क में घोड़ों के उत्पन्न करने वाली २७०, सूअर उत्पन्न करानेवाली २५३ समितियां हैं जिनके द्वारा किसानों के पशुओं की क़ीमत खूब बढ़ जाती है।

१६. गुड़ निकालने वाली समितियां।

१७. ग्रामीण व्यवसायों की उन्नति कराने वाली समितियां।

१८. विदेश में शिक्षा प्राप्त कराने वाली समितियां। एवम् बहुत प्रकार की अन्य समितियां भी हो सकती हैं। वस्तुतः कोई ऐसा काम नहीं जो इन समितियों के द्वारा अतीव लाभदायक न बनाया जा सके। इस लिये भारत वासियों को इन की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

उत्पादक सहोद्योग की कठिनाइयां।

१. कार्य्य के अधिष्ठाता के चुनाव वा उसे बहुत समय तक रखने में वा काफ़ी वेतन देने में कामयाब होना कठिन है क्योंकि यदि अध्यक्ष बहुत तजर्बेकार पुरुष हो, तो वह अपनी लियाक़त के लिये वेतन काफ़ी लेगा नहीं तो वह अपना स्वतन्त्र कार्य्य चला लेगा। परन्तु बड़ी वेतनों के देने से श्रमी-

मज़दूर लोग घबराते हैं। दूसरी ओर यदि कार्य्याध्यक्ष साधारण योग्यता का मनुष्य हो तो मज़दूरों को लाभ नहीं होगा।

२. यह निपुण अधिष्ठाता प्रायः उस परिश्रम, सावधानी और प्रेम से कार्य्य नहीं करते जिस से अपने कार्य्यों को करते हैं-यह बात स्वभाविक ही है।

३. प्रबन्ध कर्त्री सभाओं के सभासद आपस में लड़ते रहते हैं, अतः कार्य्य उस फुरती से नहीं होता जिस से स्वतन्त्र चतुर अधिष्ठाता स्वयमेव करता है।

४. बड़ा दोष तो यह है कि प्रत्येक मज़दूर को किस प्रकार नियत किया जावे। प्रत्येक को एक सी मज़दूरी नहीं मिल सकती क्योंकि चतुराई भिन्न २ होती है।

५. यदि भिन्न २ वेतन प्रत्येक को उस की निपुणतानुकूल मिलते हैं तो कौन इन वेतनों को नियत करेगा? कौन कहेगा कि अमुक मज़दूर अमुक कार्य्य करे और ज़ियादह वेतन ले, जब कि एक दूसरा मज़दूर अपने आप को पहिले से अधिक निपुण ख्याल करता है।

(६) जब व्यापार की शिथिलता से काम में हानि हो तो सहोद्योगी मज़दूर घाटा पूरा नहीं कर सके।

अतः यह मज़दूर ऐसा कार्य्य कर सकते हैं जिस में (१) थोड़े से मनुष्य मिल कर काम कर सकें जिस में (२) उन सब का हुनर और बल एक सा व्यय होता हो, जिस में (३) आरम्भ में औज़ारों

पर बहुत ख़र्च न हो जिस में (४) उत्पन्न वस्तुएं उन के अपने नगर में बिक जावें या जिस में (५) (Supply and Demand) मांग और उपलब्धि में भेद न आवें। फ्रान्स में निम्न लिखित कार्य्यों में सहोयोग कामयाब हुआ है, इन्हीं कामों में भारत में भी कामयाबी हो सकती हैः—

घरों की रंगसाज़ी व सजावट, बाजे बनाना, दर्ज़ी के कार्य्य, ऐनकें बनाना, तर्खानी, टोकरे बनाना, गैस बनाना आदि। प्राचीन भारत में भी बहुत से कार्य्यों में सहोयोग था, अतः उसे पुनर्जीवित करना चाहिये।

Consumptive—व्यय सम्बंधी सहोयोग—इस से मज़दूर लोग अपनी दुकानें निकाल कर अपने आपको सहल रीति से जीवनोपयोगी वस्तुएं देते हैं ताकि उत्पादक सहोयोग से जो उन की वेतन बढ़ी है, उस वृद्धि से और भी अधिक लाभ हो। क्योंकि अपनी दुकानें खोलने से उन्हें फुटकर और थोक व्यौपारों से जो अन्य पुरुषों को लाभ होते हैं, वे दोनों लाभ उन को होंगे! सहकारी भण्डार सर्व देशों में खुलते जाते हैं वे भारत में भी खोलने चाहियें। इन का संक्षिप्त वर्णन ही दिया जाता है :

उन के लाभ भिन्न २ हैंः—

(१) फुटकर लाभ सर्व हिस्सेदारों में बांटा जाता है।

(२) ऐसी दुकानों को इश्तहार नहीं देने पड़ते, नां ही लोगों की दृष्टियों को खेंचने के लिये बड़ी २ अल्मारियों में वस्तुएं

सजा कर रखने का व्यय उठाना पड़ता है व ना हीं बड़े मकान महंगे किराये वाले लेने पड़ते हैं। बाज़ार में बड़ी दुकानें सारा दिन खोलनी पड़ती हैं। किन्तु मज़दूरों के आने के समय हीं सहकारी दुकानें खोलना पर्याप्त है!

(३) दुकान में बहुत कर्मचारी न रखने से ख़र्च कम हो जाता है। यह कर्मचारी मज़दूरों के आने के समय ३ घन्टों के लिये थोड़े वेतन पर रखे जाते हैं।

(४) उधार न देने से बहुत सा रुपैया बच जाता है। नक़द रुपया मिलने से कार्य्य में शीघ्र लग सकता है और रुपया खोया भी नहीं जाता।

(५) इन सब बातों के होते हुए वस्तुएं अच्छी मिलती हैं उन में मिलावट नहीं होती व तोल तथा माप में पूरी मिलती हैं। दुकानदारों के धोखे नहीं होते।

जर्मनी में सहकारी समितियों की वृद्धि

वर्ष	सहकारी निधि	क्रय समिति	गवालों की समिति	भिन्न	सम्पूर्ण
१८९०	१७२८	५३७	६३९	१०१	३००६
१९०५	१३१८१	१८६७	२८३२	१४४३	१९३२३
१९१२	१६७७४	२४१७	३४७५	३३६०	२६०२६

डैन्मार्क में सहकारी समितियां ।

दूध वाली समितियां	११५७
पशुघात शालाएं	३४
वस्तु क्रेता	१५
गाय बैल विदेश भेजने वाली	१२७५
अण्डे ,, ,, ...	१५
अण्डों के बेचने वाली	१८६५......६ १९०९...५५०
घोड़ों ,, ...	२७०
सूअरों ,, ...	२५३
भेड़ों ,, ...	१०२

इन देशों के साथ भारत का मुकाबला करने से इस देश की नीच स्थिति पूर्णतया प्रकट हो जाती है । अतः उन समितियों की बृद्धि के लिये सिर तोड़ यत्न करना चाहिये।

सारांश ।

१. भारत में तीन प्रकार के सहकारी बंक मिलते हैं, ग्रामीन, नागरिक और सैन्टरल ।

२. सहकारी बंकों की प्रशंसनीय उन्नति हुई है, ।

३. इन बंकों के ६ व्याप्त गुण हैं ।

४. ७ कारणों से भारत में इन बंकों की महती आवश्यकता है ।

५. सभ्य देशों के मुकाबले में भारत में ये बंक न होने के बराबर हैं।

६. सहकारी बंकों के अद्भुत लाभ हैं और उन में ऋणों की भी रक्षा रहती है किन्तु उन को कामयाबी से चलाने के लिये १२ बातों का ख्याल रखना चाहिये।

७. देश हितैषियों को उन की उन्नति में तन-मन-धन दना चाहिये।

८. निधियों के अतिरिक्त सहकारी समितियां भी अति उपयोगी हैं, उत्पाद तथा व्यय सम्बन्धी समितियों के बहुत लाभ होते हैं। भारत में उत्पादक समितियों का अभाव है, उसे कम से कम १८ प्रकार की सामितियों की ज़रूरत है, उन के चलाने में अवश्य कठनाइयां हैं किन्तु उन्हें दूर कर के जर्मनी और डैन्मार्क के समान उन्नत होने की चेष्टा करनी चाहिये।

निर्देश

W. Wolff. *Co-operation in Agriculture.*
Koropotkin. *Mutual Aid.*
Encyclopaedia Britannica. *Co-operation.*
Wealth of India (back vols.) *Co-operation.*
Reports of the In. In. Conference. *Co-operation.*
Reports on the Credit Co-operative Societies.
B. Jones. *Co-operative Production, 2 Vols.*

अध्याय ११

कृषि में राज का कर्तव्य।

संयुक्त प्रान्त अमेरीका, जर्मनी और जापान के राज्यों ने अपनी शिक्षित, धीर, धन की पुजारी, उत्साहिनी प्रजा को सहस्र प्रकार से कृषि की उन्नति के लिये सहायता दी है। भारत कृषि प्रधान देश होता हुआ भी राज्य से वस्तुतः कोई सहायता नहीं ले रहा। २०वीं शताब्दी के आरम्भ से राज्य ने कुछ सहायता करनी शुरू की है-किन्तु अभी पग ही उठाया है। इस देश में कृषि की उन्नति की अतीव आवश्यकता है-इस कारण राज्य निम्न प्रकार से प्रजा को सहायता देवे तो इस देश का शीघ्र कल्याण हो सकता है।

१. मुफ़्त बाधक शिक्षा (Free compulsory education) सब को दी जावे।

२. जब तक यह नहीं होता तब तक रात्रि कृषि-पाठशालाएं और रात्रि भाषा-पाठशालाएं प्रत्येक ग्राम में खोली जावें।

३. प्रत्येक दश ग्रामों के लिये एक एक कृषि-अध्यक्ष और एक मिस्तरी नियत किये जावें-यह कृषि महाविद्यालयों (कालजों) के ग्रेजूएट्स हों ताकि किसानों को निम्न रीति से सहायता दें:—

(क) खेतों पर कैसा-किस किसम का-हल चलाएं ?

(ख) हर एक किसान की भूमि के लिये और भिन्न २ फ़सलों के लिये कौनसी खाद सस्ती तथा उत्तम हैं ?

(ग) किन २ कलाओं के प्रयोग करने से पैदावार बढ़ सकती है? कलाओं का प्रयोग कैसे करें यह सिखाया जावे और जब कोई कला बिगड़े तो मिस्तरी से ठीक करा दें।

(घ) जल देने की सस्ती तथा उत्तम रीतियां कौनसी हैं?

(ङ) कौन्से नये पौदे, सबज़ियां, फल किसान की भूमि पर अधिक हो सकते हैं ?

(च) पशुओं के चारे के लिये अलफ़ाफ़ा, कलोवर, वैच, केकटस, कान्टेदार पेअर (Prickly pear) कसावा, चरी, दालों आदि में से कौन्सा पदार्थ उत्तम और ऋतु अनुसार है ?

(छ) खादों तथा चारे के रक्षित रखने तथा उन्हें उत्तम रीति से प्रयुक्त करने के साधन सिखावे।

(ज) खुश्क खेती (Dry Farming) की रीति सिखावे।

(झ) जिन फ़सलों का भ्रमण (Rotation of crops) लाभदायक हो उन्हें पैदा करावे।

(ञ) प्रत्येक फ़सल के लिये उत्तम २ बीज सरकार की ओर से साधारण कीमत पर मिलने चाहियें। हर दश ग्रामों में बीजों के लिये एक भण्डार हो जहां भिन्न किस्मों के बीज रहें और उन की उत्तमता का परीक्षण पूर्व हो चुका हो— वे किसानों को दिये जावें।

(ट) पशुओं के पालने की विधियां किसानों को सिखाई जावें—उन के कई रोगों का ध्यान रखा जावे। उन की वृद्धि के लिये किसानों को उत्साहित किया जावे तथा सरकार हर तहसील में उत्तम बैल, घोड़े, बकरे, सूअर दुम्बे रखे जो उत्पत्ति का काम कर सकें।

(ठ) किसानों के पशुओं को प्रदर्शनियों में भिजवाने का प्रबन्ध करे।

(ड) चरागाहों और जलाने की लकड़ी की कमी को हटावे।

(ढ) हड्डियों, गोबर, खलों के प्रयुक्त कराने में यत्न करे।

(ण) भारती सरकार वा अन्य जनों की ओर से कृषि सम्बन्धी जो पत्र वा पुस्तकें छपती हैं, उन्हें रात्रि के समय स्वयम् या जो शिक्षित पुरुष ग्रामों में हों उन के द्वारा किसानों को सुनावे।

(त) प्रत्येक फ़सल के रोग किसानों को बतावे और जो कीड़े उन की फ़सलों को ख़राब कर सकते हैं—उन का ख्याल रखे। जहां कहीं वे कीड़े कृषि-अध्यक्ष के दृष्टि गोचर हों- उन के नाश की औषधि का प्रबन्ध करे।

(थ) रेशमी कीड़ों और मधु मक्खियों के पालने की विधियां सिखावें। रेशम निकालने में किसानों को सहायता दें। राज्य की सहायता से जापान ने रेशम के काम में काफ़ी उन्नति की है। संसार में रेशम की उत्पत्ति यदि १०० मानी जावे तो जापान की यह दशा है :

	उत्पन्न रेशम		जापान के निर्यात		चीन के निर्यात
१८९७—	३३. ६	......	२०.६	......	२४.०–
१९०७—	३५. ८	......	२६.५	......	२७.५–

भारत में रेशम और शहद की उत्पत्ति खूब बढ़ सकती है। खेती के अतिरिक्त यह काम करने से किसानों की आमदनी बहुत बढ़ जावेगी। अतः विशेष अध्यक्ष नियत करने की ज़रूरत है।

४. भ्रमणीय पुस्तकालयों (Circulating Libraries,) की रीति से कृषि के विज्ञान देने वाली पुस्तकें बान्टी जावें।

५. कृषि सम्बन्धी समाचार पत्र बहुत ही सस्ते निकाले जावें और वे देश भाषा में हों। युक्त प्रान्त अवध और आगरा में 'देहाती' और 'मुफ़ीदुउल मुज़ारयीन' नामी पत्र निकाले जाते हैं किन्तु उन का प्रचार बहुत थोड़ा है।

६. कृषि सम्बन्धी तजरुबों की पत्रिकाएं अंग्रेज़ी में छपती हैं—इन से किसानों को क्या लाभ है? क्रोड़ों पत्र देश भाषा में जिसे किसान लोग शीघ्र समझ सकें-छप कर हर साल मुफ़त बान्टे जाने चाहियें। संयुक्तप्रान्त अमेरीका में जहां लग भग २ क्रोड़

आदमी कृषि में लगे हैं–१८६७ से १९१२ तक पुस्तकों की २२५०००००० प्रतियां सरकार की ओर से बट चुकी हैं। १९१२ में ही १०००००००० प्रतियां बांटी गयीं, अतः उस हिसाब से भारत में ८ क्रोड़ प्रतियां हर साल बांटी जानी चाहियें। किन्तु भारत का सारा धन ही कृषि में है, इस कारण यहां सरकार को बहुत उदार होना चाहिये।

७. कृषि के साथ २ जो गौण पेशे सुगमता से किये जा सकते हैं–उन के सम्बन्ध में सरकार की ओर से मुफ़्त पुस्तकें बांटी जावें और कृषि–अध्यक्ष इन पेशों की वृद्धि की और पूरा ध्यान दें। रेशम के कीड़ों और मधु मक्षिका का पालना, अंडे देने वाले जानवरों का पालना–भारत में बत्तखों, मुर्गाबियों, मुर्गियों और शुत्तरमुर्गों और कई परिन्दों के पालने का काम बहुत लाभ-दायक हो सकता है–नदी के तटवर्ती ग्रामों में मच्छली पकड़ने और उत्साही पुरुषों को मगरमच्छ (मकर) पकड़ने पर उद्यत करना चाहिये। चिड़ियाघरों और पशु परीक्षण शालाओं में जीवित मकरों की काफ़ी मांग है और मरे हुए मकरों की खालों के बटुए तथा थैले (hand-bags) बनाये जाते हैं। संयुक्त-प्रान्त अमेरीका में १० वर्षों में ५०००००० मकर मारे गये। भारत की नदियों में इन की अधिकता है, इस लिये मकरों क पकड़ने से यहां भी धन कमाया जा सकता है। योरुप में मकर क्षेत्र, मूंगाक्षेत्र, सर्पक्षेत्र, स्पंजक्षेत्र, तित्रीक्षेत्र, और मेंडक क्षेत्र,

आम हैं, कनाडा के बैन्सफोर्ड नामी स्थान से ही संयुक्तप्रान्त अमैरीका में ५०००००पाउण्ड्ज़ भार में मेंडकों की टांगें एक वर्ष में जाती हैं। संयुक्तप्रान्त अमैरीका में १८६६ में १३६८६१८७७ डालर्ज़ के अण्डज-जीव और १४४२८-६१८६ डालर्ज़ के अण्डे किसानों ने बेचे। जहां फ़सलों की पैदावार यहां से दुगनी तिगुनी है वहां साथ ही किसानों को पशुओं और अण्डजों के पालने का शौक़ है इस लिये माला माल हो रहे हैं। इस विषय पर देश निवासियों और सरकार ने अभी ध्यान नहीं दिया—बहुत ही ध्यान देने की आवश्यकता है।

मच्छली पकड़ने से प्रजा की आय

देश	वर्ष	आय
संयुक्त राज.........	१६०२	१०६६३००० पा०
जर्मनी	१६०७	१४००००० पा०
फ्रांस	१६०५	५०००००० पा०
नारवे	१६०५	१७००००० पा०
कानाडा	१६०६	५४००००० पा०

डैन्मार्क में पशुओं की वृद्धि

१८९३	....	५६	लाख मुर्गियां
१९०४	....	११८	लाख ”
१८८१	....	५२७४००	सूअर
१९०९	....	१४६६८००	”
१८८१	....	६०००००	गौवें
१९०७	....	१२८२०००	”
१८९८	....	४५० गैलन्स प्रतिवर्ष दूध प्रतिगाय	
१९०८	....	५८५	”

इस बारे में जापान की उन्नति देखियेः—

वर्ष	मुर्गियां	अंडे	एक मुर्गी के प्रति अंडे
१९०६	१६२५००००	५९३५००००००	७४
१९०८	१९२५००००	७५३७००००००	८१

८. रिश्वतखोरी—साधारण किसान राज कर्मचारियों से तंग रहता है। चौकीदार, सिपाही, थानेदार, पटवारी, कानूंगो, ज़िलेदार, नाइब तहसीलदार, तहसीलदार और दौरे पर आने वाले अंग्रेज़ों के नौकर-यह सब अपनी २ बारी में किसानों से प्रायः धन लेते हैं। सत्य तो यह है कि किसान की ज़िन्दगी तंग रहती

है। सरकार को अवश्यमेव कड़े नियम बनाने चाहियें किन्तु साथ ही अपने कर्मचारियों का भी ख्याल करना चाहिये। हर एक कर्मचारी का वेतन गुज़ारे लाइक होना चाहिये। दस रुपयों में एक पटवारी परिवार की पालना कैसे कर सकता है ? इस सम्बन्ध में शुक्रनीति का श्लोक स्मरणीय है:—

ये भृत्याः हीनभृतिकाः शत्रवस्तेस्वयं कृताः।
परस्य साधकास्ते तु छिद्रकोश प्रजाहराः॥

जो राज कर्मचारी अल्प भृत्ति लेते हैं, उन्हें राजा स्वयं शत्रु बनाता है। वे राज शत्रुओं को सहायता देते, राज-आय ग़बन करते और प्रजा को लूटने वाले होते हैं। इस लिये छोटे २ कर्मचारियों की वेतनें अवश्य दुगनी तिगुनी कर देनी चाहियें।

(९) स्थिर लगान—भारत के भिन्न २ इलाकों में बन्दोबस्त की भिन्न विधियां प्रचलित हैं। आवश्यकता है कि सब स्थानों पर से वार वार के बन्दोबस्त की प्रथा हटा कर स्थिर लगान कर दिया जावे।

१०. भारतवर्ष में फ़क़ीरी का बड़ा ज़ोर है–कम से कम ३०००००० फ़क़ीर सारे भारत में हैं–इन में साधु शामिल नहीं हैं। एक ऐसा नियम बनाना चाहिये कि कोई पुरुष भिक्षा न मांग सके ताकि भारत के सैंकड़ों अनुत्पादक नरनारी कोई काम करें। भिक्षा मांगने वाले बालकों, वृद्धों तथा नारियों को कङ्गाल घरों में रखा जावे और जवानों को परीक्षणक्षेत्रों में खेती सिखा कर

कहीं भूमि दे दी जावे ताकि कृषि योग्य किन्तु बंजर भूमि को वे आबाद करें। पहिले ५ वर्षों के लिये उन से लगान न लिया जावे–इस प्रकार फ़कीरों की बस्तियां ५ वर्षों में उत्तम किसानों की बस्तियां हो जावेंगी और भारत की पुण्य भूमि से भिक्षा की बला शीघ्र दूर होगी।

११. कृषि कालजों में इस समय विद्यार्थियों की संख्या अतीव न्यून है। किसानों के पुत्रों की शरत हटा दी जावे। जो कोई प्रवेश करना चाहे–उसे दाखि़ल होने दिया जावे और जैसे हम पूर्व कह आये हैं–ऐसे विद्यार्थियों को कृषि-अध्यक्ष बनाया जावे। लगभग ६०००० कृषि अध्यक्षों की आवश्यकता होगी। यदि इन कालजों के विद्यार्थियों को अच्छे पद मिलें तो बहुत से नौजवान उन में प्रवेश करें। हमारी सम्मति में इन कालजों को सर्वप्रिय करने के लिये यह विधि भी उपयोगी होगी कि उन के सुयोग्य विद्यार्थियों को सरकार की ओर से भूमियां मिला करें। नहरों के समीप जो ग़ैर आबाद भूमियां हैं–उन विद्यार्थियों को दान में दी जावें। यदि मूल्य लेना हो तो किस्तों के द्वारा लिया जावे, ताकि वे सुगमता से दे सकें।

अभिप्राय यह है कि राज्य का कर्तव्य बड़ा विस्तृत और महान् है और उस के भिन्न २ मार्ग हैं। राज्य की सहायता से सभ्य देशों में कृषि बढ़ी है, [illegible] यहां भी उसी साधन से बढ़ सकती है। अतः राज्य को [illegible]र्तव्य करने में पीछे नहीं रहना

चाहिये । साथ ही भारत वासियों को स्वयम् भी अपने पगों पर खड़े होने की विधि सीखनी चाहिये । जब तक राज्य सहायता नहीं देता, तब तक स्वयम् उदाराचित हो कर यत्न करना चाहिये ।

सारांश

कृषि में राज्य के बड़े २ कर्त्तव्य ये हैं:—

१. मुफ़त बाधक शिक्षा का देना या रात्रि पाठशालाएं खोलना ।

२. कृषि-अध्यक्षों और कलों के सुधारने वाले मिस्त्रियों का नियत करना ।

३. भ्रमणीय पुस्तकालय बनाना ।

४. सस्ते समाचार पत्रों का निकालना ।

५. क्रोड़ों कृषि-पत्रिकाएं मुफ्त बांटना ।

६. कृषि सम्बन्धी गौण पेशों की खूब बृद्धि करना ।

७. रिशवतखोरी का बन्द करना ।

८. स्थिर लगान की रीति चलाना ।

९. भिक्षा के विरुद्ध नियम पास करना और इस समय जो फ़क़ीर मिलते हैं उन्हें कृषक बनाना ।

१०. कृषि कालिजों की संख्या [illegible] कर उन में किसानों के पुत्रों के सिवाय सब को पढ़ने की [illegible]

अध्याय १२

मनुष्य कैसा होना चाहिये ?
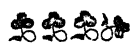
जातीय भिन्नता-उत्पत्ति के एक साधन पृथ्वी की व्याख्या हो चुकी है, अब हम दूसरे साधन मनुष्य की आर्थिक योग्यताओं, शक्तियों, भूलों व निर्बलताओं का वर्णन करते हैं। उत्पत्ति का यही बलिष्ठ कारण है यही दूसरे प्रधान कारण को यथेच्छा बदल कर अतीव सुखी हो सकता है। याद रखिये कि मनुष्य सामाजिक और राष्ट्रिक जीव है। इसी कारण अन्यों के सुखदुःख से प्रभावित हो कर उसे जीवन व्यतीत करना पड़ता है। एकाकी अपने कर्मों से ही मनुष्य सुखी दुःखी नहीं होता। एवम् समाज की भूत तथा वर्तमान कालों की सब अवस्थाएं जिन में वह पैदा हुआ है-उस मनुष्य के बनाने में बड़ा काम करती हैं-प्रायः मनुष्य इन्हीं अवस्थाओं का पुत्र कहला सकता है। भारत में पैदा होने वाले बालक को उन्नति के वे अवसर नहीं जो अमेरीका, जापान, इङ्गलैण्ड और जर्मनी में पैदा होने वाले बालक को हैं और संस्कारों की पैत्रिक सम्पत्ति भी उक्त देशों में भिन्न है। अतः जाति जाति की शक्तियों में कर्म-शक्ति व [illegible]क योग्यता भिन्न होती है।

२. काम करने वालों की उत्पादक शक्ति—आप को मालूम है कि इंगलैंड की बनी हुई सैंकड़ों वस्तुएं यहां आ कर बिकती हैं और यह भी पता है कि उन में से कई पदार्थ इस देश में बनते हैं परन्तु विलायती वस्तुएं सस्ती होने के कारण अधिक ख़रीदी जाती हैं। किन्तु क्या कभी आप ने विचारा कि विलायत में बुना हुआ वस्त्र यहां सस्ता क्यों बिकता है? वस्तुतः वह मंहगा होना चाहिये क्योंकि (i) अमैरीका, मिश्र और भारतादि देशों से विलायत में कपास जाती है-इस लिये रेलों, जहाज़ों, बैल गाड़ियों, ट्रैम्बे, बन्द्रगाहों का किराया, माल उतारने और चढ़ाने वाले कुलियों और व्यापारियों के श्रमों का बदला विलायत के कारख़ाने वालों को देना पड़ता है। (ii) वहां के पुरुष—श्रमियों को २८ शिलिंग (२१ रु०) साप्ताहिक मज़दूरी मिलती है जब कि यहां अधिकतम ५ रुपया मिलती है। (iii) वहां रेलों और मकानों का किराया भी अधिक है। (iv) वहां से फिर रेलों और जहाज़ों में लद कर वस्त्र यहां आता है। इन सब के अधिक होते हुए भी बम्बई में बनने वाले वस्त्र से विलायती वस्त्र सस्ता बिकता है॥

ऐसी दशा में विलायत वालों के हाथों में क्या चमत्कार (किरश्मा) है कि जिस से वे ऐसे सस्ते पदार्थ बना लेते हैं? वह एक करिश्मा नहीं बल्कि चार करिश्मे हैं?

(क) वहां के श्रमियों में काम करने की शक्ति बहुत अधिक है ॥

(ख) कारखानों के अध्यक्ष बड़े अनुभवी और कार्य्य कुशल होते हैं ॥

(ग) बहुत कम व्याज देना पड़ता है ॥

(घ) सस्ते २ पदार्थ बनाने की नई २ विधियों का प्रति दिन आविष्कार किया जाता है अर्थात् साहसिकों और परीक्षकों की कमी नहीं। किन्तु भारत में इन सब बातों का अभाव है। अगले अध्यायों में पिछली तीन बातों की व्याख्या की जावेगी इस अध्याय में हम इस करिश्मे की व्याख्या करेंगे कि भिन्न देशों के निवासियों व एक ही देश के भिन्न प्रान्तों के निवासियों की कार्य्य करने की शक्ति (Efficiency of Labour) क्यों भिन्न होती है अर्थात् हम वे कारण दिखायेंगे जो नर नारी की कार्य्य क्षमता (कर्म शक्ति) को न्यूनाधिक (कमो वेश) करते हैं॥

भिन्न २ मज़दूर एक कार्य्य करते हुए एक ही समय में भिन्न २ मात्रा में उत्पत्ति करते हैं। इस भेद के बहुत कारण हैं। वे संक्षेप से नीचे लिखे जाते हैं:—

१. जातीय विशेषता—मनुष्यों की आत्मिक, मानासिक तथा शारीरिक अवस्थाएं भिन्न २ हैं। जैसे पांचो अंगुलियां समान नहीं व मनुष्य २ में बहुत भेद है, इसी प्रकार जाति २ में बहुत अन्तर है। उक्त तीन शक्तियों के समूह से जातियों में बहुत

भद हो जाता है। इसी कारण अमैरिका निवासी अंग्रेज़ों से,अंग्रेज़ फ्रान्सीसीयों से, फ्रान्सीसी रूसियों से, रूसी भारत वासियों से अधिक काम कर सकते हैं। मांझे का जाट और राजपूत साधारणतया पंजाबियों से अधिक काम करते हैं, पञ्जाबी हिन्दुस्तानी से अधिक काम करता है, किन्तु अफ़गान इन सब से अधिक काम कर देता है॥

भिन्न २ देशों के श्रमियों की कार्य्य-शक्ति का ठीक अनुमान नहीं मिलता, कोयला खोदने का अन्दाज़ा मिलता है। मैकालिधाड के अनुसार प्रति दिन एक श्रमी अमैरीका में ५ टन्ज़, संयुक्तराज में २½ टन्ज़ और भारत में ½ टन कोयला खोदता है, अर्थात् एक अमैरीकन १० भारतीयों और एक अंग्रेज़ ५ भारतीयों के बराबर काम करता है[1]। लार्ड मेहन ने अपने इतिहास में लिखा है कि एक अंग्रेज़ लकड़हारा ३२ भारती लकड़हारों के बराबर काम कर सकता है। हर एक भारती को जो संसार में जीवित और सुखी रहना चाहता है वाकर साहब के शब्द याद रखने चाहियें "व्यवसाय के क्षेत्र में सभ्य, नियन्त्रित, संगठित, और सुनेताओं के धारण करने वाली जातियां असभ्य जातियों के लिये ऐसी घृणा प्रकट करती हैं जैसी युद्ध क्षेत्र में"। एक

I. Industrial Conference Report 1907, 229 P.
2. Wages P.

विजेता ने कहा है कि "भेड़िये को परवाह नहीं कि कितनी भेड़ें उसके साथ लड़ने को आई हैं" ॥

एक दूसरे विजेता ने कहा है कि "घास जितना घना हो उतना शीघ्र काटा जाता है। जातियों की उत्पादक शक्ति में इतनी भिन्नता है कि उस के बारे में लिखते हुए अत्युक्ति का संशय पाठकों को हो जाता है यदि वह पाठक उत्पत्ति की अवस्थाओं और व्यवसाय की गणनाओं से अनभिज्ञ हो" ॥

अतः भारत वासियों को निश्चय करना चाहिये कि वे कब तक भेड़ों और घास की न्याई दूसरों का भक्ष्य बनने को तय्यार हैं। जब तक उनकी कर्मशक्ति नहीं बढ़ेगी तब तक वे अवश्य दूसरी जातियों का शिकार बने रहेंगे। इस कारण यह विषय भारत के लिये परमावश्यक है। देशहितैषियों और सुखाभिलाषी तथा धनकांक्षी जनों को उन साधनों के उपार्जन करने का विशेष यत्न करना चाहिये।

४. भोजन तथा वस्त्र की मात्रा—पेट भर कर भोजन और ठीक ऋतु अनुसार वस्त्र मनुष्यों को मिलते हों, तो वे उन की अपेक्षा अधिक कार्य्य कर सकते हैं जिन को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं। भिन्न २ देशों में १ मनुष्य की आय का व्यौरा निम्न लिखित है और यह नियम भी स्मरण रहे कि वैयक्तिक आय का ½ भाग भोजन तथा वस्त्रों में व्यय होता है। इस से ही जातियों के काम करने की शक्ति प्रकट हो जायगी :—

एक निवासी की १८६४ में प्रति दिन की आमदनी।

आस्ट्रेलिया	...	...	३० आने
सं.प्र० अमेरीका	...	...	३०
सं० राज	...	...	२४
कनाडा	...	...	२४
फ्रांस	...	...	२०
जर्मनी	...	...	१६
आस्ट्रिया	...	...	११
इटली	...	...	१०
भारत	....	....	$\frac{3}{4}$

इस आमदनी के अनुसार ही खर्च हो सकता है अतः अधिक आय वाली जातियां अधिक भोजन सामग्री खा सकती हैं। पदार्थों के सस्ते वा मँहगे होने के कारण उक्त ब्यौरे से ठीक अनुमान नहीं लग सकता कि भिन्न जातियों में क्या मात्राएँ भिन्न २ वस्तुओं की खर्च होती हैं।

इस लिये अन्य गणनाएं दी जाती हैं, इन से पता लगेगा कि जिन लोगों की कर्म शक्ति अधिक है वे अधिक भोजन तथा वस्त्रादि प्रयुक्त करते हैं। देखिये—

भिन्न देशों के प्रति निवासी का वार्षिक खर्च यह थाः—

पदार्थ	भारत	इंगलैण्ड	जर्मनी	प्र० अमेरिका
	सं० १९११	सं० १९०५	सं० १९०५	सं० १९०५
खाण्ड	२४.२६ पा०	८८	३७	७४
वस्त्र	१६ गज़	६७.८	...	...
मांस	...	११७	११४	१८५.८
गन्दम	...	६ बुशल	३.३	६.२
राई	...	.१	६.४	...
जौ	..	२.८	३.५	...
जै	...	५.३	८.६	...
मकई	...	२.२	.६	...
नमक	१५.५	७२	...	...
कहवा	...	.६७	६.६	११.३
कोको	...	१.०२	११७	...
मद्य	.०६५ पा०	२६.०	...	...
चाय	.०५२	६.४७	.१३	१.१९

भारत में निर्धनता के कारण थोड़े पदार्थ खाये जाते हैं— अतः यहां के लोगों में कर्मशक्ति भी कम है। भिन्न २ देशों में जो भोजन खाया जाता है वह भिन्न २ शक्ति देने वाला है यह नीचे के ब्यौरे से और भी स्पष्ट होगाः—

एक पुरुष निम्न गर्मी देने वाले अङ्कों का भोजन खाता है।

आङ्गल मज़दूर	... ...	३६९५
„ लोहार	... ...	४००७
जर्मन खेती का श्रमी	... ...	४६९६
फ्रांसीसी	... ...	४५६०
आङ्गल जुलाहा	... ...	३४७५
„ दर्ज़ी	... ...	३०५३
लोहकार (अमैरीका)	... ...	३४७०
निर्धन घराने के लोग न्यूयार्क में	...	२६९६
लण्डन की एक दर्ज़िन रु० २-१३ आने सप्ताह में कमाने वाली	...	२०८७
पुतली घर में काम करने वाली कन्या		१८२०
फौजी सिपाही-अमैरीका	...	२९४९
„ ... जर्मनी	...	२५९२
„ ... फ्रांस	...	२३१०

पाठक जानते हैं कि जिस एन्जन में कोयला न डाला जावे वह काम नहीं कर सकता वैसे ही जिस शरीर को भोजन नहीं मिलता व जिसे कम भोजन मिलता है उस की कर्मशक्ति न्यून रहती है। भारतीय लोग रूखी सूखी खाए के ठण्डा पानी पी कर गुज़ारा करने वाले हैं और लंगोटी में रहना आदर्श समझते थे—इस लिये उन की कर्मशक्ति न्यूनतम

थीं, किन्तु अब न्यूनता के कारणों का ज्ञान होने से कर्मरत होना चाहिये नहीं तो दूसरी जातियों के मुक़ाबले में हम ऐसे मर जावेंगे जैसे अफ्रीका और अमरीका में हबशी, न्यूज़ीलैण्ड में मेओरीज़ और पोलिनेशिया तथा आस्ट्रेलिया के असली निवासी मर रहे हैं।

५. स्नान—शारीरिक शुद्ध में आर्य्य जाति सर्वोत्तम है, इस में नित्य स्नान करना धर्म है, अन्य जातियों वाले इस बात में बहुत पीछे हैं, किन्तु भारत में जल वायु, वस्त्रों, मकानों, बाज़ारों, गलियों की सफ़ाई नहीं रखी जाती। अन्य देशों में धन, विद्या तथा राज सहायता के कारण लोग सफाई का बड़ा ध्यान रखते हैं हमारे देश में अविद्या, निर्धनता और राज सहायता न होने से सफाई का अभाव है। आम तौर पर नगरों में बड़ी गन्दगी होती है किन्तु हमारे ग्राम भी गन्दगी से भरपूर हैं। यहां के मकान भी बहुत तंग हैं और चूंकि सब भाइयों में जायदाद की बांट समान होती है इसलिये पिता के मरने पर सब भाई प्रायः एक ही मकान में रहते हैं–सोना, पकाना, उठना, बैठना एक ही स्थान में किया जाता है। पुत्र, पुत्री, स्त्री, बहू और गृहपति सब एक स्थान पर सोते हैं–इस से सदाचार तथा स्वास्थ्य का नाश हो जाता है–चीन, भारत और आयरलैण्ड में ऐसे दृश्य अधिक हैं।

भारत वर्ष में कूपों का जल प्राय: पान करने योग्य नहीं होता, हर तीसरे मास डाक्टरों से उसका परीक्षण कराना चाहिये और जहां तक होसके शुद्ध जल लेने के लिये प्रत्येक नगर और बड़े ग्राम में नलके लगवाने चाहियें ।

प्रति घर मनुष्यों की संख्या ।

भारत	सं० प्र० अमेरीका	इंगलैण्ड	जर्मनी
१८८१–५.८	५.६	......	.....
१८९१–५.४	५.५	५.३२	......
१९०१–५.२	५.३	५.२	८.९
१९११–४.९	....	......	......

इस ब्यौरे से स्पष्ट है कि अन्य देशों के मुकाबले में भारत में प्रति मकान में कम पुरुष रहते हैं यह भी हर्ष का समाचार है कि गत ३० वर्षों में घरों की संख्या बढ़ जाने से प्रति मकान कम पुरुष रहने लगे हैं क्योंकि १८८१ में हर एक मकान में ५.८ पुरुष रहते थे, किन्तु, १९११ में ४.९ मनुष्य रहने लगे। इस से भारत की आर्थिक दशा में उन्नति प्रतीत होती है ।

घरों की सफ़ाई और विशालता ।

ज़ब हम दूसरे देशों के साथ मुकाबला करते हैं तो हमें यह भी विचारना चाहिये कि घरों की विशालता और सफ़ाई में समानता है व भिन्नता ? अमेरीका, इंगलैण्ड और जर्मनी में मकान

कई कमरों वाले और पक्के हैं जिन में वायु और प्रकाश का गमनागमन अबाधित है, सर्दी के दूरीकरण के लिये गर्मी देने वाले नल लगे हैं और मकानों, ग्रामों तथा नगरों में शुद्धता विशेषतया दीख पड़ती है किन्तु भारत में मकान छोटे हैं, बहुदा फूस और कच्ची ईंटों के बने होते हैं, उन के फ़र्श भी कच्चे होते हैं। नगरों और ग्रामों में सफ़ाई का अभाव ही है। ऐसी अवस्था में यहां के निवासियों और सभ्य देशों के निवासियों में पृथिवी और आकाश का अन्तर हो जाता है॥

यद्यपि भारत में उन्नति हुई है तथापि इस विषय में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि रहन सहन की विधियां लोगों की कर्म-शक्ति पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। यदि कर्म शक्ति में अन्तर डालने वाले अन्य कारण समान हों तो मकानों की विशालता और शुद्धता के अनुपात से जातियों में कर्म शक्ति होगी।

६. बुद्धि—जिस जाति के पुरुषों की बुद्धि निर्मल और चतुर हो, वे अधिक कार्य्य कर सकेंगे। जब मन स्पष्टतया और शीघ्रतया बातों को समझ जावे, जब बातें स्मरण रहें और एक बात का सम्बन्ध दूसरी बात से मिलाने की शक्ति उपस्थित हो, तो बुद्धि का उपस्थित होना कहा जाता है। बुद्धिमान् श्रमी निर्बुद्धी श्रमी से बेहतर है क्योंकिः—

१. वह शीघ्र काम सीख जाता है।

२. उस के काम को देखने के लिये किसी अध्यक्ष (Superintendent) की आवश्यकता नहीं।

३. वह बहुत थोड़ा सामान ख़राब करता है।

४. कलाओं का उपयोग करना तो उसे शीघ्र आ जाता है, कलाओं के प्रयोग में अमेरिकन लोग सब से कुशल हैं क्योंकि विद्या के प्रचार से वहां के श्रमी बुद्धिमान् हैं। इसी प्रकार सदसद् की विवेचना शक्ति, आत्मिक बल, उत्साह, धीरता, कल्पना शक्ति, के गुणों का भावाभाव श्रमियों की उपयोगिता को बहुत बढ़ाता घटाता है। यह गुण विद्या से प्राप्त होते हैं॥

७. विद्या—जब एक बालक संसार में उत्पन्न होता है तो सामाजिक और पैत्रिक संस्कारों को लेकर आता है किन्तु वह अयोग्यता, अविद्या और काम का पुञ्ज ही होता है—माता, पिता, गुरु, पुरोहित तथा जाति, कृषिक्षेत्र या वर्कशाप उसे उक्त दुरावस्था से निकालने में भाग लेते हैं ताकि बड़ा हो कर वह बालक सत्यता से रोज़ी कमा कर अपनी, अपनी सन्तान, जाति, देश और परमात्मा की सेवा कर सके। इसी क्रम का नाम शिक्षा या विद्या है। जिस २ जाति में अल्प काल के लिये भी यह शिक्षा—क्रम तोड़ दिया गया उसी में सर्व विद्याओं

और कलाओं की अवनति हुई। देश निवासी मूढ़, निर्बल, लोभी, कामी, क्रूर, देश विद्रोही, अधर्मी, निर्धन हो गये। पुण्य भूमि भारतवर्ष की अवनति का बलिष्ट कारण यही था क्योंकि ब्राह्मणों ने अन्य वर्णों—शूद्रों, वैश्यों, क्षत्रियों और सब स्त्रियों के लिये शिक्षा बन्द करदी। इस कारण विद्या का प्रचार सामाजिक उन्नति का एक उत्तम बल्कि प्रथम साधन है।

शिल्प विद्या का प्रचार—जिस देश में शिल्प, कृषि तथा व्यापारिक विद्या का प्रचार हो, वहां की जनता थोड़ी बहुत शिल्प विद्या यूं ही सीख जाती है। देखिये जिस प्रकार का काम घर में होता है, वही काम बालक थोड़ा बहुत बिना सिखाये केवल देखने मात्र से सीख जाता है। वैसे ही कलाओं के प्रयोग का नियम है जिस मनुष्य ने कोई कला न देखी हो वह उस पर काम करने से घबराएगा। अतः शिल्प विद्या का प्रचार भारत में जितना हो सके—करना चाहिये। इस की विस्तृत व्याख्या अगले अध्याय में की जावेगी।

८. इन्द्रिय निग्रह—बालकपन और यौवन में ब्रह्मचर्य्य रखने, वीर्य्य की रक्षा करने और गृहस्थाश्रम में भी कामातुर न होने के सहस्रों लाभ हैं। जिन लोगों और जातियों में ब्रह्म-चर्य्य नहीं पाया जाता उन में आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री, धन, पुण्यादि का नाश हो जाता है—हिन्दुओं में ब्रह्म-

चर्य्य न होने के कारण ही इन बातों का लोप है। वीर्य की रक्षा से रोग और बृद्धावस्था का नाश होता है, और आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जीवन का मूल कारण है, इस लिये यत्न पूर्वक वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। वीर्यनाश करने वाले लोगों की सूरत पीली पड़ जाती है, इन्द्रियें कमज़ोर हो जाती हैं, आंखों का सौन्दर्य्य तथा तेज नष्ट हो जाता है, मांस ढीला पड़ जाता है, सदा उदासी छाई रहती है, अपने से भी घृणा हो जाती है, नपुंसकता बढ़ जाती है, स्मरणशक्ति और पाचनशक्ति न्यून हो जाती है, धीरता, वीरता, नवीनता, उत्साह का लोप हो जाता है, किसी काम में मन नहीं लगता, चित्त सदा चलायमान रहता है, दम्मा, प्रमेह, बवासीर आदि ऐसे भयानक रोग शरीर को लग जाते हैं कि जिन से मृत्यु पर ही छुटकारा होता है। अतः स्पष्ट है कि धन की वृद्धि के लिये ब्रह्मचर्य्य वा इन्द्रिय निग्रह अत्यावश्यक साधन है। भारत वासियों में इस का लोप है—इस कारण वे सहस्रों दुःखों, क्लेशों, विपत्तियों और ईतियों के शिकार हो रहे हैं। ब्रह्मचर्य्य से ही न केवल जन्म, मरण, जरा, आधीनता, दीनता, निर्धनता के दुःखों से पार हो सकते हैं बल्कि सारी आयु आनन्द, मङ्गल, कल्याण, शान्ति, हर्ष, सुख, यश, कीर्ति से जीवन

व्यतीत हो सकता है। बस, यही ब्रह्मचर्य्य ही स्वास्थ्य, विद्या, धन कीर्ति, शान्ति का मूल सरोवर है इन गुणों के इच्छुक जनों और जातियों को उसी सरोवर के अमृतपान से अपनी तृष्णा पूर्ण करनी चाहिये।

९. मद्य पानादि के स्वभाव—पश्चिम में मद्यादि का बहुत प्रचार है और विशेषतया नीच श्रेणी के लोग मद्य पीकर अपने दुःखों को भूलने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ १८७३ में आङ्गल देश को ले लीजिये। भोजन वस्त्रादि पर एक मज़दूर ४ पाऊंड ७ शि० ३ पेंस व्यय करता था और मद्य पर ४ पाऊंड ७ शि०२ पेंस व्यय होते थे। इस प्रकार आधी आय मद्य में गंवाई जाती रही है। इस से ऐसी बुरी आदतें पड़ती हैं जो कार्य्य में बहुत बाधक होती हैं। सौभाग्य से भारत के मज़दूरों में मद्य का बहुत प्रचार नहीं है और जो है उस का बहुत सा भाग पिछले ५० वर्षों में ही बढ़ा है।

सर्व साधारण रीति से भारतीय सब जातियों से अधिक धीर, श्रम-प्रेमी, दृढ़ मितव्ययी हैं, यही गुण थे जिन के कारण भारतीयों ने आफ्रिका देश में आबादी की, युगान्डा रेलवे बनायी, (West Indies) पश्चिमी भारत-द्वीप में खांड के व्यवसाय को बढ़ाया। यत्न होना चाहिये कि भारत में मद्य का प्रचार न हो और राज्य को भी इस उत्तम कार्य्य में हार्दिक सहायता देनी चाहिये।

मद्यादि से जो आय राज्य को होती रही है उस का ब्यौरा नीचे लिखते हैं, इस से इतना दर्शाना अभीष्ट है कि आय बढ़ती गई है । इस बुरे काम से आय लेकर कोई राज्य प्रफुल्लित नहीं हो सकता । भावी में राज्य और जाति को मद्य पान के रोकने का बृहत् यत्न करना चाहिये ।

भारत में मादक पदार्थों से राज आय ।

वर्ष		१० लाख पाउण्ड
१८५२–५३	....	.८७
१८६२–६३	....	१.९५
१८७२–७३	....	२.३२
१८८२–८३	....	३.६१
१८९१–९२	....	५.११
१९१२–१३	....	८.२८

स्पष्ट है कि राज आय गत ६० वर्षों में बहुत बढ़ गयी है इस समय में अंगरेज़ों के राजाधीन इलाका भी बढ़ता गया है तथापि यह भी सत्य है कि भारत वासियों में मादक पदार्थों का प्रयोग बढ़ता गया है ।

विदेश से आये हुए भिन्न प्रकार के मद्य निम्न लिखित राशि में भारत वर्ष में खर्च हुए ।

	१९०१–०२.	१९०५–०६	१९११–१२.
	गैलन्स	गैलन्स	गैलन्स
एल, बियर और पोर्टर... ...	३,६७३,८५२	५,००२४४८	४,२३९,५८५
साइडर और अन्य मद्य	५,६१२	८,६०७	११,२८३
व्हिस्की	५५३,९७१	६५३,९२२	६५५,६७३
ब्रान्डी	३०२,०५६	४०६,६०८	३३६,४८५
जिन	७३२१५	७६,०७१	७३,७९२
रम	४०,६७१	८४,६१९	५०,७८२
लिकर	११,८०४	१५,७०६	१४,८२१
वाईन	३००,६७२	३४१,६६९	३३५,७१६

भिन्न २ प्रान्तों में बने हुए मद्य की निम्नलिखित मात्राएं ख़र्च हुईं ॥

प्रान्त	शराबख़ानों से जो शराब बिकी १९११—१२	१००० मनुष्यों के पीछे बिकी में जो शराब पी १९११—१२
	गैलन्स	गैलन्स
बङ्गाल	७९६,७८४	२०
बिहार और उड़ीसा	१,०७९,५३५	३९
आसाम	२३८,९४७	४०
संयुक्तदेश	१,५३८,५०४	३४
पंजाब	४५९,७९६	२३
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	२१,५८०	१०
मध्य प्रदेश	६७१,९२५	...
बरार	३९४,६५५	१२९
बर्म्मा	२६,७८८	...
अजमेर मेरवाड़ा	५३,२४९	१०६
कुर्ग	२२,३०८	१२७
बलोचिस्तान	२३,९०२	६९
मद्रास	१,६२८,१७८	४१
मुम्बई	२,७०५,५६७	१६८
सिंध	२२७,४६७	६५

भारतवर्ष में मद्य आदि के बेचने वाली दुकानों तथा मद्य आदि से राज्य आय का १९०१–०२ तथा १९११–१२ में ब्यौरा—

नाम प्रान्त	१९०१–०२ में दुकानों की संख्या	१९११–१२ में दुकानों की संख्या	१९०१–०२ में राज्य आय	१९११–१२ में राज्य आय
			पाऊन्ड	पाऊन्ड
बंगाल	२५,२५४	८,७५३	१,००२,०००	१,२९५,०००
बिहार और उड़ीसा	—	१३,४५७	१८९,०००	५५२,०००
आसाम	१,३७४	९७०		
संयुक्त देश	१५,४०८	१२,७३५	४९४,०००	७४२,०००
पञ्जाब	४,२७६	२,८६२	१७४,०००	४२७,०००
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	२३९	२३३	५,०००	२१,०००
बर्म्मा	२,१४०	१,७५३	३६२,०००	५८६,०००
मध्य प्रदेश	८,५९९	[illegible],२९७	१३०,०००	६०८,०००
बरार	२,६६५	१,३५०		
मद्रास	३१,२८६	२७,३०२	९५४,०००	२,००४,०००
मुम्बई	५,६९८	६,१८५	७०२,०००	१,३५३,०००
सिंध	१,१४१	१,०४२		
अजमेर मेरवाड़ा	२१३	१९४		
कुर्ग	९१४	१५५		
बलोचिस्तान	—	२०७		

गांजा भंग चरस आदि का व्यय जो दस हज़ार लोगों के प्रति १९११-१२ में हुआ।

प्रान्त	गांजा	चरस	भंग	अन्य
	सेर	सेर	सेर	सेर
बंगाल ...	२७.५	.४	७.२	—
बिहार और उड़ीसा	२६.२	—	६.८	—
आसाम ...	५२.०	—	.३	—
संयुक्त देश ...	२.६	११.३	५०.५	—
पंजाब ...	—	१३.८	४६.५	.४
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	—	१२.७	३३.२	.१
मध्य प्रदेश ...	३६.५	१.१	१.६	—
बरार ...	३३.०	.२	१.०	—
मद्रास ...	६.२	—	.४	२.०
मुम्बई ...	३१.०	—	४.६	२.६
सिन्ध ...	२.२	४२.७	३२२.४	—
अजमेर मेरवाड़ा	.३	१३.७	३६.९	६.०
कुर्ग ...	२३.७	—	—	—
बलोचिस्तान	.३	२५.०	२४.४	—

अब मादक पदार्थों के दोष सुनिये :—

अफीम खाना ।

(१) अफीम खाने से बुद्धि कम हो जाती तथा मस्तक में खुश्की बढ़ जाती है। (२) मनुष्य न्यून बल तथा सुस्त हो जाता है। (३) मुख का प्रकाश कम हो जाता है। (४) मुंह पर स्याही आजाती है। (५) मांस सूख जाता तथा खाल मुरझा जाती है। (६) वीर्य्य का बल निर्बल हो जाता है। (७) घण्टों पिनगी में पड़े रहते हैं, रात्रि को नीन्द नहीं आती, प्रातः काल सोते हैं। (८) दोपहर को शौच जा वहां घण्टों बैठे रहते हैं। (९) समय पर अफ़्यून खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती तथा हाथ पांव ऐंठते हैं। (१०) जाड़े के दिनों में पानी से डर लगता है कि जिस से स्नान तक नहीं करते, शरीर में दुर्गन्धि आने लगती है। (११) रंग पीला पड़ जाता है, खांसी आदि रोग हो जाते हैं। इसी प्रकार चंडू मदक को भी जानो, इसके पश्चात् गांजा, चरस, धतूरा, भांग, कोकेन माजूनादि के पीने से खांसी दमा आदि हृदय के रोग तथा सुज़ाक हो जाते हैं। अतः उनके भोग को यत्न पूर्वक छोड़ देना चाहिये।

मद्य पान की बुराइयां।

मद्य के विषय को पूर्णतया ग्रहण करना चाहिये क्यों-कि इस से देशों का सत्यानाश हो रहा है।

(१) भय तथा आश्चर्य्य जनक समाचार यह है कि

ज्यौं २ सभ्यता बढ़ती जाती है, त्यौं २ मद्य का सेवन और उस से उत्पन्न होने वाली बुराईयां तथा व्यभिचार बढ़ते चले जाते हैं।

(२) इङ्गलैण्ड में औषधालयों में ७०% रोगी मद्य सेवन से रुग्ण होकर आते हैं।

(३) १८९८ में पागलपन के कारणों को बताते हुए तद्-गवेषणा करने वालों ने लिखा कि २०.९% पुरुष और ८.१% स्त्रियां मद्य के सेवन से पागल होती हैं।

(४) मद्य सेवन करने वालों के बालकों की मरने की संख्या अधिक है।

(५) उन में प्रायः मरे हुए बालक उत्पन्न होते हैं।

(६) उन में विवाह न्यून संख्या में होते हैं और व्यभिचार बढ़ता है।

(७) कामज (Illegitimate) बालक अधिक उत्पन्न होते हैं।

(८) मद्यप काम करने में बहुत भूलें करता है और लड़ाका हो जाता है।

(९) मद्य पान करने वालों की मृत्यु संख्या अधिक हो जाती है—फ्रांस के एक भाग नार्मण्डी में यह सब अवस्थाएं दीख पड़ती हैं। जब केवल इङ्गलैण्ड में १६१०६०४८२ पाऊंड मद्य में व्यय होते हैं, तो सारे योरुप में कितना व्यय होता होगा—उसका अनुमान लगाना कठिन है। किन्तु यह हिसाब

लगाया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न २ देशों में निम्न-लिखित मद्य पीता है:—

मद्य पीने का ब्यौरा :-

फ्रान्स	१३	quarts	इङ्गलैण्ड	९	,,
स्विट्ज़रलैण्ड	१०	,,	स्वीडन	४	,,
वैल्जियम्	१०	,,	नारवे	३	,,
इटली	१०	,,	भारत	३	,,
जर्मनी	९	,,			

मद्य का व्यय जो इंगलैण्ड आदि देशों में हो रहा है उसका अनुभव अन्य प्रकार से भी हो सकता है।

मद्य व्यय	१९११	में	१६२७९७२२९	पाऊंड
मद्य व्यय	१९०६	में	१६१०६०४८२	,,
,,	१९०७	में	१६७०१६२००	,,
शिक्षा व्यय	१९०९	,,	१३२७२६२५	पा०
स्थल सेना	,,	,,	२७४२५०००	पा०
समुद्र सेना	,,	,,	३५१४३०००	,,
राज्य विषयक	,,	,,	९१७५३६९९	,,
			१५४३२१६९९	,,

अर्थात् इंग्लिश राज्य जो विविध प्रकार का व्यय करता है, वह भी मद्य व्यय से न्यून है। यदि आङ्गल लोग मद्य

सेवन न करें, तो बचे धन से संयुक्तराज जैसे देश का राज्य चल सकता है। अथवा यदि यही धन शिक्षा देने में व्यय किया जावे तो कम से कम १० गुणा विद्यालय तथा विश्व-विद्यालय खुल सकते हैं। स्पष्ट है कि इस के त्याग से कितना आर्थिक भला हो सकता है। इङ्गलैण्ड में मद्य पान बढ़ता रहा है। किन्तु १६०९ से कुछ कमी होने लगी है। शोक है कि भारतवर्ष में मादक पदार्थों का प्रयोग बढ़ता जाता है, देश हितैषियों तथा राज को इस की कमी पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

हिन्दुओं के शारीरिक बल की रक्षा।

श्रमियों के मन बहलाने, विराम, आनन्द के लिये सभ्य देशों में वाचनालय, पुस्तकालय, नाटकशाला, उद्यान, सैरगाह, अद्भुतशाला क्रीड़ाशाला बनाई होती हैं, उन में यथेच्छा श्रमी अपनी थकावट दूर कर सकता है किन्तु भारत वर्ष में अभी इन बातों की कमी है—बल्कि इस ओर जाति ने ध्यान भी नहीं दिया। पहिले तो हमारे देश में अखाड़े प्रति ग्राम और नगर में पाये जाते थे परन्तु हमारे दुर्भाग्य से वह प्रथा उठती जाती है। नर नारी की कर्म शक्ति को रक्षित रखने वा उन्नत करने के लिये अवश्यमेव स्थान २ पर क्रीड़ाशालाएं और बाग़ बनाने चाहियें। सारी समाज को इस ओर ध्यान देना चाहिये। दानियों के दान

को इस ओर लगाना चाहिये। और सारी सामूहिक शक्ति लगा कर इस समय हिन्दुओं की निर्बल जाति की उन्नति करनी चाहिये।

१०. विराम, स्वातन्त्रता तथा परिवर्त्तन—भोजन वस्त्रादि जैसे अत्यावश्यक हैं, वैसे ही विराम भी अत्यावश्यक है। कार्य्य की अति, शरीर को क्षीण कर देती है। फिर चिन्ता और दिमागी काम से बल कम होजाता है और उत्पादक शक्ति नाश हो जाती है। अतः इन से भी जातीय हानि होती है। यदि बारह व चौदह घन्टे दिन में किसी को काम करना पड़े, तो रात्रि के समय वह बहुत थका हुआ होगा। ऐसा पुरुष विद्या तथा धर्म उपार्जन नहीं कर सकता, वह तो घर में आकर निद्रा की गोद में शाघ्र चला जावेगा। उस से आत्मिक उन्नति की आशा नहीं हो सकती, काम की अति से शारीरिक अवनति तो अवश्य हो जाती है। इस कारण आज कल यह यत्न हो रहा है कि केवल ८ घन्टे श्रमियों से काम कराया जावे।

स्वतन्त्रता और परिवर्त्तन—दो बड़े कारण हैं जिन से नयी बस्तियों वाले मातृभूमि से सब बातों में बढ़ जाते हैं—अमरीका इंगलैण्ड से प्रत्येक बात में बढ़ा हुआ है और विशेषतया शारीरिक बल तथा बुद्धि में इन का बड़ा कारणस्वतंत्रता, उत्साह, विराम, तथा प्रतिदिन बदलने वाले नवीन २ दृष्य हैं। भारत में इन गुणों का अभाव है।

११ राज्य नियम वा जातीय रीति रिवाज भी धन उत्पत्ति कम वा अधिक कर सकते हैं। स्काटलण्ड निवासी अपनी सुस्ती वा आलस्य के लिये प्रसिद्ध थे। परन्तु इस का कारण वहां का एक रिवाज था। ज़मीनें मुज़ेरों को थोड़े से समय के लिये दी जाती थीं वा भूमिपति मुज़ेरों को जब चाहे निकाल सकता था। किन्तु जब राज्य ने यह नियम हटा कर उत्साह दिया, तो स्कौच जैसे परिश्रमी आज कल कठिनता से मिलते हैं। आयरलैण्ड वाले भी इन्हीं कारणों से सुस्त तथा दरिद्री थे। मुसलमानी काल में हिन्दुओं की यही अवस्था थी। आज कल अंगरेज़ों के राज में स्थिरता और निष्पक्षपात तो बहुत है और इस कारण कुछ उन्नति हो रही है किन्तु १०,२० वा ३० वर्षों के पश्चात् जो बन्दोबस्त की रीति है-उस से भूमि में उन्नति नहीं हो सकती। ज़मीनदारों को सर्वदा यह भय रहता है कि भूमि में लगाये हुए धन का बदला सरकार लेजावेगी, इस कारण

---

1. Changes of work, of scene of personal associations bring new thoughts, call attention to the imperfections of old methods, stimulate a divine discontent and in every way develope creative energy. Few men are prophets in their own lands. Shifting of places enables the more powerful and original minds to find full scope for those energies and to rise to important positions. Marshall.

स्थिर लगान की रीति प्रचलित करने पर इस देश में उन्नति हो सकती है ।

१२. मानसिक आनन्द वा उन्नति वा लाभ की आशाः— यह तो लोक प्रसिद्ध बात है कि अपना काम जब अन्यों से कराया जावे, तो वे उस शीघ्रता तथा उत्तमता से काम नहीं करते जिस से कि हम स्वयम् करते हैं। इस संसार में स्वार्थ का न कि परमार्थ का राज्य है। इस कारण जिस मात्रा में किसी का हित बढ़े, उसी मात्रा में वह दूसरे का काम करना चाहता है। मज़दूर की दिन भर की मज़दूरी प्रायः नियत होती है। अब यदि एक श्रमी मन लगा कर अधिक काम करे, तो उसे अधिक मज़दूरी नहीं मिलेगी, अतः वह उस मात्रा में ही काम करेगा कि जिस से काम कराने वाला अधिक असन्तुष्ट न हो जावे। इसी प्रकार जहां २ दासत्व की प्रथा थी, वहां २ दासों को चाबुक लगा कर काम कराया जाता था। महाशय आर्थर ने सच्च कहा है कि 'बञ्जर ज़मीन भी किसी को पूरे तौर पर दे दो, तो वह उस को अपने परिश्रम से बाग़ बना देगा'। उस का एक दूसरा कथन कहावत वा जनोक्ति हो गया है: 'निज जायदाद के तिलस्मे से रेत भी सुवर्ण हो जाता है= Magic of property turns sand into gold' मुज़ेरे लोग जिस प्रकार प्रातः काल से रात्रि तक परिवार सहित काम करते

हैं, वह दृश्य आश्चर्य दायक होता है। ऐसा काम मज़दूर नहीं किया करते, वे तो यथा तथा आठ घण्टे काम करके चले जाते हैं क्योंकि मन लगा कर काम करने से जो अधिक उपज होगी, उस से उन्हें लाभ नहीं बल्कि किसान को लाभ है। एवम् जब २ किसान को यह भय रहे कि उस की मेहनत का बहुत सा फल सरकार ले जावेगी तो वह अधिक पैदा ही नहीं करता। उन्नति व लाभ की आशा न होने से उत्साह मर जाता है। लाभ विभाग तथा इनाम (Bonus) की रीतियां आधुनिक समय में इसी लिये निकाली गई हैं कि श्रमियों को उन्नति तथा आर्थिक लाभ की आशा हो और वे मालिक के काम को अपना समझ कर और मन लगा कर काम करें। इस बात का मूल तत्व यह है कि हर एक को उस के श्रम का पूरा २ फल मिलना चाहिये और उन्नति करने का पूरा अवसर देना चाहिये। लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या द्वेषादि विषयों में फंस कर दूसरों के धन का हरण नहीं करना चाहिये। 'मागृधः कस्य स्विद्धनं'—वेद के यह वाक्य स्मरणीय हैं कि किसी के धन की लालसा नहीं करनी चाहिये।

१३. धर्म पर आर्थिक उन्नति का आधार है। इस प्रकार पूर्व प्रकरणों में जातियों की कर्म शक्ति, स्वास्थ्य तथा शारीरिक बल के जितने साधन कहे गये हैं उन्हें सामूहिक तौर पर दृष्टिगोचर करने से मनु भगवान् के धर्म लक्षण स्मरण हो जाते

हैं। धृति, क्षमा, दम, शौच, इन्द्रिय निग्रह, अस्तेय (चोरी न करना) धी, विद्या, सत्य बोलना, क्रोध न करना-धर्म के यह दश लक्षण बताये गये हैं। जब २ व्यक्तियों में इन गुणों की अधिकता होती है तब २ धर्म की वृद्धि होती है और जब २ इन के विपरीत दोष होते हैं जातियां क्षय और नाश को प्राप्त होती हैं। रोम, यूनान और भारत वर्ष इन्हीं दोषों से रसातल तक पहुंच गये। इंगलैण्ड, अमेरीका, जापान, जर्मनी इन्हीं गुणों से उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे हैं। ऋषियों ने सच्च कहा था किः—

धर्म एव हतो हन्ति
धर्मो रक्षति रक्षितः

जिस जाति में धर्म का हनन होता है वह जाति स्वयं मर जाती है और जो जातियां धर्म की रक्षा करती हैं धर्म भी उनकी रक्षा करता है और दिन प्रति वे उन्नत होती जाती हैं। धन, सम्पति वा अर्थ की वृद्धि तभी हो सकती है जब सामाजिक और प्राकृतिक अवस्थाएं, जातीय बल, पैत्रिक संस्कार, सात्विक और पुष्टिदायक भोजन, अच्छे मकान, शौच वा सर्व प्रकार की सफ़ाई, बुद्धि, सर्व प्रकार की विद्या, इन्द्रिय निग्रह, मद्य पानादि के अभाव के कारण दम और तप, विराम, स्वतन्त्रता, धार्मिक राज, अच्छे रीति रिवाज, आशा युक्त

जीवन, निर्लोभता और देशहितैषिता के कारण धीरता तथा क्षमा मौजूद हों । इन का धारण करना धार्मिक बनना है, इन्हीं से धन की प्राप्ति होती है, अतः भारतीयों को अपने चाल चलन, व्यवहार, रीति रिवाज और विचार ऐसे बनाने चाहियें कि उन से उक्त गुणों की पुष्टि और वृद्धि हो ताकि निर्धनता का अभाव हो कर धर्म, सरस्वती, श्री तथा लक्ष्मी का राज्य हो ।

प्रश्न ।

१. मनुष्य सामाजिक जीव है—इस से उसके शरीर और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
२. इंगलैण्ड की अपेक्षा भारत में पदार्थ मेंहगे क्यों बनते हैं ?
३. जनता के स्वास्थ्य तथा बल में भेद लाने वाले सर्व कारणों की व्याख्या करो ।
४. भिन्न देशों की आमदनी का ब्यौरा दो ।
५. भिन्न देशों में पदार्थों के व्यय के ब्यौरे दो ।
६. भारत में आर्थिक उन्नति हुई है इस का प्रमाण घरों की संख्या से दो ।
७. पठित श्रमी मूर्ख श्रमी से क्यों बेहतर हैं ?

८. इन्द्रय निग्रह पर एक निबन्ध लिखो।

९. मद्य पान व अफ़ीम खाने के क्या दोष हैं भिन्न २ देशों में मद्य पान के ब्यौरे दो।

१०. शारीरिक बल की वृद्धि के क्या साधन हैं ?

११. स्वतन्त्रता तथा आशा से धर्म की वृद्धि कैसे होती है ?

१२. सिद्ध करो कि धन की वृद्धि का आधार धर्म पर है।

निर्देश

A. Shadwell.—*Industrial Efficiency, Two Vols.*
A. Marshall.—*Principles of Economics, Book IV. chapter V.*
Webb.—*Dictionary of Statistics.*
Daily Mail year Books.
Sutherland.—*A system of Diet and Dietics Chapter IV.*
Walker.—*Wages, Chapter III.*

अध्याय १३

विद्या की लीला ।

नर नारी की उत्पादक शक्ति की वृद्धि के बहुत से साधन गत अध्याय में बताए गए हैं। अब उन में से एक प्रधान साधन विद्या—का वर्णन किया जाता है। यह विषय अतीव बिस्तृत तथा गहन है किन्तु यहां पर इसे संकुचित कर दिया है। इस अध्याय में बहुत से ब्यौरे दिये हैं, साधारण पाठक को उनसे घबराना नहीं चाहिये। वे अतीव शिक्षाप्रद हैं अतः उन्हें हृदयपट पर आङ्कित कर लेना चाहिये।

१. आरम्भिक विचार—स्मरण रहे कि आज कल शीघ्र गामी रेलों, जहाज़ों, विमानों और तारों का ज़माना है। भूमि के सर्व देश सभ्य और असभ्य इन यानों के द्वारा ऐसे परस्पर संगठित कर दिये गये हैं कि उन का पृथक् पृथक् रह कर उन्नति वा अवनति करना कठिन है। वह काल अब बीत गया है कि जब भारत वर्ष अन्य देशों के मुकाबले को उपेक्षा से देखता था। यदि आज सभ्य देश भी दूसरे सभ्य देशों से डरते रहते हैं कि उन के बनाये हुए सस्ते सामान स्वदेशी व्यापारियों तथा कारीगरों को हानि न पहुंचावें, तो क्या भारत को अन्य देशों से भय नहीं है? पाठक विचारिये तो सही कि

जब भारत में कलाओं से उत्पन्न करने की रीति नहीं, जब उस के श्रमी, कारीगर, सेठ साहूकार अपठित हैं तो वे ऐसे देशों का क्या मुकाबला कर सकते हैं जिनके एक २ कार्खाने में ४५०००० श्रमी काम कर रहे हों, जो २०००००० घोड़ों के बल वाला एंजिन चला रहे हों, जो ४०००० टन्ज़ कैलिसयम कार्बा-ईड वर्ष में एक कार्खाने में पैदा करते हों या एक दिन में १००० टन्ज़ गन्धक तय्यार करते हों, जो १५० रसायनवेता एक कार्खाने में परीक्षणों के लिये रखते हों, जिन के पास ऐसे पुस्तकालय हों कि एक पुस्तकालय के मकान पर ६३४३००० डालर्ज़ (एक डालर=३रु०-२) लगे हों और जिस की अल्मारियों के खानों को यदि एक दूसरे के साथ लम्बाई वार रखा जावे तो ६० मील तक विस्तृत होसकें!! क्या ऐसी जातियों के साथ हमारा मुकाबला हो सकता है जिन में कोई अशिक्षित नहीं जिन में सर्व प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध है? शिक्षा ही सर्वोत्तम साधन, यत्न और कला है जिसके द्वारा उन्हों ने उन्नति की है, इसी साधन से हमारे प्रचीन आर्य्य उन्नति के शिखर पर पहुंचे थे, अब हम भी इसी साधन से उन्नत हो सकते हैं। जर्मनी के राज ने अपनी प्रजा से पितावत वर्ताव कर के उस की उत्पादक तथा व्यापारिक शक्तियों को उत्कृष्ट किया है। अतः जर्मनी आज सर्व देशों में सर्वोत्कृष्ट हो रहा है किन्तु जर्मनी कच्चा माल विदेशों से मंगा कर भी उन्नत हो रहा है और हम शिक्षा के अभाव से सर्व प्रकार के कच्चे माल

के होते हुए सच्चमुच्च माईडस की न्याई भूखे मर रहे हैं।
स्वदेश में शिक्षा के अभाव की साक्षियां देखिये:—

२. भिन्न देशों में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्तकर्ता विद्यार्थियों की संख्या और प्रति विद्यार्थी सालाना खर्च का ब्योरा—

देश	विद्यार्थियों की संख्या	प्रति विद्यार्थी खर्च पाउंड में	देश की आबादी
स० प्र० अमेरीका (१६०६-७)	१६८०००००	४.०	८५८१००००
आस्ट्रेलिया	७८०००००	३.६	४२०००००
स्विटज़लैंड (१६०५)	५०२०००	३.२	३५०००००
संयुक्तराज (१६०७-०८)	७५०००००	३.०	४४०००००
नटाल	२६०००	३.०	५४४०००
जर्मन सामराज्य	६७०००००	२.७	६२३००००
योग	४२३२८०००		२००४४०००
आङ्गल भारतवर्ष (१९०६-०७)	४५३००००	.२५	२५०००००००

उक्त ब्यौरे से ज्ञात होगा कि संयुक्त प्रान्त अमेरीका, अस्ट्रेलिया, स्विटज़लैण्ड, सयुक्तराज, नटाल और जर्मन सामराज्य के बड़े २ देशों की आबादी आंगल भारत वर्ष से—अर्थात् देशी रजवाड़ों को छोड़ कर भी—५ करोड़ के लग भग कम है फिर भी उन में भारत से १० गुणा अधिक विद्यार्थी पाये जाते हैं। यदि

उन में भारत जितनी आबादी होती तो ५२०००००० विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे होते किन्तु भारत में शिक्षा क बाधित तथा मुफ्त न होने से केवल ४५३०००० विद्यार्थी पढ़ रहे हैं, अर्थात् ४,७४,७०,००० बालकों की शक्तियों का विकास न होने से ज्ञात नहीं कि हमारे कितने तत्ववेताओं, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, आविष्कार कर्ताओं, शिल्पियों और सुधारकों का अभाव हो गया है !!

३. हर एक देश निवासी के प्रति भिन्न देशों में प्रारम्भिक तथा उच्च शिक्षा पर व्यय देखिये :—

देश	प्रारम्भिक शिक्षा	उच्च शिक्षा
आस्ट्रेलिया	११.७ शिलिंग	८ आने
स० प्र० अमेरीका	८.१	११ ,,
स्विटज़लैंड	८.५	
कनाडा	७.६	१० ,,
स्काटलैण्ड	७.८	...
आयरलैण्ड	५.५	...
प्रशिया	५.४	७ ,, (जर्मनी)
इंगलैण्ड	५.	११ (संयुक्तराज)
फ्रांस	४.६	६ ,,
बैलजियम	४.६	६ ,,
भारत	३.६	१/४

सर्व सभ्य देशों में से भारत में ही प्रारम्भिक शिक्षा पर कम व्यय है किन्तु अतीव शोक है कि उक्त देशों के साथ भारतवर्ष उच्च शिक्षा में कदापि लग्गा नहीं खा सकता। जहां इंगलैण्ड और अमेरीका में प्रति देश निवासी ११आने खर्च होते हैं वहां भारत में केवल एक पैसा ख़र्च होता है। ऐसी अवस्था में विद्यार्थियों को उचित शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती, अतः इन संख्याओं के होते हुए हम यही कह सकते हैं कि शिक्षा में बहुत उन्नति की ज़रूरत है।

४. सभ्य देशों में प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यक है।

देश	आयु	देश	आयु
आस्ट्रिया	६ से १४ वर्षों तक	स्पेन	६–१२
कनाडा:—		स्विटज़लैंण्ड	६–१४
आन्टेरियो	८–१४	संयुक्त राज	५–१४
कोलम्बिया	७–१४	स० प्र० अमेरीका	
डैन्मार्क	७–१४	न्यू यार्क	८–१६
फ्रांस	६–१३	मसाचस्सटस	७–१५
जर्मनी	६–१४	न्यू साउथ वेल्ज़	६–१४
हंगरी	६–१५	कुईन्ज़लैण्ड	६–१२
इटली	६–१२	दक्षिण आस्ट्रेलिया	७–१३
जापान	६–१४	पश्चिम ,,	६–१४
नदरलैण्डज़	६–१३	विक्टोरिया	६–१४
नारवे	७–१४	तस्मानिया	७–१३
पुर्तगाल	६–१२	न्यूज़ीलैण्ड	७–१४

सभ्य संसार में केवल भारत वर्ष ही ऐसा देश है जिस में प्रारम्भिक शिक्षा बाधित या मुफ़्त नहीं। श्रीमान गोखले ने भारत में बाधित और मुफ़्त शिक्षा का प्रस्ताव किया किन्तु सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया, हमारा विश्वास है कि यदि जाति का अधिकांश स्वेच्छा प्रकट करेगा तो सरकार अवश्यमेव प्रारम्भिक शिक्षा इस देश की आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक और मुफ़्त कर देगी। इङ्गलैण्ड में १८९३ से ही आवश्यक तथा मुफ़्त शिक्षा का प्रचार हुआ है किन्तु देखिये कि आज उस देश में लगभग सब नर नारी पठित हैं किन्तु एक भारत वर्ष ही है जिस में आवश्यक और मुफ़्त शिक्षा के अभाव के कारण १०० में से ६४.१ नर नारी अशिक्षित हैं, अर्थात् आज ३० करोड़ भारत वासी एक पत्र तक लिख पढ़ नहीं सकते!

५. भारत में शिक्षा की उन्नति।

	१८९१	१९०१	१९११
सर्व राज पाठशाला	१०००३०	१०३६७४	१३०८३१
सर्व निज ,,	३९१८५	४३२६२	३६४६१
साधारण महाविद्यालय	१०४	१४२	१४४
आद्योगिक ,,	२१	४४	

अध्यापक विद्यालय	१३५	१८७	५७२
विशेष विद्यालय	३८४	७६६	५२११
निज के उच्च पाठशाला	४२६३	४४४५	२७७३
,, प्राइ०	२७२०८	३०६१९	२९९३५

शिल्प तथा व्यवसाय के विद्यालय।

	१८९२	१९०४	१९१२
विद्यालयों की संख्या	६	८८	२१८
विद्यार्थियों की संख्या	४९५३	५०७२	१०५३५

	१८९१	१९०१	१९११
पठित पुरुष	६%	६.८	१०.६
पठित स्त्रियां	.४%	.७	१.

६. विद्या का गौरव।

भारत वर्ष जैसे देश में १०० पुरुषों में से केवल १०.६ किसी एक भाषा में कोई पत्र लिख पढ़ सकते हैं और देवियों की भयानक दुरावस्था है कि अब तक एक सौ स्त्रियों में से केवल एक पढ़ी हुई है ! जिस मातृशक्ति का हमारे प्राचीन आर्य्य ऐसा मान करते थे कि उसे श्री, लक्ष्मी, देवी आदि उपाधियों से पुकारा करते थे जिसे मनु भग्वान् ने १० लाख अध्यापकों के बराबर शिक्षक माना है और जिसे नपोलियन

१०० अध्यापकों के बराबर शिक्षक मानता था-उस की यह दुर्गति है कि १०० में से एक नारी भी सुपठित नहीं। राजा अश्व-पति का समय कहां गया जब उस के कैकेय देश में कोई चोर, आलसी, शराबी, अविद्वान्, अग्निहोत्र न करने वाला, व्यभि-चारिणी स्त्री न थी? एवम् राजा भोज का समय भी कहां चला गया जब उसके धार देश में कोई भी अविद्वान् न था? हमारी आर्य्य जाति की बुद्धि पर क्यों अन्धकार का पर्दा पड़ गया कि उस ने अपने ऋषियों, मुनियों, पण्डितों और कवियों की निम्न लिखित उत्तम शिक्षाओं का निरादर किया :—

विद्या के विना संसार के लोग धर्म और अधर्म को नहीं जान सकेत, अतः धर्मात्मा जन सदैव दूसरों को विद्या दान करते रहें। जो मातापिता अपने बालकों को नहीं पढ़ाते वे उनके शत्रु हैं उनके मूर्ख पुत्र सभा में शोभा नहीं देते जैसे हंसों में बगला शोभा नहीं देता।

विद्याविहीनः पशुः

विद्या के विना नर नारी पशु होते हैं। जिन में विद्या तप, दान, क्षमा वा शील का अभाव है वे इस संसार में भूमि का भार होकर मनुष्य के रूप में पशुओं के गुण रखते हैं।

किं जीवितेन पुरुषेण निरक्षरेण ।

न पढ़े हुए पुरुष के जीने का क्या लाभ है? भारत के ६४ प्रतिशतक नर नारी को अपने आप से यही प्रश्न पूछना चाहिये और यदि वे अपने तई लाभदायक न समझते हों तो विद्याद्वारा स्व जीवनों को हितकारी बनावें, क्योंकि मूढ़ लोग सहस्रों शोक स्थानों और सैंकड़ों भयों को प्रति दिन प्राप्त होते हैं किन्तु पण्डितों को कभी शोक और भय नहीं होता ।

पण्डिते हि गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः ।

पण्डितों में केवल गुण होते हैं किन्तु मूर्खों में केवल दोष ही पाये जाते हैं । सैंकड़ों वर्षों से भारती नर नारी विद्या हीन रहे हैं तो उन्हें स्वयम् विचारना चाहिये कि वे दोषों के कैसे घोर दलदलों में फंस गये होंगे ! हर एक भारती को स्वर्णाक्षरों में यह शब्द लिख कर सदैव अपने सामने रखने चाहियें कि

विद्याधनं श्रेष्ठधनं तन्मूलम् इतर धनम् ।

विद्यारूपी धन सर्वोत्तम धन है, वही दूसरे धनों का मूल सरोवर है । सच्चमुच्च इसी विद्याधन के कारण योरुपी लोग सर्व प्रकार से धनी तथा सुखी हो रहे हैं और हम विद्याहीन होने के कारण मूढ़, आलसी, निरुत्साही, भीरु, निर्धन और निर्धनता से उत्पन्न होने वाले दुःखा से पीड़ित,

पाशिवक जीवन व्यतीत करने वाले, परमात्माद्त शाक्तिया का निरादर करने हारे और कृषि, व्यापार,व्यवसाय में अधम हो गये हैं। प्रति वर्ष करोड़ों रुपये कृषि, व्यापार, व्यवसाय की दुर्गति के कारण विदेशियों के समर्पण कर रहे हैं। ज्ञात नहीं कि कब हमारी जाति और सरकार इन दुःखों को अनुभव करेगी और कब नगर नगर ग्राम २ में विद्यालय खोल कर दुःख सागर से पार होकर सुवर्ण भूमि पर पग रखेगी ?

देखिये जर्मनी वालों का विश्वास है कि विद्यादान में एक रुपये का व्यय १०० रुपयों की आय देता है क्योंकि श्रमी कारीगर बनते हैं, नये नये व्यवसायों का आविष्कार होता है, पुराने व्यवसाय विज्ञान के बल से जीवित रहते हैं तथा सारी जाति धन, ज्ञान, यश में उन्नत होती है।

संयुक्त प्रान्त अमेरीका में राज की ओर से सब विषयों की शिक्षा कालजों में भी मुफत दी जाती है क्योंकि वहां का सिद्धान्त है कि कला कौषल में प्रजा को पूरी शिक्षा देना समाज का धर्म है। इस कारण बहुत सी पाठशालाओं को राज की ओर से दान में ज़मीनें मिली हुई हैं और करों का कुछ भाग भी प्रति वर्ष पाठशालाओं को दिया जाता है।

जापानी राज भी प्रजा का पूर्ण शिक्षण करना अपना परम कर्तव्य समझता है। इस लिये उन देशों में विद्या का प्रचार और उन्नति की साक्षियां देखिये

७. जर्मनी की विचित्र उन्नति

	कच्चा माल जो जर्मनी में गया	शिल्पी माल जो जर्मनी से गया
१८९४	८३२९५०००	९३९७०००० पाउ०
१९१०	२५४१६५०००	२३९७७५००० पाउ०

अर्थात् १६ वर्षों में ही जर्मनी तीन गुणा अधिक कच्चा माल मंगाने लगा है और अपने बने हुए शिल्प पदार्थ भी विदेशों में धराधर भेज रहा है। १६ वर्षों में अपना व्यापार त्रिगुण कर लेना क्या कोई साधारण काम है? फिर उस की उत्पत्ति के दृश्य भी देखिये :–

वर्ष	कोयलेकी उत्पत्ति टन्ज़	खनिज पदार्थों की उत्पत्ति पाउ०=१५ रु०	लोह की उत्पत्ति टन्ज़
१८८९	५९११८०००	१८७७५०००	७२३९०००
१९०६	२१७४३३०००	९७३९३०००	२५५०५०००

उक्त व्यवसायों में जर्मनी इङ्गलैण्ड को शीघ्र नीचा दिखावेगा क्योंकि जर्मनी में शिल्प शिक्षा का प्रचार इङ्गलैण्ड से अधिक है। भारत वर्ष सब देशों का शिकार बना हुआ है क्योंकि उस में शिल्प शिक्षा का अभाव है।

८. जर्मनी में विज्ञान का प्रचार ।

जर्मनी में रसायनिक व्यवसायों की कम्पनियों का वृद्धि का ब्यौरा अद्भुत् है :—

वर्ष	कम्पनियों की संख्या	पूंजी	लाभ जो बांटा गया
१८८६	८२	५८१२७०४२	७.१७
१८९०	८२	९९०३६५५	१२.५०
१८९५	९५	१२३६९०४५	१२.७
१९००	१२१	१७४२५६५०	१२.३
१९०४	१४३	२२३५०६५०	१३.८

१८९६ में रसायनिक व्यवसायों की कम्पनियों ने अपने काम की उन्नति के लिये जितने परीक्षण करने वाले वा आविष्कार करने वाले रसायन वेताओं (Chemists) को नौकर रखा हुआ था-उन की संख्याएं नीचे के ब्यौरे में दी जाती है-उन से पाठक को ज्ञात होगा कि रसायन के ज्ञान तथा निरन्तर परीक्षण के बिना व्यवसाय नहीं बढ़ा करते ।

व्यवसाय का नाम	कम्पिनयों की संख्या	रसायनवेताओं की संख्या
धातु साफ़ करने का काम ...	५	२४
रसायनिक पदार्थ	१९	११६
खाद बनाने के काम	४	८
नमक बनाने के काम	४	२५
अनैन्द्रिक पदार्थों के काम ...	२	७
धात्विक रंग	१	३१
ऐन्द्रिक अनीलीन आदि ...	१४	५६
टार निकालने वाले	१०	२६
औषधालय	७	८१
बारूद	४	२८
टार के रंगों वाले	९	२४१
सुगन्धित तेल	३	१३
वस्त्रों पर चित्र बनाने वाले ...	१	५

९. जर्मनी रसायनिक पदार्थों का व्यौरा ।

वर्ष	आयात	निर्यात
१८८९	५३३०००० पाउ०	११३३५००० पाउ०
१९०२	५५६०००० पाउ०	१९३००००० पाउ०

रसायनिक व्यवसायों में श्रमियों की संख्या तथा भृति यह है:—

	श्रमी	भृति प्रति मनुष्य
१८८२	७१७७७	?
१८६४	११०३४८	४४.५ पाउ०
१६०६	२१६६०१	५७.८ पाउ०

रसायन वेताओं की संख्या ।

१८७५ में १७०० रसायनवेता व्यवसायों में लगे थे किन्तु १६०० में ४३०० रसायनवेता लगे हुए थे—और सम्पूर्ण रसायन-वेता जिन को उपाधियां मिली हुई थीं—७२५० थे। वस्तुतः यह विचित्र उन्नति है किन्तु नीचे का ब्यौरा कम अद्भुत् नहीं।

कलाकौशल में विद्यार्थियों की संख्या ।

वर्ष	संख्या	वर्ष	संख्या
१८७०	१७७६१	१६००	४६५२०
१८८१	[illegible]०३२	१६१०	८३०८६
१८१२	२२६६२		

१०. जर्मनी में राज की सहायता ।

जर्मनी ने यदि रसायनिक व्यवसायों में सर्वोत्तम स्थिति प्राप्त की है तो वह जाति की दृढ़ इच्छा और राज की उदार

सहायता के बिना नहीं हुई । 'Modern Germany' के प्रसिद्ध लेखक बार्कर साहब के शब्द इस विषय में पढ़ने योग्य हैं:—

"जर्मनी को रसायनिक व्यवसायों में जो बहुत कामयाबी हुई है उस के निम्न कारण हैं:—

१. ध्यान, धीरता, दृढ़ता और श्रम से काम तथा अध्ययन करने की ओर प्रत्येक जर्मन की रुचि तथा प्रवृत्ति है ।

२. रसायन के सब विभागों के अध्ययन के लिये खर्च और तत्कालिक लाभ की पर्वाह न करते हुए जर्मनी के भिन्न २ राज्यों ने उदारता से शिक्षाप्रद सहायता तथा उत्साह दिया है ।"

११. जर्मनी में शिल्प तथा व्यापार-शिक्षणालय—१९१०

कृषि शिक्षणालय	२२००
शिल्प के उच्च विद्यालय	११
पशु चिकित्सा के उच्च विद्यालय	५
खनिज "	१५
भवन निर्माण "	१५
वनविद्या "	५
कला (art) "	२७
व्यापार शिक्षणालय तथा विश्व विद्यालय ...	५२९
जुलाही—शिक्षणालय तथा विश्व विद्यालय ...	१००
धातुविद्या के पाठशाला	१२

रंग बनाने	,,	...	...	४
जहाज़ निर्माण	,,	...	...	११
जहाजों के इंजीनरों	,,	...	...	८
जहाज़ रसानी	,,	...	...	६६

१२. संयुक्त प्र० अमेरीका में विद्यालयों का ब्यौरा—१९०९–१९१०:—

राज के साधारण विद्यालय	...	...	२६५४७४
,, उच्च (High),,	...	...	१०२१३
निज के ,,	...	...	१७८१
राज के अध्यापक विद्यालय	...	...	१९६
निज के ,,	...	...	६८
विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय		...	४९४
उक्त के सहायक विद्यालय	...	...	३७१
स्त्रियों के महाविद्यालय	...	...	३५२
उक्त के सहायक विद्यालय	...	...	७७
उच्च पेशों के ,,	...	...	५८५
धर्म शिक्षणालय	...	...	१८४
राजानियम ,,	...	...	११४
वैद्यक ,,	...	...	१३५
दन्त विद्या ,,	...	...	५३
औषधि निर्माण ,,	...	...	७६

पशु चिकित्सा ,,	...	...	२०
व्यापार ,,	...	...	५४१
आचार शोधक ,,	...	...	११५
बहरों के ,,	...	...	१३०
अन्धों के ,,	...	...	४८
पागलों ,,	...	...	४१

स० प्र० अमैरीका में कृषि विद्या प्रचार।

	वर्ष १६१०	वर्ष १९१२
राज के कृषि शिक्षणालय	३६०	२१५४
निज के कृषि शिक्षणालय	४	३६२

अर्थात् हर एक मास में ७६ नये कृषि शिक्षणालय अमैरीका में बनाये गये। साथ ही १६ रयासतों ने नियम बनाया है कि प्रत्येक अध्यापक को कृषि में प्रमाणपत्र लेना चाहिये और १२ रयासतों ने अपने विद्यालयों में कृषि पढ़ाना आवश्यक कर दिया है। किन्तु भारत में कृषि विद्या का सर्व साधारण में प्रचार करने के लिये राज और जाति की ओर से क्या साधन किये गये हैं? अमैरीका में ३ करोड़ निवासियों के लिये २५१६ विद्यालय १६१२ में थे किन्तु भारत में २२ करोड़ किसानों के लिये कितने शिक्षणालय हैं।

१३. भारत में शिल्प शाला.

यदि भारती राज जर्मनी वा अमेरीका का अनुकरण प्रजा के शिक्षण में करे तो एक ही सन्तति में इस देश की अवस्था प्रशंसनीय हो जावे। आशा है कि जाति तथा राज अपने कर्तव्यों में विस्मृति नहीं दिखावेंगे। इस समय तो शिल्प शित्तणालयों का भारत में अभाव ही है। १९१३ मार्च तक दो प्रान्तों में निम्न पाठशालाएं थीं।

पाठशालाएं	युक्तप्रान्त		पंजाब	
	संख्या	विद्यार्थी	संख्या	विद्यार्थी
एंजीनिअरिंग महाविद्यालय	१	३३६	०	०
कृषि ,,	१	११५	१	६५
व्यापार विद्यालय	३	१५७	१	८८
कला कौषल ,,	३४	१५७६	१८	१७६७
एंजीनिअरिंग ,,	५	७५	२	१४१
आर्ट ,,	१	६	१	२३१

दोनों प्रान्तों की आबादी ७½ करोड़ है-अर्थात् सारे जर्मन सामराज्य से भी बढ़ कर है किन्तु जब हम जर्मनी के साथ इन का मुकाबला करते हैं तो व्यापारिक, व्यवसायिक, शिल्पीय शिक्षाओं का सर्वथा अभाव ही है। १९११ में पंजाब में

८०४२२ तर्खान,५१७४३ लोहार,७६६६८७ जुलाहे,७६१७४ कुम्हार और ६१२२ सुनार थे-इन की शिक्षा और कर्म शक्ति बढ़ाने के लिये जाति वा राज की ओर से क्या किया जा रहा है? सर्वथा कुछ नहीं-ऐसी अवस्था में ये लोग अन्य जातियों के शिक्षित, उत्साही, नवीनता प्रिय कारीगरों से क्या कभी मुकाबला कर सकते हैं? कदापि नहीं, इसी कारण प्रति वर्ष इन लोगों की संख्या कम हो रही है।

१४. भारत में शिल्प शिक्षा के अभाव के कारण—शिल्प शिक्षा के अभाव के कारणों की गणना मात्र ही दी जाती है। यदि अब भी उन के दूरीकरण में तन मन धन लगाया जावे तो भारतवर्ष के शुभ दिन दूरस्थ न होंगे।

(१) लगभग १५०० वर्षों से शिल्प का काम शूद्रों और दासों को सौंप दिया गया था-उन के अविद्वान् होने से शिल्प की उन्नति बन्द होने लगी।

(२) मुसलमानी काल में कोई नियमबद्ध शिक्षा न थी, हर एक पेशे का हुनर वंशपरम्परा से चला आता था। हुनर पैत्रिक सम्पत्ति था जो पुत्रों और प्रियतम शिष्यों के अतिरिक्त किसी को प्राप्त न होता था-अब तक भी यही विधि कई पेशों में प्रचलित है।

(३) अब उत्पत्ति की रीतियों में भेद आ जाने से नये प्रकार के हुनरों की ज़रूरत है। हाथों से शिल्प कार्य्य करने की

रीति संसार से उठ रही है वैसे ही भारत से उठ जावेगी। इन नयी विधियों को सभ्य देशों ने ग्रहण किया है और हमें भी ग्रहण करना होगा।

(४) शिल्पशिक्षण का काम जाति या राज की ओर से हो सकता है—भारत में इन दोनों ने ही यह कर्तव्य पालन नहीं किया। १८८४ में भारती राज ने प्रस्ताव पास किया कि 'हर प्रकार की शिक्षा इस तरह उत्साहित करनी चाहिये कि भारतीय नौजवानों का ध्यान व्यवसायिक तथा व्यापारिक पेशों की ओर लगे'। किन्तु इस प्रस्ताव पर बहुत थोड़ा अमल हुआ। निदान लार्ड कर्ज़न ने इन विद्याओं के प्रचार का यत्न किया, किन्तु यह केवल पग उठाना था—उद्देश की प्राप्ति अतीव दूर है!

(५) भारतीयों में आत्म-उन्नति का भाव प्रबल नहीं। दैव वाद और वेदान्त के पक्षपाती होने से वे आलसी और निरुत्साही हो गये हैं?

(६) आरम्भिक शिक्षा का पूर्ण अभाव है-इस कारण जाति को अपनी आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं।

(७) जात_पात के बन्धनों से एक पेशे वाला दूसरे पेशे में नहीं जाता और उच्च जातियों के बालकों को इन पेशों के सीखने की आज्ञा ही नहीं।

(८) शिल्प सिखाने वाले अध्यापकों की कमी है।

(९) जाति की निर्धनता और अनुन्नति प्रियता के कारण भी शिल्प में उन्नति नहीं हो सकती।

(१०) जातपात के बन्धन, निर्धनता, न्यून विद्या और भारतीयों के तिरस्कार के कारण हमारे नौजवान विदेश में नहीं जाते। बस इन कतिपय कारणों से शिल्प शिक्षा का अभाव रहा है-इन का दूरीकरण करते हुए निम्न लिखित रीतियों से शिक्षा का प्रचार करना चाहिये।

१५. शिल्प की बृद्धि के साधन।

(१) बड़े २ नगरों में कला भवन और अद्भुत् शालाएं जाति वा राज की ओर से बनी होनी चाहियें। कला भवनों में नमूने ही न हों बल्कि प्रति दिन कलाएं चला कर प्रजा को दिखानी चाहियें। आज कल भारत की अद्भुत् शालाएं दर्शकों को अधिक अन्धकार में डालने वाली हैं-उन से शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि दर्शकों को दिखाने वाले कर्मचारी नहीं रखे हुए, प्रत्येक अद्भुत् शाला और कला भवन में प्रजा के शिक्षार्थ व्याख्यान होने चाहियें और प्रत्येक दर्शक को पूर्ण तौर पर इष्ट पदार्थ का ज्ञान दिया जावे तो ही विज्ञान का प्रचार हो सकता है।

(२) विद्यालयों के विद्यार्थियों को अध्यापक गण अद्भुत् शालाएं और कला भवन दिखाने के लिये नहीं ले जाते। प्रत्येक विद्यालय में ऐसा करने पर अध्यापकों को बाधित किया जावे।

(३) श्रमियों को साधारण शिक्षा तथा शिल्प शिक्षा देने के लिये स्वयम् सेवक सभाएं बनायी जावें।

४. कारखानों में काम करने वाले बालकों की शिक्षार्थ नियम बताए जावें। बम्बै और मद्रास के प्रान्तिक राज इस विषय में विचार कर रहे हैं किन्तु सारे देश में ही यही नियम प्रचलित किये जावें।

५. प्रत्येक ज़िले में भ्रमण करने वाले शिल्प शिक्षक राज की ओर से नियत होने चाहियें।

६. व्यापारिक, व्यवसायिक, रसायनिक, शिल्पीय, खन्न तथा कृषि विद्याएं प्रान्तिक भाषाओं में पढ़ाई जावें न कि आंगल भाषा में। शिल्प शालाओं में शिक्षा मुफ़्त हो।

७. भारत में जो कारीगर काम कर रहे हैं और जब तक जात पात के बन्धन नहीं टूटते, तब तक उनकी सन्तानों को अपने पेशों में अधिक उत्पत्ति करना सिखाने वाली पाठशालाएं चाहियें। हमारे कारीगरों के औज़ार खुण्डे और भद्दे हैं या काम करने की विधियां कम उत्पत्ति करने वाली हैं, उन्हें शिक्षा देने की ज़रूरत है कि उत्पत्ति वर्धक कौन्सी विधियां तथा औज़ार वे प्रयुक्त करें।

८. उक्त प्रकार की विद्याओं के सिखाने वाली रात्रि पाठशालाएं खोली जावें।

९. कम कीमत के समाचार पत्र देशी भाषाओं में छपने

वाले, राज की ओर से जारी किये जावें-उन में सर्व प्रकार के व्यवसायों की वृद्धि के साधन दिये हों।

१०. राज की ओर से व्यवसायों की वृद्धि के लिये समय २ पर क्रोड़ों की संख्या में मुफ़्त पत्र बांटे जावें।

११. निम्न लिखित पेशों को सिखाने वाली शालाएं हर एक प्रान्त में बहुत संख्या में होनी चाहियें। यहां सुपठित अध्यापक सिखाने वाले हों और बिना फ़ीस के शिक्षा दी जावे :-

मक्खन, पनीर और जमा हुआ दूध बनाना।
बिस्कुट और डबल रोटी बनाना।
देशी और अंगरेज़ी मिठाई बनाना।
खिलौने बनाना।
रंगसाज़ी।
चमरे कमाना तथा रंगना, चमरे का सामान बनाना।
सर्व प्रकार का लकड़ी का काम।
सर्व प्रकार का लोहारी का काम।
निकल का मुलम्मा करना।
बर्तन बनाना।
अलमीनियम का सामान बनाना।
पुस्तकों की भिन्न प्रकार की जिल्दें बांधना।

घरों का बनाना।

घरों की सजावट करना।

कला द्वारा वस्त्र धोना।

कपास, ऊन, रेशम का कातना।

,, ,, के वस्त्र बुनना।

कुम्हारी का काम।

सुनारी का काम।

जौहरी का काम।

मिस्त्री का काम।

कल-एंज़ीनीअर।

विद्युत अंज़ीनीअर।

खनन, एंज़ीनीअर।

घड़ी साज़ी।

घड़ियों की मुरम्मत।

लैसें बनाना।

टाईप द्वारा लिखना।

हिसाब किताब का रखना—मुनीम बनाना।

कम्पाज़ीटर बनाना।

आलेख्य तथा चित्रकारी।

मुहरें बनाना।

दूकानों के signboard बनाना।

शीशे का सामान बनाना ।

तस्वीरें तथा बलाक्स बनाना ।

मट्टी के बर्तन बनाना ।

ईंटें बनाना ।

पत्थरों के पदार्थ बनाना ।

जुराबें, दस्ताना आदि बनाना ।

साबून बनाना ।

मोम बत्ती बनाना ।

तैल निकालना ।

गुड़ को साफ़ कर के खांड बनाना, आदि ।

सारांश ।

१. उत्पादक शक्ति की वृद्धि के लिये विद्या आवश्यक है किन्तु उत्पत्ति की नवीन रीतियों के कारण अधिकतर आवश्यक है ।

२. भारत में प्रारम्भिक शिक्षा के अभाव की साक्षियां स्पष्ट हैं क्योंकि ५१ करोड़ के स्थान पर ४५ लाख बालक पढ़ रहे हैं ।

३. जो बालक पढ़ भी रहे हैं उन पर शिक्षा व्यय अन्य देशों की तुलना से अतीव थोड़ा है ।

४. सभ्य देशों में आरम्भिक शिक्षा आवश्यक है किन्तु भारत में आवश्यक नहीं—जाति को बृहत् यत्न करना चाहिये ।

५. भारत में राज की कृपा से विद्या में कुछ उन्नति हुई है किन्तु वह नाम मात्र है ।

६. भारत वासियों ने अपने ऋषिमुनियों की शिक्षा को भुला दिया- इस कारण अविद्वान् और दुःखी हैं । परन्तु जर्मनी, अमेरीका और जापान में, एवं अन्य देशों में भी प्रजा को पूर्ण विद्वान् करना राज का कर्तव्य है ।

७. जर्मनी ने विद्या के प्रचार से उत्पत्ति बहुत बढ़ा ली है, विद्या के प्रचार की बहुत साक्षियां दी हैं ।

८. सं० प्रं० अमेरीका में भी विद्या का वहुत प्रचार है ।

९. भारत में शिल्प शिक्षा का भी अभाव है क्या राज ही इस के लिये दोषी है, नहीं, इस में जातीय दोषों की भी कमी नहीं । इस कारण शिल्प का प्रचार शीघ्र नहीं होता ।

१०. शिल्प के प्रचार के ११ साधन प्रयुक्त करने से भारत की आर्थिक दशा में शीघ्र परिवर्तन आ सकता है ।

निर्देश

Ind. Ind. Conference Reports—EDUCATION.
Wealth of India (Madras) ,,
Modern Review (Calcutta) ,,
WEBB—Dictionary of Statistics ,,
Census of India Vol I, 1911. ,,
SHADWELL—Industrial Efficiency, Chapts. XVI, XVII.

अध्याय १४

श्रम विभाग
(DIVISION OF LABOUR.)

श्रम विभाग के रूपः-इस पुस्तक के प्रथम खण्ड के चौथे और पांचवें अध्यायों तथा १२५-१२६ पृष्ठों में दिये हुए व्यौरों को पढ़ने से श्रम विभाग का कुछ ज्ञान हो गया होगा। सीधे सादे श्रम विभाग की प्रथा अतीव प्राचीन है। स्त्रियों को घर का सम्पूर्ण काम सौंपना और पुरुषों से बाहिर रोज़ी कमाने का काम कराना श्रम विभाग ही है। शूद्रों से सेवा, वैश्यों से व्यापार, व्यवसाय और कृषि, क्षत्रियों से समाज की रक्षा तथा ब्राह्मणों से समाज की आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों की उन्नति कराना-श्रम विभाग है। हमारे शरीर में जो ११ ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियां हैं-उन में से हर एक का पृथक् २ काम करना-यह परमात्मा की ओर से श्रम विभाग की शिक्षा है। मनुष्य २ की कर्म शक्तियों में भिन्नता भी यही शिक्षा दे रही है। सभ्यता का चिन्ह श्रम विभाग है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि जातियों की उन्नति उस अनुपात से बढ़ती है जिस अनुपात में उन में श्रम विभाग सूक्ष्म होता जावे।

यहां पर यह प्रश्न स्वभाविकतया उठता है कि श्रम विभाग के क्या २ रूप होते हैं? उच्चतम जाति को दृष्टि गोचर करते हुए श्रम विभाग के चार रूप हो सकते हैं:—

१. पेशे २ की भिन्नता होना।

२. एक २ पेशे के पूर्ण उप विभाग होने।

३. फिर उन उपविभागों के अपूर्ण उप विभाग होने।

४. भिन्न २ स्थानों पर भिन्न व्यवसायों का स्थिर हो जाना (देखो अध्याय १५)।

२. प्रथम रूप।

भूमिपति, किसान, मज़दूर, लोहार, तर्खान, कसेरा, कसाई, मछलीगीर, तेली, नाई, कहार, धोवी, चमार, पुरोहित, गवाला, हरकारा, चौकीदार, सुनार, बनिया, साहुकार, दलाल, व्यापारी आदि–पहिले रूप के उदाहरण हैं। वेदों में बहुत से ऐसे पेशों के नाम हैं जिन में से ५८ के नाम हमने अपने इतिहास में दिये हैं १।

३ दूसरे प्रकार के श्रम विभाग में प्रत्येक क्रम स्वतः पूर्ण है–उस के करने वाले अपने यत्नों का फल दूसरों के पास बेच सकते हैं ताकि वे अपने तौर पर उसे प्रयुक्त कर के नयी चीज़ बना लेवें। देखिये भारत में एक ही परिवार कपास पैदा करता, उसे स्वयम् पेंज कर या पेंजे से पिंजवा

१. लेखक का 'भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ ४६

कर स्वयम् कातता, तागों का ताना पेटा बना कर वस्त्र बुन लेता है। किन्तु इस रूप की तीसरे रूप से तुलना कीजिये जो आज कल के कपास के कारख़ानों में पाया जाता है।

४. सारे कारख़ाने की देख भाल के लिये कुछ अध्यक्ष होते हैं उन के आधीन उपाध्यक्ष और फिर उनके आधीन अध्यक्ष रहते हैं, ताकि प्रत्येक कमरे में होने वाले काम को देख सकें। फिर कम से कम ८० प्रकार के भिन्न काम करने वाले श्रमी पुतली घर में मौजूद होते हैं-तब वस्त्र तय्यार होता है। जहां २ कला का प्रयोग नहीं किया जाता जैसे पशुघात में, वहां भी आज कल श्रम विभाग ऐसा सूक्ष्म किया गया है कि उस पेशे में ३० से अधिक क्रम पाये जाते हैं। यहां प्रत्येक श्रमी का काम अपूर्ण होता है-प्रत्येक दूसरे की सहायता करता जाता है और अन्त में एक पदार्थ बन कर बाज़ार में बिकने के लिये तय्यार हो जाता है।

५. श्रम विभाग से उत्पत्ति की बृद्धि।

अर्वाचीन अर्थ शास्त्र के पिता एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक के प्रथम तीन अध्यायों में श्रम विभाग की महिमा गायी है। उन का पिन बनाने का उदाहरण संसार प्रसिद्ध है। उन का कथन है कि 'जब पेशों में क्रमों का विभाग न था और एक ही आदमी पिन बनाने का सारा काम करता था तो वह काठिनता से एक

दिन में एक पिन बनाता था-२० पिन तो कभी नहीं बना सकता था किन्तु मैंने एक छोटा सा कार्खाना देखा जिस में पिन बनाने के अठारह भिन्न क्रम थे, १० आदमी वहां काम करते थे और उन में से कई २ वा ३ क्रमों को कर रहे थे। तथापि हर एक आदमी ४८०० पिन प्रति दिन बना रहा था। अतः क्रमों के उपविभाग के न होने में ४८०० काम ही हो सकता था। पूर्वोक्त से स्पष्ट है कि श्रम विभाग किस प्रकार धन की उत्पत्ति कराने में अतीव सहायक है। यदि १७७६ तक यह अवस्था थी तो आज कल पिन बनाने के काम में कितनी उन्नति हो गयी होगी? कितना सूक्ष्म उपविभाग हो गया होगा! इस उन्नति का अनुमान पाठक इस बात से स्वयम् लगा लेवें कि आज कल हर एक आदमी १५००००० पिन प्रति दिन बनाता है अर्थात् १४० वर्षों में इतनी उन्नति हुई है कि अपने पूर्वजों के मुकाबले में आज ३००० गुणा अधिक पिन एक दिन में एक आदमी बना लेता है! यदि भारत वासियों से पूछा जावे कि तुम ने गत १४० वर्षों में क्या उन्नति की है तो उस का उत्तर नफ़ी में होगा क्योंकि जो सीधी सादी विधियां भी यहां कला कौशल की थीं, वे भी हम भूल गए हैं और इस काल में उत्तरोत्तर कृषि में उमडे हुए चले गये हैं।

६. श्रम विभाग के फल।

अब समझ में आ गया होगा कि श्रम विभाग के द्वारा धनोत्पत्ति में हम आश्चर्य्य जनक उन्नति कर सकते हैं। उस के फल ये हैं:—

I श्रमी अधिक उत्पन्न कर सकता है।

II पूंजी के प्रयोग के असंख्य अवसर होते हैं।

III पेशों और क्रमों की भिन्नता होती है।

IV उक्त कामों को चलाने के लिये अनुभवी अध्यक्षों की आवश्यकता होती है।

उत्पत्ति का खर्च अतीव न्यून हो जाता है।

अब उन विशेष कारणों का अध्ययन करना आवश्यक है जिन से श्रम विभाग के द्वारा धन की वृद्धि होती है।

७. श्रम विभाग के लाभ।

१. कार्य्य सीखने में थोड़ा समय व्यतीत होता है— पुस्तक छापने के लिये यदि कोई मनुष्य उस के सब कार्य्यों को सीखे जैसे कम्पोज़ करना, कला पर छापना, कागज़ काटना, जिल्द बांधना आदि, तो स्पष्ट है कि इन पर, एक ही कार्य्य के सीखने की अपेक्षा बहुत समय लगेगा और वह सीखने वाला पुरुष यह चारों काम भी भली प्रकार न सीख सकेगा। किन्तु

जहां एक कार्य्य शीघ्र सीख जावेगा, वहां उस में अति निपुण भी हो जावेगा नहीं तो हरफ़न मौला रहेगा।

२. काम करने में स्फूर्ती बढ़ जाती है। निपुणता अभ्यास से आती है, काम को काम सिखाता है, करता उस्ताद न करता शागिर्द—यह लोक प्रसिद्ध कहावतें हैं और हैं भी सत्य, क्योंकि जब सदा एक ही काम में मनुष्य लगा रहे, तो उस काम के करने वाले अङ्ग की शक्ति बढ़ जाती है और अन्य अङ्ग ढीले पड़ जाते हैं। अतः वह कार्य्य बड़ी शीघ्रता तथा सुगमता से होता है। जिस ने कपड़े बुनने की कला में छोटी २ बालों को तागा चढ़ाते देखा हो वा तार बाबू को टिक २ करते वा कोशाध्यक्षों को नोट देखते वा रुपया गिनते तथा खोटे रुपयों और नोटों को निकालते देखा हो, वह उस स्फूर्त्ती का ठीक अनुमान लगा सकता है। अथवा आर्य्य स्त्रियों को ऊन कातते तथा उस के गट्टे बनाते जिस ने देखा हो कि किस फुर्त्ती से वे भिन्न २ किस्म की ऊन पृथक् २ गट्टे में डालती हैं, वह उन की स्पर्श शक्ति का अनुमान कर सकता है। इसी प्रकार रसायन का विद्यार्थी जिस सुगमता से भिन्न २ गैसों को सूंघने से ही बताता है, वह आश्चर्य्यदायक प्रतीत होता है। जौहरी जिस प्रकार चक्षु की सहायता से मणियों को देखता है वैसा अन्य कोई नहीं कर सकता। ऐसे अन्य कई उदाहरण श्रम विभाग में स्फूर्ति के दिये जा सकते हैं।

३. बहुत सा समय तथा कष्ट बच जाता है। यदि भिन्न २ कार्य्य करें, तो भिन्न २ औज़ार चाहियें-इन के उठाने और रखने में समय व्यतीत होगा। साथ ही जब कोई कार्य्य आरम्भ किया जाता है, तो उस में पहिले पहिल मन नहीं लगता, पाहिले पांच दस मिनटों में उतना कार्य्य नहीं होता जितना फिर होने लगता है। और यह होना भी चाहिये। क कार्य्य के करने में क अङ्ग लगा हो, यदि ख कार्य्य में ख अङ्ग चाहिये, तो मन पहिले कार्य्य से पृथक होकर ख में लगेगा। इस परिवर्तन के लिये समय चाहिये। कृषि में श्रम विभाग थोड़ा है, अतः समय बहुत नाश होता है। परन्तु फूरिये (Fourrier) महाशय श्रम के स्वाभाविक कष्ट को दूर करने के लिये श्रम को खेल बनाना चाहता था, और एक मनुष्य को उस की शक्ति के अनुसार भिन्न २ काम करा के श्रम विभाग की नीरसता तथा कष्ट को दूर करना चाहता था।

४. श्रम विभाग से नये २ आविष्कार होने सम्भव हैं-जब एक मनुष्य आयु भर एक कार्य्य करता है, तो सोते जागते उस का मन उसी में लगा रहता है। यदि वह मनुष्य बुद्धिमान् है, तो वह ऐसे उपाय निकालेगा जिस से उस का कार्य्य सुगमता से तथा शीघ्र होसके या स्वयम् ही होता जावे और वह घर बैठा आनन्द लेवे। इस में सन्देह नहीं कि नये आविष्कार वैज्ञानिक लोग किया करते हैं परन्तु उन की ईजादों पर छोटी २

उन्नतियां काम करने वाले श्रमी भी कर लेते हैं । अतः आज कल देखा जाता है कि ईजाद करने वाले को पूरा बदला नहीं मिलता क्योंकि कोई अन्य पुरुष थोड़ी सी उन्नति करके अन्य प्रकार का पेटैन्ट (patent) ले लेता है और खूब कमाता है। श्रमी लोग कैसे ईजादें करते हैं-यह भली भांति उत्पादक सहकारी समितियों के विषय में प्रकट हो जायगा । इसी श्रम विभाग के कारण भिन्न योग्यताओं वाले नर नारी भिन्न ईजादों के करने में लगे हुए हैं। प्रतिवर्ष सभ्य देशों में हज़ारों पेटन्ट कराये जाते हैं। देखिये १६०७ में ही पेटन्ट आदि की निम्न संख्याएं हैं-जब एक वर्ष में इतनी नयी चीज़ें निकलती हों तो सभ्य देशों ने अब तक श्रम विभाग के कारण क्या नहीं किया होगा ?

देश	पेटन्ट	मार्का	नमूने
स० रा० अमेरीका	३६६२०	७८७८	....
संयुक्त राज	१६२७२	५८६५	२४३८६
जर्मनी	१३२५०	१०२६६	३०६५७
फ्रांस	१२६८०	१३६१३	५६२३४
जापान	१६८६	३५०८	७५१
भारत	६०५	....	८७

(१६११ में)

उक्त ब्यौरे में अपनी मातृभूमि की अवस्था देखिये । स्मरण

रहे कि १६११ के अन्त तक केवल २६१७ पेटन्ट भारत सरकार दे चुकी थी। भारत में पेटन्ट कराने का अधिकार देने वाला नियम १८८८ में प्रचलित हुआ था। तब से लेकर अब तक गिनती के ३००० पेटन्ट हुए हैं जब कि अमेरीका में एक वर्ष में ही ३६६२० पेटन्ट हुए। विचित्र घटना यह है कि १६०१ से १६११ तक हर वर्ष ६० या ७० के लगभग प्रार्थना पत्र भारतीयों की ओर से आये, नहीं तो अधिकांश विदेशियों ने ही उद्योग किया है!

५. शारीरिक तथा मानसिक बलों के अनुसार श्रम बांटा जा सकता है। यदि श्रम-विभाग न हो तो बच्चे, कमज़ोर पुरुष, स्त्रियां, लूले, लङ्गड़े, अन्धे और अन्य अङ्ग हीन पुरुष काम करके पेट न भर सकें। अब यह सब लोग कार्य्य कर सकते हैं। अतः श्रम विभाग से मानव जाति को अनिर्वचनीय लाभ हुआ है। साथ ही मनुष्य की भिन्न योग्यताओं का प्रयोग किया जा सकता है। बदन की फुर्ती, शारीरिक बल, विचित्र स्मरणशक्ति, विशेष बुद्धि और विवेचना शक्ति, धीरता, वीरता, सन्तोष, साहस, विद्यारस, भिन्न शिल्पों में विशेष नवीनता प्रकट करने की शक्ति—अर्थात् मन, आत्मा, शरीर की सर्व शक्तियों को पूर्ण रूप में प्रकट होने का अवसर मिलता है।

६. आर्थिक लाभ भी बड़ा है:—(क) यदि भिन्न २

कार्य्य मनुष्य करे, तो सब में एक सा निपुण नहीं हो सकता और एक सा निपुण होता हुआ भी एक समय में एक सा नहीं कमा सकता। यदि एक पुरुष तर्खानी, लोहारी तथा कृषि के कार्य्य में एक सा निपुण हो तो तर्खानी के कार्य्य को करता हुआ यदि वह एक घन्टे में अधिक कमा सकता है तो उसे अन्य कार्य्य नहीं करने चाहियें। इसी प्रकार वैद्य को स्वयं अपना कमरा साफ़ करना, पानी लाना, तथा भोजन नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि यह कार्य्य करते हुए वह ६ घन्टे लगावे तो २ आने का काम हुआ। यही समय यदि वह रोगियों के देखने में लगावे, तो सम्भवतः २ रुपया कमा लेगा वा संसार का उपकार ही करेगा। इस कारण श्रम विभाग होने से अधिकतम आय देने वाले पेशे में मनुष्य लग सकता है।

७. कम खर्ची—श्रम विभाग में प्रत्येक मज़दूर को केवल वे औज़ार देने पड़ते हैं जो उस के काम के लिये आवश्यक हैं। किन्तु श्रम विभाग के न होने पर प्रत्येक मज़दूर को उस के व्यवसाय के सारे औज़ार देने पड़ते जिन में से बहुत से बेकार पड़े रहते क्योंकि एक ही समय में सब औज़ारों का प्रयोग असम्भव है। इस प्रकार व्यवसाओं में धन की बचत होती है।

८. श्रम विभाग से कलाओं का प्रयोग अवश्य बढ़ता है। जब रसायन तथा विद्युत् की उपयोगता वस्तुओं के बनाने में

की जाती है, तो यह कलाओं के बिना नहीं हो सकता चूंकि कलाओं से संसार में बहुत से लाभ होते हैं। अतः श्रम विभाग का यह सर्वोत्तम लाभ है।

एक पेशे के ज्यूं २ अधिक अधिक क्रम होते जाते हैं, त्यूं २ काम सुगम होता जाता है-अतः उसे कलाद्वारा करना सम्भव है। वस्तुतः ऐसा ही हुआ है। श्रम विभाग के कारण कलाओं का प्रयोग खूब बढ़ता गया है। साथ ही प्रत्येक श्रमी चाहता है कि काम थोड़ा करे और धन अधिक कमावे, इस के लिये नयी कला बनाने का वसीला ढूण्ढता है। ज़रूरत इजाद की माता है अतः वह कामयाब भी हो जाता है।

९. ज्यूं २ क्रम सादे होते जाते हैं त्यूं २ उन का एक दूसरे से अन्तर कम होता जाता है। इस का उत्तम फल यह है कि जब कई कारणों से एक श्रमी को अपना काम छोड़ना पड़े तो वह दूसरे काम को शीघ्र सीख सकता है, अतः उस का शिल्प व्यर्थ नहीं जाता।

१०. सब कठिन कार्य कलाओं द्वारा किये जाते हैं। अतः आज कल कठोर शारीरिक श्रम नहीं रहा, होथों, आंखों और मन का काम अधिक हो गया है। श्रम विभाग के अभाव में कठिनतम तथा घृणित कार्य्य भी मनुष्यों को स्वयम् करने पड़ते हैं।

११. समकालीन कर्मों का सम्भव होना ।

एक ही समय में भिन्न कामों के करते हुए किसी विशेष उद्देश की प्राप्ति करना—जैसे समुद्र से मोती निकालने हों तो एक पुरुष गोता लगाता है जब कि दूसरे पुरुष कला के द्वारा उसे जल में ही वायु पहुंचाते और मोतियों की तलाश हो चुकने पर ऊपर खींचते हैं ।

१२. समय की बचत ।

एवम् नगर की आग बुझाना, फ़सल काटना, मच्छि-लियों का झोल पकड़ना, आदि कर्म शीघ्रता से करने आवश्यक होते हैं, अतः उन में बहुत से नर नारियों को मिल कर काम करना पड़ता है ।

१३. साहसिकों की आवश्यकता ।

संसार में कई काम ऐसे हैं कि उन के करने वालों को कई वर्षों के पश्चात् उनसे आमदनी होने लगती है जैसे नहरों, रेलों, जहाज़ों और महलों का बनाना । अब विचारिये कि क्या उक्त पदार्थ कभी बन सकें यदि उनके बनाने वाले श्रमियों को कहा जावे कि तुम काम करते जावो जब आमदनी होने लगेगी तभी तुम्हें मज़दूरी किस्तवार दी जावेगी ? कोई मज़दूर इस शरत पर काम नहीं करेगा । किन्तु यदि एक पुरुष या कम्पनी साहसिक का काम करे, अर्थात् उक्त कामों के करने वालों

को निरन्तर उचित भृति देती जावे और स्वयम् उस दिन की प्रतीक्षा करे कि जब काम समाप्त होकर आय देने लगेगा, तो ऐसे काम सुगमता से हो सकते हैं। आज कल के सभ्य संसार में इस शैली का बहुत प्रचार है। साहसिकों और व्यवसाय-पतियों की एक श्रेणी है जो प्रतीक्षा करती है और उत्पत्ति के अन्य साधन चिन्तारहित हो कर काम करते हैं और अपने यत्नों का निश्चित फल ले लेते हैं।

१४. श्रम विभाग के बिना आधुनिक बड़े कार्य्य नहीं हो सकते। बड़े २ जहाज़ों तथा रेलों को चलाना, जहाज़ों को बना कर समुद्र में डालना, बन्दरगाहों का बनाना, पानामा नहर, देहली की जामा मसजिद, मिश्र के मीनार, चीन की दीवार जैसे कार्य्य-कतिपय मनुष्यों से नहीं हो सकते। इन में भिन्न २ शक्तियों तथा हुनरों वाले मनुष्य मिलकर काम करें तो सुफलता होती है।

८. शारीरिक हानियां—भिन्न कार्य्यों में आयु कम हो जाती है और कई प्रकार के रोग लग जाते हैं और आयु भर एक ही काम करने से रोगोन्नति हो जाती है। भिन्न २ पेशों में मृत्यु की संख्या निम्न लिखित है।

इंगलैण्ड में १००० प्राणियों के प्रति मृत्यु संख्या
१६००-२ में आयु २५-४५ वर्ष ।

नाम पेशा	मृत्युकीसंख्या	नाम पेशा	मृत्युकीसंख्या
टीन खोदने वाला	१६.३५	पादरी	३.४३
साधारण मज़दूर	१८.६२	अध्यापक	४.२६
छाबरी वाला	१८.२७	बाग़बान	५.३२
होटल वाले	१७.८६	रंग साज़	७.७४
दुकानदार	१५.२६	कुम्हार	६.०१
रेती बनाने वाला	१३.५८	मछलीगीर	६.४८
मद्य निकालने वाला	११.२८		
कोचवान	१०.६८		

• डाक्टर नीसन ने आंग्ल देश में मृत्यु की संख्या प्रतिशतक यह बताई है:—

नाम पेशा	मृत्युकीसंख्या	नाम पेशा	मृत्युकीसंख्या
सीसा बनाना	२.२४	मट्टीके.बर्तनबनाना	२.५७
काग़ज़ बनाना	१.४५	लोहा खोदना	१.८०
टीन ,,	१.६१	टीन ,,	१.६६
लोहा ,,	१.७५	सीसा ,,	२.५०
शीशा ,,	१.८३	ताम्बा ,,	३.१७

६. मानसिक हानियां:-

ज्यूं २ सभ्यता बढ़ती जाती है श्रम में अधिक विभाग होता जाता है। इससे काम तथा जीवन में समता (Monotony) भी बढ़ती जाती है। कैसे शोक का समाचार है कि सारी आयु एक मनुष्य ने तागा कातने में लगाई हो वा सुई के पचीसवें भाग के बनाने में व्यतीत की हो? जब आधुनिक समय में विभाग ऐसा सूक्ष्म है, तो भावी में तो अधिक सूक्ष्म हो जायगा। इससे परमात्मादत्त सर्व शक्तियों का नाश हो जाता है और जब किसी कार्य्य की मनुष्यों को कई कारणों से आवश्यकता नहीं रहती तो वह श्रमी अन्य कार्य्य नहीं कर सकता। इस से श्रमियों की जो अवनति होती है, अनिर्वचनीय है। रस्किनाचार्य्य (Ruskin) ने सच कहा है कि यह श्रम का विभाग तो नहीं, पर मनुष्यों का विभाग है। वस्तुएं तो बनाई और सुधारी जाती हैं परन्तु मनुष्य बिगाड़े जाते हैं। कल्पना में तो यह कथन ठीक प्रतीत होते हैं परन्तु यदि व्यवहार में देखा जावे, तो नाहीं इतनी समता है और नाहीं काम के छूटने से इतने कष्ट होते हैं जितने बयान किये जाते हैं, आज कल के कार्य्यों को देख कर एक बात तो स्पष्ट है कि मज़दूरों को उतना शारीरिक कष्ट नहीं होता जितना पहिले होता था। सारा कष्ट का काम कला कर देती है। मज़दूर केवल कलाओं के चलाने में लगे हैं। इस का परिणाम यह है कि कार्य्य की समाप्ति के

पश्चात् सायं काल वे किसी पाठशाला में पढ़ने तथा हुनर सीखने के लिये जा सकते हैं। यह विचार मात्र ही नहीं परन्तु दैनिक देख भाल में यह बातें हो रही हैं। आज कल इतनी समता वा नीरसता काम में नहीं रही जितनी पहिले हुआ करती थी। जुलाहा सारा दिन एक खड्डी पर काम करता था। आज कल एक मनुष्य ५ वा ६ खड्डियां अपने घर पर लगादेवे, तो आनन्द से काम करता है। इस कार्य्य में अधिक बुद्धि भी उसे लगानी पड़ती है और समता भी कम होती है। जीवशास्त्र (Biology) का यह एक नियम है कि जीवों के वे अङ्ग—मानसिक तथा शारीरिक—बलवान् होते जाते हैं, जिन का वे बहुत प्रयोग करते हैं। किन्तु बहुत प्रयोग करने का अभिप्राय यह है कि जीव को उस क्रिया से आनन्द प्राप्त होता है। यदि कतिपय पेशों तथा कार्य्यों में यह आनन्द प्राप्त न हो, तो आनन्द लाने का प्रयत्न करना चाहिये। काम के छूट जाने से श्रमियों को इतना कष्ट नहीं होता जितना कि पूर्व समय में हुआ करता था। जुलाहे का कार्य्य जब कला करने लग गई, तो प्रत्येक स्थान में इन श्रमियों को अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े क्योंकि उन्हें अन्य कोई हुनर न आता था, भारतवर्ष में तो अब तक यह शोकमय घटना हो रही है। परन्तु आज कल श्रम विभाग के कारण कार्य्यों का भेद बहुत थोड़ा रह गया है और फिर जो भेद है वह कतिपय दिनों में सीखा जाता है, अतः श्रमी लोग शीघ्र अन्य कार्य्यों में जा

सकते हैं। इस समय तो बेकारी की दुहाईयां सुनी जा रही हैं—वे इस लिये नहीं कि श्रमी लोग काम नहीं कर सकते बल्कि इस कारण हैं कि काम थोड़ा है और श्रमी अधिक हैं।

१०. जातीय हानियां:—श्रम विभाग से नगरों की आबादी बढ़ती है और एक पेशा दूसरे पर निर्भर होने से उस की सुफलता दूसरे पर निर्भर हो जाती है। १८६२ में युद्ध के कारण अमेरिका से इंगलैण्ड में कपास जानी बन्द हो गई। उस से कपड़े बुनने वाले देशों में जो हानियें हुई—वे ऐतिहासिक बातें हैं, किसी से छिपी नहीं। नगरों में आबादी के बढ़ने से जो हानियां होती हैं, वह एक उदाहरण ही से ज्ञात हो जावेगी, ग्रामों से जो हट्टे कट्टे लोग लण्डन में आकर निवास करते हैं, वे क्रमशः क्षीण होते जाते हैं, और ऐसी दशा होती है कि १०० वर्षों के पश्चात् उन की पूर्व पुष्टि का नाम नहीं मिलता। यदि लण्डन जैसे शहरों में ग्रामीणों की यह दशा होती है, तो भारत के गन्दगी से भरे और अत्यन्त अस्वास्थ्य वर्धक नगरों में क्या हाल होता होगा? इस प्रकार श्रम-विभाग की कई हानियां हैं

परिशिष्ट

श्रम की मात्रा की भिन्नता के कारण:—

१. समय. कार्य करने का कष्ट उस अनुपात से बढ़ता है

जिस अनुपात से समय बढ़ता है। एक सप्ताह तक काम करने से एक दिन के कार्य्य करने की अपेक्षा सात गुणा कष्ट साधारणतया होगा। 'साधारणतया' का अभिप्राय यह है कि अन्य सब अवस्थाएं समान रहें, तो सात घन्टों का काम एक घन्टे से ७ गुणा अधिक कष्ट देगा।

२. कष्ट (Intensity of work)–एक घन्टे के सख्त काम में अधिक कष्ट हो सकता है अपेक्षा उस के जब वही कार्य्य सुगमता से ३ घन्टों में किया जावे। एक मील घुड़ दौड़ तथा किश्ती चलाने के मुकाबिले में जितना स्पर्धा करने वाले थक जाते हैं उतना साधारण तौर पर घोड़ा दौड़ाने वा किश्ती चलाने से नहीं थकते। जितना तन मन से काम किया जावे, उतनी ही थकावट अधिक होगी।

३. तय्यारी. कार्य्य सीखने के लिये जो समय, कष्ट और धन व्यय हुए हैं उस कार्य्य में श्रम की मात्रा के मापार्थ इन का विचार कर लेना चाहिये। जिस कार्य्य के सीखने में १५ वर्ष लगे हों, उस में एक घन्टे का परिश्रम ऐसे कार्य्य की अपेक्षा बहुत अधिक है जिस के सीखने में केवल १५ दिन व्यय हुए हों। अतः वकील को यदि एक घन्टे के लिये १०० रुपये मिल जावें और मज़दूर को १ आना, तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं।

४. सामान्य दशाएं (General conditions)–उन

शारीरिक, भौमाण्डलिक, मानसिक और आत्मिक दशाओं का जिन में रह कर काम किया जाता है विचार करना आवश्यक है। अधिकतर यही दशाएं श्रमियों के आचार को बनाती और बिगाड़ती हैं। अतः इनका अच्छा वा बुरा होना कार्य्य की अनुपयोगता को बहुत परिवर्त्तित कर देता है।

५. **विशेष दशाएं** (Special conditions)—प्रत्येक व्यवसाय में अपनी २ विशेष बातें हैं जिन की अनुपयोगिता भिन्न २ व्यवसायों में भिन्न २ हैं।

६. **कार्य्य करने की शक्ति**—इस शक्ति के माप के लिये घन्टे, दिन और वर्ष नहीं लिये जाते परन्च मनुष्य की आयु को माप लिया जाता है। भिन्न २ पेशों का आयु पर क्या प्रभाव पड़ता है-इस का वास्तव भृति में भी विचार किया जावेगा। जिस पेशे में आयु कम होती हो, उस पेशे में परिश्रम अधिक समझना चाहिये। इस प्रकार श्रम की मात्रा के तत्व हो चुके हैं।

सारांश

श्रम विभाग के रूप
- भिन्न २ पेशे।
- पूर्ण उपविभाग।
- अपूर्ण उपविभाग।
- स्थानीय व्यवसाय।

श्रम विभाग के फल

- अधिक उत्पत्ति।
- पूंजी के प्रयोग के अवसर।
- पेशों और क्रमों की भिन्नता।
- प्रबन्ध की आवश्यकता।
- कम खर्ची।

श्रम विभाग के लाभ

- काम का शीघ्र सीखना।
- अधिकतम फुर्ती।
- समय की बचत।
- नये २ आविष्कार।
- योग्यता अनुसार सब काम करते हैं।
- धन की वृद्धि।
- कलाओं का प्रयोग बढ़ता है।
- क्रमों में समानता आती है।
- श्रम की बचत।
- प्रबन्ध कर्ताओं की आवश्यकता।
- बड़े काम हो सकते हैं।

श्रम विभाग की हानियां
- रोग बढ़ जाते हैं।
- कामकी नीरसता।
- कम हुनर आवश्यक है।
- मनुष्य कला बन जाता है।
- नगरों की वृद्धि।
- पेशों का आश्रय।
- कलाओं से उत्पत्ति के दोष।

निर्देश

A. MARSHALL—Principles of Economics, Book IV, Chapter IX.

GIDE—Political Economy, Book I, Chapter III.

NICHOLSON—Principles of Political Economy, Book I, Chapter VII.

PENSON—Economics of Everyday Life, Chapter VI

TAUSSIG—Principles of Economics, Book I, Chapter III.

अध्याय १५

व्यवसायों का स्थानीय होना।

Localization of Industry
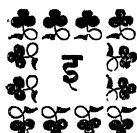
स अध्याय में निम्न विषयों की व्याख्या दी जावेगी:—

(I) व्यवसायों के स्थानीय होने का लक्षण तथा प्रमाण।

(II) स्थानीय होने के कारण :

(क) स्वाभाविक (ख) सामाजिक (ग) राष्ट्रिक (घ) श्रम विभाग की वृद्धि (ङ) अन्तर जातीय विश्वास की वृद्धि (च) जातियों की योग्यताओं में भिन्नता।

(III) स्थानीय होने के लाभ :

(क) शिल्प पैत्रिक हो जाता है। (ख) आविष्कार छिपे नहीं रहते। (ग) गौण तथा सहायक व्यवसाय खुल जाते हैं। (घ) साख की वृद्धि।

(IV) स्थानीय होने की हानियां :

(क) नर, नारी, बालकों में से कोई एक काम कर सकता है तीनों को काम नहीं मिलता।

(ख) व्यवसाय की शिथिलता से हानियां।

(v) अप्राकृतिक धन भी स्थानीय होता है।

१. व्यवसायों के स्थानीय होने के लक्षण--व्यवसायों के स्थानीय होने से हमारा अभिप्राय भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ व्यवसायों के एकत्र होने से है-इसी का नाम राष्ट्रीय श्रम विभाग (International or Territorial Division of Labour) है।

मध्यम काल के मेलों और भ्रमण करने वाले व्यापारियों की सत्ता प्रकट कर रही है कि जिन बहुत सी चीज़ों को व्यापारी बेचने के लिये आते हैं उन में से प्रत्येक वस्तु एक या दो स्थानों में उत्पन्न होती है, वहां से सारे देश या सारे संसार में बेची जाती है, अर्थात् इन में से प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति स्थानीय होती है, उदाहरणार्थः जर्मनी के रंग, फ्रांस का मद्य, कानपुर के बूट, शिलाजीत, चाय, हिंगू, ऊन, चीन के रेशमी वस्त्र, बमिंघम के चाकू, लैंकेशाइर के कपासी वस्त्र, स्वीडन की दियासलाई की डब्बियां, कश्मीर के पट्टू, बनारसी रेशम, मुरादाबाद के गिलटी बर्तन और मुलतान के मट्टी के बर्तन लीजिये।

भारत में व्यवसाय के स्थानीय होने के प्रमाण।

व्यवसायों के कारखाने	प्रान्त	भारत के ख्याल से श्रमियों की प्रतिशतक संख्या
नील	बिहार उड़ीसा	१००
कोइले की खानें	,,	६१
,,	,,	८३
चाए	आसाम	७०
सोना	मैसूर	८८
सन	बंगाल	९७
गैस के कारखाने	,,	७३
ईंटों ,,	,,	४८
तेल ,,	,,	४४
मट्टी के तेल ,,	बर्मा	९९
लकड़ी काटने ,,	,,	७६
आटा और चावल,,	,,	७०
कपास ,,	बम्बै	६२
चूने ,,	,,	५१

भिन्न २ देशों और विशेष तौर पर अपने देश में व्यवसाय

के स्थानीय होने के प्रमाण मिल गये, अब हमें इस के कारण देखने चाहियें जो यह हैं:—

२. (क) स्थानीय होने के प्राकृतिक (स्वाभाविक) कारण—(क) जिस स्थान पर कोई प्राकृतिक पदार्थ पाया जाता है वहां से उसे निकालने का काम वहीं स्थानीय होना चाहिये। यथा—सोना चांदी, मोती, मणि, कोयला, सर्व धातुएं, पत्थरादि जहां २ पाये जाते हैं वहीं उन के व्यवसाय स्थानीय हो गये हैं।

एवम् जल वायु और भूमि की उपजाऊ शक्ति की भिन्नता के कारण हर स्थान पर सब पदार्थ पैदा नहीं हो सकते, कुछ पदार्थ ही ख़ास तौर पर पैदा होते हैं जैसे काबुल के अनार और अंगूर, काश्मीर के सेब और केशर, आसाम की चाए, बंगाल में सन, इत्यादि।

एवम् जल के प्रपातों के पास व्यवसायों का एकत्रित होना एक साधारण घटना है।

(ख) जिन स्थानों पर जहाज़ या किश्तियां ठहर सकती हों वहां व्यापार स्थानीय हो जाता है। चौरस्ते तथा राजधानीयों में भी उन की स्वाभाविक अवस्थाओं के कारण व्यापार स्थानीय होते हैं। एक नगर में भिन्न २ मण्डियों का होना उन के स्थानीय व्यापार का उदाहरण है: सब्ज़मण्डी, गन्दम मण्डी, घी मण्डी, वस्त्र मण्डी, लक्कड़ मण्डी, सराफ़ बाज़ार, कसेरा बाज़ार, इत्यादि २।

विशेष स्थानों पर श्रमियों और पूंजी की अधिकता के कारण भी व्यवसाय स्थानीय हो जाते हैं ।

(ग) स्थानीय होने के राष्ट्रीय कारण—भिन्न २ देशों में भिन्न २ समयों पर राजाओं ने देश की उन्नति वा अपने सुख के लिये अन्य प्रान्तों वा देशों से शिल्पियों के समूह स्वराज्य में आबाद किये । वहां नई आबादी में व्यवसाय व व्यापार स्थानीय हो गया । महाराजा रणजीत सिंह ने ऊनी वस्त्र के बुनने वाले जुलाहों को लाहौर और अमृतसर में आबाद किया, अब तक भी दोनों शहर विशेष कर अमृतसर इस बात के लिये प्रसिद्ध हैं । मुग़ल बादशाओं ने देहली तथा आगरे में शिल्पियों को आबाद किया । विशेष कर सिलमा सितारों, दरियों, ग़लीचों के काम बहुत उन्नत हो गये, इसी प्रकार से ऊन के शिल्पी वेल्ज़ में आबाद किये गये और काश्मीर तथा कान्धार में भेड़ों के होने के कारण शालों और कम्बलों का व्यवसाय स्थानीय होगया ।

(घ) श्रम विभाग भी व्यवसाय के स्थानीय होने में बड़ा कारण है—देशीय श्रम विभाग से भिन्न २ देशों में भी भिन्न २ व्यवसाय होते हैं और एक देश में भी भिन्न स्थानों पर स्थानीय होते हैं । बैस्टेबल महाशय का कथन है कि स्पर्द्धा होते हुए पदार्थों की उत्पत्ति योग्यतम मनुष्य ही नहीं करते परन्तु योग्यतम स्थानों में भी होती है । क्योंकि उन की जलवायु

भौगोलिक अवस्था, पानी का गमनागमन और भूमि के भौगोलिक निर्माण (Geological formation) से देशों में भिन्नता आती है। उपर्युक्त कारणों से जो जो उत्तम २ स्थान होंगे वहां २ व्यापार स्थानीय हो जावेगा।

(ङ) अन्तर्जातीय विश्वास का बढ़ना—ज्यूं २ अन्तर्जातीय व्यापार बढ़ रहा है और जातियों की स्थिरता का विश्वास बढ़ता जाता है त्यूं २ अधिक मित्रता सम्भव होती जाती है।

(च) जातियों की स्वाभाविक शक्ति का भिन्न होना। कईयों का यह विचार है कि जातीय स्वभाव में एकता और प्रेम का ह्रास हो रहा है, अतः व्यापार का स्थानीय होना भी भावी में कम होगा। परन्तु हम जानते हैं कि भिन्न २ जातियों की भिन्न २ प्रवृत्तियां, भिन्न २ योग्यताएं और भिन्न २ साधन हैं इन तीनों की विशेषता से वे भिन्न २ वस्तुएं ही उत्तमतया उत्पन्न कर सकेंगी।

इस प्रकार व्यवसाय के स्थानीय होने व राष्ट्रीय श्रम विभाग के छैः कारण प्रकट हो चुके, अब ध्यान पूर्वक उस के लाभों को पढ़ना चाहिये।

३. व्यवसाय के स्थानीय होने के लाभ।

(क) शिल्प पैतृक हो जाता है—अतः श्रमियों की सन्ता-

नों को शिल्प सीखने में समय कम लगता है। जैसे भारत, ऐसी-रिया और मिश्र में उपजातियों (ज़ातों) के कारण शतशः वर्षों से एक एक परिवार में अपना २ पैतृक शिल्प जीवित रहा है।

(ख) पड़ौसी के आविष्कारों से अन्य भी शीघ्र लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि साथ २ रहने से आविष्कारों का छिपाना कठिन हो जाता है।

(ग) पार्श्ववर्त्ती सब अवस्थाएं व्यवसाय के कौशल की सहायक होती हैं और सारी सहायक अवस्थाएं श्रमियों की कार्य्यक्षमता को बढ़ाने में अपना बल लगाती हैं।

(घ) कार्य्य के स्थानीय होने से छोटे २ गौण (Subsidiary) और (Supplementary) सहायक व्यवसाय उत्पन्न हो जाते हैं। व्यवसायों के पृथक २ होने से गौण पदार्थ पूर्णतया उपयुक्त नहीं हो सकते। व्यवसायों के स्थानीय होने से इन गौण पदार्थों की उत्पत्ति ठीक तौर पर हो सकती है, इन्हीं की उत्पत्ति करने वाले व्यवसायों को हम गौण (Subsidiary) व्यवसाय कहते हैं, अन्य कई ऐसे व्यवसाय हैं जो कि स्वतन्त्र हैं परन्तु जिन को किसी दूसरे व्यवसाय के स्थानीय होने से कुछ लाभ है। जैसा कि स्थानीय व्यापार में यदि पुरुष ही आवश्यक हों तो ऐसे सहायक व्यवसाय खोले जावेंगे जिन में बालकों तथा

स्त्रियों की भी आवश्यकता हो, अर्थात् गौण पदार्थों का व्यर्थ न जाना और नर नारियों तथा बालकों का काम में लगना व्यवसाय के स्थानीय होने से हो सकता है। व्यवसाय के स्थानीय होने से उस स्थान की विशेष प्रसिद्धि हो जाती है। अतः प्रत्येक शिल्पी वहीं जा कर और अपना विशेष काम दिखा कर प्रशंसा और लाभ प्राप्त कर सकता है। शिल्पियों को नौकरी मिलनी सुगम हो जाती है क्योंकि स्थान २ पर सेवा की तलाश में भटकना नहीं पड़ता और अधिक भृति मिलने का भी उन्हें अवसर हो सकता है।

(घ) सामान मंगाने वालों को भी बहुत सुगमता रहती है और एक प्रकार से नगर की साख (good-will) हो जाने से वहां के व्यापारी खूब कमा सकते हैं। जैसे जर्म्मनी की पैन्सिलें, लङ्केशायर का कपड़ा, मुल्तान तथा डेरा इस्माईल खां के मट्टी के बर्त्तन, ढाका की मलमल, बनारसी कपड़ा, कश्मीर की शालें, स्विटर्जलैंन्ड की घड़ियां, स्वीडन की दियासलाई इत्यादि नगरों तथा देशों की प्रसिद्धि होने से माल मंगाने वालों को सुगमता होती है॥

४. स्थानीय व्यापार की हानियां।

(I) यदि स्थानीय व्यापार में केवल पुरुषों की आवश्यकता-

हो तो गृहस्थियों को सपरिवार रहने व न रहने की दोनों अवस्थाओं में कष्ट होगा क्योंकि यदि वह परिवार सहित न रहें तो अकेला होने का कष्ट है यदि रहें तो पारिवारिक आय बहुत कम हो जाती है क्योंकि वहां परिवार कुछ नहीं कमा सकता। इस कारण श्रमियों के गृहस्थी होने की दशा में बहुत दुःख है। परन्तु आज कल ऐसा उपाय किया गया है कि स्थानिक व्यवसाय के साथ कई ऐसे व्यवसाय खोल दिये जाते हैं कि जिन में स्त्री और बालक थोड़ी सी भृत्ति पा कर काम करते हैं इस से व्यवसायपतियों को भी लाभ है और श्रमियों के परिवारों को काम मिल जाता है।

(II) स्थानिक व्यवसाय में शिथिलता आने से सारे नगर में हा हा कार मच जाता है। श्रमियों की भृति शिथिलता के समय कम होजाती है। व्यापार मन्द पड़ जाता है। अतः निस्सन्देह सारे नगर में दुःखों की नदी टूट पड़ती है। परन्तु भिन्न २ व्यवसाय एक स्थान में होने से जब एक व्यापार व व्यवसाय में किसी प्रकार की शिथिलता आवे तो बाकी सारे व्यवसाय चलते रहने से लोगों को हानि अनुभव भी नहीं होती। लैंकेशायर में दो वर्ष पूर्व कपास के दुष्काल से जो पचासों कारखानों को बन्द करना पड़ा और जो व्यापारिक हानि उस नगर के निवासियों को हुई और इसी प्रकार उपर्युक्त कारणों से अहमदाबाद और बम्बई में जो दुःख हुए, वे पाठकों को याद ही

होंगे। भारत में जिन २ स्थानों पर व्यवसाय के स्थानीय होने के प्रमाण हम प्रथम अङ्क में दे चुके हैं यदि वे किसी कारण से उन स्थानों पर बन्द होने लगें तो कैसी अकथनीय विपत्ति उन स्थानों के निवासियों पर आपड़ेगी? सच्च मुच्च यह हानि बहुत बड़ी है किन्तु कोई अकन्टक वस्तु, संसार में नहीं मिलती। व्यवसाय स्थानीय होने से मानवजाति को जो लाभ होते हैं वे हानि की तुलना करते हुए महान प्रतीत होते हैं, इस कारण भावि में इस की वृद्धि ही होगी, कमी की आशा नहीं।

अध्याय १६

भारत में शिल्प की दशा

हमारे भारत वासियों में यह जनोक्ति है कि—

उत्तम खेती मध्यम व्यापार,

निखिद चाकरी भीख नकार।

किन्तु आज कल के संसार में व्यापार व्यवसाय का दूसरा दर्जा नहीं बल्कि सब से प्रथम स्थान है। कृषि तो निखिद प्रतीत होती है जब उस के अवगुणों की परीक्षा की जाती है विशेष तौर पर वह खेती जिस में विद्या, विज्ञान, नवीनता कलाकौशल का स्थान न हो—अतीव निकृष्ट समझनी चाहिये। म० लिस्ट[1] ने इस विषय पर बड़े विस्तार से अपनी पुस्तक में लिखा है, उसी के आधार पर यह प्रकरण लिखा जाता है।

१. कृषि की हानियां।

(क) किसानों को प्रकृति की उदारता वा अनुदारता पर बहुत

---

१. म० लिस्ट जर्मनी निवासी थे। १७८६ से १८४६ तक जीवन यात्रा रही।

आश्रय करना पड़ता है, उन्हें ऋतुओं के अनुसार अपना काम बदलना पड़ता है। भूमि की उत्पादक शक्ति और वर्षा की मात्राओं, ओलों के पड़ने, बाढ़ों और टड्डी दलों के आने से उन की फ़सलें कमो बेश होती हैं किन्तु व्यवसाय पत्ति इन दुःखों के आधीन नहीं।

(ख) व्यवसाय, व्यापार और शिल्पकारी में कृषि की अपेक्षा अधिकतर बुद्धि और हुनर की ज़रूरत होती है। कृषि में लोग मन्द बुद्धि, पुरानी रीतियों के प्रेमी, अनुत्साही और दैव पर आश्रय करने वाले हो जाते हैं। किसान लोग साधारण श्रमियों का काम करते हैं, किन्तु व्यवसाय में कारीगरी चाहिये। बे हुनर (अकुशल) श्रमियों से कारीगरों की मज़दूरी सदैव अधिक होती है, अतः व्यवसाय में कृषि के अपेक्षा अधिक भृतियां भी मिलती हैं।

(ग) कृषि में श्रमविभाग इष्ट मात्रा में नहीं हो सकता किन्तु व्यवसाय में श्रमविभाग से अनिर्वचनीय लाभ हैं। भारत जैसा कृषि-प्रधान देश श्रमविभाग के लाभों से अपरिचित रहता है।

(घ) व्यवसाय जैसी विशेषता कृषि में नहीं आ सकती ऋतुओं की भिन्नता के कारण किसान लोग मजबूर हैं कि भिन्न २ पदार्थ पैदा किये जावें किन्तु व्यवसायिक तथा व्यापारिक लोग सारा वर्ष एक काम के करने में लगाते हैं, अतः वे प्रशंसनीय निपुणता प्राप्त कर लेते हैं।

(ङ) कृषि में उत्पत्ति निश्चित नहीं होती किन्तु व्यवसाय में सब साधन पुरुषाधीन होने से उत्पत्ति निश्चित होती है। भारत में जितने दुष्काल पड़ते और जितने नर नारी उन से मरते हैं वे कदापि न मरें यदि हमारे लोग व्यवसाय में लगे हुऐ हों।

(च) कृषि में क्रमागत—ह्रास नियम लगता है किन्तु व्यवसाय में क्रमागत-वृद्धि नियम लगता है। (देखो पृ० २५६–२६७) व्यवसाय में श्रम विभाग, व्यवसाय के स्थानीय होने, नये आविष्कारों तथा बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के नाना प्रकार के लाभ होने से वृद्धि नियम लगता है किन्तु कृषि में प्रायः इसके उलट बातें होती हैं। भारत में चिर काल से भूमि निःसार हो चुकी है, प्रति वर्ष उस की उत्पत्ति कम हो रही है, अनाज पैदा करने का व्यय उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, इस प्रकार कृषि-प्रधान देशों की प्रजा अधिक २ दुःखी और व्यवसाय प्रधान देशों के वासी अधिक २ सुखी होते हैं। कीमतों के परिवर्तन देखिये

	भारत		इंगलैण्ड	
वर्ष	खाद्य	शिल्प आगत	१६०१–१०में१८६७–७७केमुकाबले से कीमतें यूं कम हुईं	
१८६७	६७	६५		
१८७३	१००	१००	खाद्य पदार्थ	३०%
१८००	१६२	६७	धातु	११%
१६०६	१६५	६६	वस्त्र	३१%
			भिन्न	२७%

(छ) कृषि के लाभ, व्यवसाय के लाभों के सामने कुछ भी नहीं। कई लोगों का विचार होगा कि एक बीज के डालने से ५० दाने उत्पन्न हो जाते हैं, अतः कृषि के तुल्य कोई भी लाभ दायक पेशा नहीं, किन्तु यह भूल है। व्यवसाय में भिन्न प्रकार के सैंकड़ों श्रमी लग कर पदार्थ की उपयोगताओं को बढ़ाते हुए अपनी भृतियां लेते हैं। एक रुपये का लोहा ७०० रुपयों के उस्त्रों और वैद्यों के अस्त्रों में तब्दील किया जाता है। खेती में तीन चार प्रकार के आदमी लगते हैं, अतः केवल उन को स्वश्रम का बदला मिलता है।

(ज) व्यवसाय-प्रधान देशों में भृतियों, लाभों तथा कार्य्यों की अधिकता के कारण आबादी जिस शीघ्रता से बढ़ती है, उस शीघ्रता से कृषि प्रधान देशों में नहीं बढ़ती।

(झ) शिल्प, कला कौशल, व्यवसाय ही स्वदेशी तथा विदेशी व्यापारों का आधार हैं और वे ही व्यापारिक जहाज़ी बेड़ों की मौलिक नींव हैं। व्यापारिक बेड़ों की रक्षार्थ सैनिक बेड़े बनाये जाते हैं। शिल्पी माल बेचने तथा उस के लिये कच्चा माल प्राप्त करने के लिये नयी २ बस्तियां बसाई जाती हैं। अतः व्यवसाय प्रधान देश सब प्रकार से उन्नत हो जाते हैं किन्तु कृषि प्रधान देशों में इन बातों का अभाव होता है। इंगलैण्ड ने व्यवसाय की बृद्धि करके सर्व जातियों में उच्च स्थिति प्राप्त की है और भारत ने कृषि के कारण अधोगति देखी है!

(ञ) किसान सदा पृथक २ रहते हैं, ग्रामों और बनों में जीवन व्यतीत करते हैं, उन की शिक्षा भी अति परिमित होती है, इस कारण वे सभ्यता को क्या उच्च कर सकते हैं? राष्ट्रिक संस्थाओं के तत्वों को कैसे समझ सकते हैं? भला, वे शासन और न्याय करने, अपनी स्वतन्त्रता तथा अधिकारों की रक्षा करने में कैसे कामयाब हो सकते हैं? प्रत्येक देश में केवल कृषि में लगी हुई जातियां सदा दासत्व में रही हैं, स्वेच्छाचारी राजाओं, सरदारों या ब्राह्मणों ने उन्हें सदैव लताड़ा है। यह दासत्व के भाव लोगों के रगो रेशे में भर जाते हैं, निदान वे लोग इसी से प्रेम करते हैं और इसे हटाने का यत्न नहीं करते!

(ट) कृषि प्रधान देशों के निवासियों में भ्रमण कम होता है, वे अपनी ज़मीनों के कीड़े बन जाते हैं, प्रवासी नहीं हो सकते। किन्तु व्यवसाय में खूब भ्रमण होता है, भूमि का मालिक अपनी भूमि उठा कर दूसरे स्थानों में नहीं ले जा सकता किन्तु कारीगर लोग सारे संसार में जा कर काम कर सकते हैं, एवम् पूंजीपति भी यथेच्छा अपना धन लगा सकता है। प्रवासता से उत्साह, नवीनता, ज्ञान, धीरता, वीरता स्वाधीनता की वृद्धि होती है, भारत वर्ष में कृषि के कारण इन गुणों का अभाव है। व्यवसाय में आत्म विश्वास बढ़ता है और काम करने वालों में गुण वर्धक स्पर्द्धा या मुकाबला होता है किन्तु कृषि में प्रारब्ध

पर विश्वास और ईर्षा द्वेष की वृद्धि होती है। भारत वर्ष इर्ष्या द्वेष की अग्नि से भस्म हो गया है, इसे दैववाद और सांसारिक उन्नति न कराने वाले वेदान्तवाद ने उजाड़ दिया है। अतः यदि भारतीय लोग उन्नति के इच्छुक हों तो उन्हें दोनो कृषि तथा व्यवसाय उन्नत करने चाहियें।

२, देशों में व्यवसाय की अवस्था।

यह बात हृदय पर अङ्कित कर लेनी चाहिये कि भारत कृषि-प्रधान देश है और इंगलैंड व्यवसाय प्रधान, किन्तु जर्मनी तथा स० प्र० अमेरीका में दोनों कृषि तथा व्यवसाय की प्रचुर उन्नति हो गई है। निम्न व्यौरा उक्त कथन की साक्षि है।

१०० देशनिवासियों के प्रति पेशों का विभाग।

	इंगलैंड	सं.प्र.अमे.	जर्मनी		भारत
पेशा	१९०१	१९००	१८८२	१९०७	१९०१
कृषि ...	८	३५.१	४२.५	२८.७	७१
व्यवसाय ...	५८	२४.४	३५.५	४२.७	१२
व्यापार ...	१३	१६.४	१०	१३.५	७
घर की सेवा ...	१४	१९.२	... ...	... ...	१.८

भारत में जहां कृषि की प्रधानता है वहां वह कृषि

अनपढ़ों के हाथों में होने से निखिद् रीतियों से होती है। अन्य देशों में या तो व्यापार व्यवसाय की प्रधानता है या कृषि बड़ी उत्तम रीतियों से की जाती है। संयुक्त प्रान्त अमेरिका में १७६० में १०० में से ८७.५ आदमी कृषि से निर्वाह करते थे किन्तु १६०० में केवल ३५ आदमी गुज़ारा करते थे, साथ ही उस देश में जमीन की पैदावार कई गुना बढ़ गई है। यही अवस्था जर्मनी में दीख पड़ती है। संयुक्त राज में भी प्रशंसनीय उन्नति हुई है, यथा १८४१ में २६.८% लोग कृषि में लगे थे। १८८७ में १६ % और १६०१ में केवल ८%। व्यवसाय से निर्वाह करने वालों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती गयी है। शिल्प पदार्थों की उत्पत्ति में निरन्तर उन्नति हुई है और इंगलैंड सभ्यता के शिखर पर पहुंच चुका है। किन्तु भारत वर्ष में बहुत उन्नति नहीं दिखाई देती, इस का प्रधान कारण यही है कि हमारे ३/४ आदमी साधारण कृषि में लगे हैं। ऐसे लोगों की सभ्यता के बारे में भी लिस्ट के शब्द स्मरणीय हैं :

'जो देश केवल साधारण खेती में लगे होते हैं, उन में मन की मन्दता, शरीर का भद्दापन, पुराने रीति रिवाजों, विचारों और उत्पत्ति की विधियों के साथ प्रेम की विद्यमानता और सभ्यता, वैभव, समृद्धि, स्वतन्त्रता का अभाव पाया जाता है। दूसरी ओर जो देश व्यापार व्यवसाय में लगे हुए हैं उन में मानसिक और शारीरिक गुणों की निरन्तर वृद्धि के लिये उद्योगी होने और मुकाबला तथा स्वतन्त्रता के भाव पाये जाते हैं'।

३. भारत में किसान बढ़ रहे हैं।

इन शब्दों की सत्यता का अनुभव भारत वर्ष का अन्य देशों से मुकाबला करने पर हो सकता है। परन्तु शोक का समाचार यह है कि ज्यूं २ समय व्यतीत होता है त्यूं २ खेती में लोग बढ़ रहे हैं। सभ्य देशों में ज़मीन की पैदावार भी बढ़ रही है और किसानों की संख्या भी कम हो रही है किन्तु भारत में किसानों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है और दस्तकारी, शिल्प, व्यवसाय में लगे हुए लोग कम हो रहे हैं। अतः लिस्ट साहब के बताये हुए अवगुणों की वृद्धि और गुणों की कमी भारत में हो रही होगी ?

अति विचित्र घटना है कि सम्पूर्ण भारत में १८६१ से १६०१ तक ६८,५६,१५७ नर नारी बढ़े थे किन्तु इन दस वर्षों में खेती करने वालों की संख्या २,०२,८६,६६५ बढ़ी। अर्थात् कुल आबादी तो २ प्रतिशतक बढ़ी किन्तु किसानों की संख्या १२ प्रतिशतक बढ़ गई। स्पष्ट है कि अन्य पेशों में व्यवसाय, शिल्पादि में लोग कम होगये, हुनर वाले पेशों को छोड़ कर लोग बेहुनर की खेती करने लगे !

यह वृतान्त इन १० वर्षों का ही नहीं, अगले १० वर्षों में भी यही अवस्था हुई। १६०१ से १६११ तक ६.६% आबादी सारे भारत में बढ़ी किन्तु किसानों की वृद्धि १४.८% हुई। विचित्र तर अवस्था यह है कि भारत के एक एक कोने में यही प्रवृत्ति दीख पड़ती है। कोई प्रान्त और रजवाड़ा इस दुरावस्था से नहीं बचा हुआ। नीचे का ब्यौरा इस कथन का पोषण करता है, इसे १६०१ और १६११ की जन संख्या रिपोर्टों से उद्धृत किया गया है।

कृषि में लगे हुए मनुष्यों की प्राति सहस्र मात्रा।

देश	१८६१	१६०१	१६११
भारत	६४५	६७५	७१६
आसाम	८६३	८५५	८६०
बंगाल	७०७	७३६	७६२
बरार	६६४	७४४	७८७
मध्य प्रदेश	६७४	७०६	
बम्बई	६१३	६०७	६७३
बर्मा	६३५	६७१	७०३
कूर्ग	७४७	८२४	८२५
मद्रास	६००	६६१	७०१

पंजाब	५४१	५८५	६०१
युक्त प्रान्त	६६०	६६१	७३३
बड़ोदा	६००	५२६	६५४
मध्यभारत	४८१	५३०	६३४
हैदराबाद	४७८	५१६	६१६
काश्मीर	६८१	७६५	७१६
मैसूर	६७३	६६३	७३०
राजपूताना	५४०	६०१	६४७

उक्त ब्यौरे के पाठ से ज्ञात हो गया होगा कि रजवाड़ों में किसान बनने की मात्रा अंग्रेज़ी इलाके से भी अधिक है। इसका क्या कारण है ? सब स्थानों पर एक ही व्याप्त कारण काम कर रहा है-वह अन्य देशों के साथ हमारा व्यापारिक सम्बन्ध है ! विदेशीमाल के आने से देश में घोर आक्रान्ति आ रही है। हम ने अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले सामान स्वयम् बनाने नहीं सीखे,वे हम अन्य देशों से मंगाते हैं। अंग्रेज़ी इलाके में तो फिर भी नये २ कार्ख़ाने बन रहे हैं किन्तु हमारे रजवाड़ों के निवासी विद्यादि में पीछे होने से नये कार्ख़ाने तो बना नहीं रहे और विदेशीमाल धराधर ख़रीद कर अपने कारीगरों के हाथों से उन का काम निकाल रहे हैं। लोगों को प्रतिदिन के जीवन में मालूम न होता हो कि हम किस प्रकार अवनति कर रहे हैं किन्तु जो ब्यौरे हम ने ऊपर दिये हैं उन से ठीक अनुमान हो सकता है। ज्ञान हो जाने से अब तो भारतीयों को सुचेत

होना चाहिये। दस्तकारी में उन्नत विधियां प्रयुक्त करनी चाहियें और नये २ कार्खानों के खोलने में तत्पर होना चाहिये। देखिये! ४½ करोड़ की आबादी वाले संयुक्त राज में तो १९०८ में २५९९८९ कारखाने थे किन्तु भारत जैसे वृहत् देश में १९११ में ७११३ कार्खाने थे।

भारत में व्यवसाय की कमी नगरों की कमी से भी स्पष्ट है:—

नगरों का प्रकार	भारत	इंगलैंड
२ लाख वा उस से अधिक की आबादी ...	१०	१६
१ लाख वा ,, ,, ...	३०	४४
½ लाख वा ,, ,, ...	७७	९८

यह भी स्मरण रहे कि इंगलैंड की आबादी ३½ करोड़ थी और भारत की ३१½ करोड़।

इंगलैंड में **नगरों की आबादी** बढ़ती गयी है किन्तु पंजाब में घटती गयी है:—

	१८८१	१८९१	१९०१	१९११
इंगलैंड में	६७.९	७२	७७	७८.१
पंजाब में	१२.९४	११.५७	११.५६	११

५. भारत में कार्खानों का प्रकार।

१९११ में व्यवसायिक कार्खानों तथा उन में काम करने वालों की संख्याएं निम्न थीं:—

कार्खाने का प्रकार	संख्या	श्रमी
भारत वर्ष	७११३	२१०५८२४
शक्ति से चलाए जाने वाले	४५६६	१८०३६६२
हाथ से चलाए जाने वाले	२५४४	३०१८३२
चाए के कार्खाने	१००२	७०३५८५
कहवे ,, ...	४८२	५७६२३
नील ,, ...	१२१	३०७६५
कोयले ,, ...	३५३	१४२८७७
सोने ,, ...	१२	२८५६२
कपास ,, ...	११२७	३०८१६०
सन ,, ...	२२३	२२२३१६
चमरे ,, ...	१२२	६३६६
तेल ,, ...	२०८	९७४५
मट्टी के तेल,, ...	६	१०८५८
आटे और चावल के कार्खाने ...	४०३	४२३७४
बूटों के कार्खाने	२३	५१६३
छापेखाने	३४१	४१५६८
रेलवे वर्कशाप	११८	६८७२३
गैस वर्क्स	१४	४६८०

भारतीय व्यवसायों में उन्नति की साक्षियां

माल	१८७६ करोड़ रुपयों में	१८९२ करोड़ रु० में	%वार्षिक उन्नति	१९०७ करोड़ रु० में	%वार्षिक उन्नति
शिल्पी माल जो बाहिर से आया	२६	३६.२	२.८	६६.८	६
कच्चा माल ,,	१३.७	२६.३	६.५	६०	८½
शिल्पी माल जो बाहिर गया	५.३	१६.४	१५	३९.२	८¼
कच्चा ,,	५८.६	८५.५	३	१३४	२⅘

स्पष्ट है कि १८७९ से भारत में विदेशों से कच्चा माल अधिक २ आता रहा है। इसे यहां के व्यवसायी जनों ने शिल्पीमाल में तब्दील किया होगा। साथ ही भारत का बना हुआ सामान अन्य देशों में पहिले १५% की मात्रा से बढ़ता गया फिर ८¼% की मात्रा से बढ़ा। यदि कई व्यवसाय न बढ़े होते तो यह साक्षियां कहां से मिलतीं ? आवो ! अब हम प्रधान २ व्यवसायों की उन्नति वा अवनति कुछ विस्तार से देखें।

६. विदेशी व्यापार में उन्नति

विदेशों से आये हुए पदार्थों की मात्रा जो १८७३-४ से १९१०-११ तक बढ़ी है-निम्न ब्यौरे में दी जाती है। उस से ज्ञात होगा कि यद्यपि ३८ वर्षों में कुल आयात २.७ गुणा हुए हैं किन्तु कई आवश्यक पदार्थ दस वा पन्द्रह गुणा अधिक आने लगे हैं-चौथी पङ्क्ति में दी हुई संख्याओं को याद रखना चाहिये। इसी विदेशी सामान के धावे के कारण भारतीय दस्तकारी कम होती गई है और भारतीयों ने अन्य देशों का व्यवसाय में अनुकरण न करने से अपने शिल्प तथा व्यवसाय का नाश कर लिया है।

भारत के आयात

पदार्थ	१८७३-४	१९१०-११	वृद्धि
१	पा० २	पा० ३	४
कपासी वस्त्र	१५१५५६६६	२७८०१६९०	१.८३ गुणा
ऊनी वस्त्र	६६८९११	२०१३१२५	३
रेशमी वस्त्र	६०८३७४	१८४३०८२	३
पोशाक	५७८२२०	२०६५११७	३½
तेल	६७४४९	२४०४०५१	३५½
शीशे का माल	३३३३३४	१०४५४८८	३

धातुवें तथा उन का सामान	१७३८५०७	१२७१३६६७	७$\frac{1}{4}$
खाण्ड	५५८६७८	८७७७३१०	१५ $\frac{3}{4}$
तम्बाकू	७१४०७	३२७६१२	४$\frac{1}{2}$
रंग	१३६६२६	८६६१५४	६$\frac{1}{2}$
कुल आयात	३१६२८४६७	८६२३६०११	२$\frac{7}{10}$

भारत से बाहर जाने वाले पदार्थों के निम्न ब्यौरे को देख कर आंखों के द्वार सर्वथा खुल जाते हैं, ऊनी वस्त्रों, रेशम, रेशमी वस्त्रों, खाण्ड, नील के भेजने में हम ने हृदयविदारक अवनति की है कि १८७३ के मुकाबले में १०० के स्थान पर क्रमवार ७८$\frac{1}{2}$, २७$\frac{1}{2}$, २१, ३७, ६ पदार्थ १९११ में बाहिर गये हैं। हां ऊन, चावल, गेहूं, खालें, बीज, पात, चाए और कपासी वस्त्र के भेजने में हम ने खूब उन्नति की है क्योंकि १०० के स्थान पर १९११ में १०५$\frac{1}{2}$, २७९, १०४४, ३३३, ७०६, ३$\frac{1}{4}$, ५६, ४७२ और ११२$\frac{1}{2}$ माल क्रमबार बाहिर गया। कच्चा माल धराधर देश से बाहिर जा रहा है क्योंकि शिल्प पदार्थ बनाने के साधन हमारे पास नहीं और शिल्प पदार्थ क्रमशः कम हो गये हैं।

भारत के निर्यात।

पदार्थ	१८७३-४	१९१०-१७	भिन्नता
१	पा० २	पा०	३ १०० के स्थानपर ४

ऊनी वस्त्र	२२९५०२	१८०५४२	७८.६
रेशम	१२२५५९९	३३७०१९	२७.९
रेशमी वस्त्र	२३९८६५	५१२६७	२१.३
खाण्ड	२८१७४३	१०४२४३	३६.९
नील	३५५५३००	२२३५२९	६.२
ऊन	९६६८३२	१८९०८५७	१९५.६
चावल	५५४९७९८	१५४८७७७५	२७९
गेहूं	८२७६०६	८६३८८१९	१०४३
खालें	२६१८३५८	८७२३१९९	३३३
तेल-बीज	२३६१४५१	१६७४८९६३	७०९
पात(jute)कच्चा	३४३६०१५	१०३२६६४९	३२५
पात का शिल्प			
सामान	२०१६६९	११३२९६४८	५६
चाए	१७५४६१८	८२७७५७९	३७२
कपासीवस्त्र	१४१४१९७	१५९१९७४	११२.५

हर एक प्रधान व्यवसाय की उन्नति या अवनति का अब कुछ विस्तृत वर्णन दिया जाता है ताकि उन्नति के मार्ग ज्ञात हो जावे और पाठक सुभीते से धन की कमाई में लग सके।

७. भारत में कपास के कारखाने।

	१८७६-७७	१८९१	१९०१	१९११
कार्खानों की संख्या	४७	१२५	१९७	२५३
तकलों की संख्या (१० लाखों में)	१.१	३.२	५	६.५२
खड्डियों की संख्या (सहस्रों में)	९.१	२४.६	४१ ८	८६.२
वस्त्र (१० लाख पाऊण्डज़)	...	...	११९	२६६

स्पष्ट है कि गत पैंतीस वर्षों में काफ़ी उन्नति हुई है :- कतलों की संख्या छै गुना हो गई है और कारखाने भी ५ गुना बढ़ गये हैं। केवल १० वर्षों में ही वस्त्र की उत्पत्ति दुगनी हो गयी है। किन्तु स्मरणीय तो यह बातें हैं कि विदेशों से आये हुए वस्त्रों का ३४वां भाग ही अभी भारत में बनता है, कि अंगरेज़ी इलाके में २२६ पुतलीघर थे उन में से ८४ बम्बई में और ५४ अहमदाबाद में पाये जाते थे, कि एक वर्ष में ही ४२ करोड़ रुपयों का कपासी वस्त्र बाहिर से आया !

भारत वर्ष जैसे वृहत् देश में तकलों की संख्या अतीव न्यून है, यथा अन्य देशों से उस का मुकाबला निम्न ब्यौरे में कीजिये :—

संसार में कपास के तकले (लाखों में)

	१९०८ ई०	१९११ ई०
१. संयुक्त राज	५२८	५४५
२. स० प्र० अमैरीका	२७८	२८६
३. जर्मनी	९९	१०५
४. रूस	७९	८७
५. फ्रांस	६७	७३
६. भारत वर्ष	५५	६३
७. आस्ट्रिया	४०	४६
८. इटली	४२	४६

स्मरण रहे कि रूस को छोड़ कर बाकी ६ देशों की आबादी भारत के बराबर है किन्तु उन में ११,४४०,०००० तकले थे जब कि भारत में केवल ६२००००० तकले थे। इसी कारण हम उक्त देशों से ४२ करोड़ रुपयों का वस्त्र मंगा कर पहनते हैं ! शोक की घटना यह भी है कि हमारे कारखानों में अभी तक मोटा वस्त्र बुना जाता है, महीन काम का अभाव है। अन्य देशों के मुकाबले में इस अंश में भारत की अवस्था नीचे के व्यौरे से पूर्णतया ज्ञात होगी :—

प्रत्येक तकले पर कपास का व्ययः—

संयुक्त राज	स० प्र०अ०	फ्रांस	जर्मनी	रूस	भारत
७१	१७०	१३७	१७३	२५०	३७१

इंगलैंड में सब से महीन और भारत में सब से मोटा वस्त्र कारखानों में बनता है, इस के कई कारण हैं किन्तु हुनर वाले श्रमियों का अभाव ही प्रधान कारण है। निम्न ब्यौरे में अंग्रेज़ और भारतीय श्रमियों के कामों का मुकाबला देखिये तभी पाठक विद्या, हुनर, साहस के महत्व को जान सकता है:—

	लैंकेशायर	भारत
१००० तकलों पर श्रमी... ...	४.२	३०
१००० खड्डियों पर श्रमी ...	४.४	६०
प्रति श्रमी तागे की मात्रा (पाउण्ड)	७७३६	३७००
प्रति श्रमी वस्त्र की मात्रा (गज़)	३७७४०	१४०००
प्रति श्रमी भृति (रुपये) ...	८१	१३

जब इस बात का भी अनुमान किया जावे कि भारत में मोटे और इंगलैण्ड में महीन वस्त्र बनते हैं तो प्रति श्रमी उत्पत्ति की मात्रा इंगलैण्ड में और भी बढ़ जाती है। किन्तु निराश होने का अवसर नहीं है। सर्व प्रकार की कठनाइयां मनुष्य ही अपने पुरुषार्थ से दूर किया करते हैं। महान् कार्य्य एक दिन में

पूर्ण नहीं होते। यदि गत ३५ वर्षों में हम ने प्रशंसनीय उन्नति कर ली है तो अब उस से अधिक श्रम, साहस,पुरुषार्थ लगाने से अधिक उन्नति कर सकते हैं।

अभी तक हमारे देश में हाथ से काफ़ी कपड़ा बुना जाता है। १९०६ में १६५०० लाख गज़ वस्त्र बुना गया था जब कि १९११ में कार्खानों में ११२६० लाख गज़ बनाया गया था और विदेश से २४३७० लाख गज़ वस्त्र भारत में आया था। खड्डी पर बनाया हुआ वस्त्र अधिक पायेदार होता है किन्तु वह सुन्दर, महीन और सफ़ेद नहीं होता। प्रायः कोरा वस्त्र बनाया जाता है। दिन प्रति दिन जुलाहों की संख्या कम होती जाती है। हाथ से काम करने का ज़माना व्यतीत हो गया है। आज कल की कलाओं के साथ हाथ से काम करने वाले कदापि मुकाबला नहीं कर सकते। आधुनिक समय में व्यापार व व्यवसाय एक युद्ध क्षेत्र बना हुआ है। जिस जाति के पास वीर तथा बुद्धिमान श्रमी और अधिकतम उत्पत्ति करने वाली कलाएं होंगी वही जाति अन्य जातियों को परास्त कर सकती है, जैसे आज कल तीर कमानों से लड़ने वाली सेना तोपों बन्दूकों से सुसज्जित सेना का कदापि मुकाबला नहीं कर सकती वैसे खड्डियों पर वस्त्र बुनने वाले भारतीय जुलाहे अंग्रेज़ों का मुकाबला नहीं कर सकते। यही कारण है कि प्रति वर्ष

विदेश से उत्तरोत्तर अधिक सामान आ रहा है और भारत की दस्तकारी नष्ट हो रही है। जब तक भारतीय लोग कलाओं से बड़ी मात्रा में उत्पत्ति करना नहीं सीखते, तब तक कल्याण नहीं होगा।

इंगलैराड में कपासी व्यवसाय की उन्नति।

५०० पा० के गट्ठों का व्यय	१८९८–९ ३५१९०००		१९०७-८ ३६९००००
कपास का आगमन (१० लाख पा०)	१७००-५ १.१७	१८७६-८० १४५६	१८९६-१९५ १७९८
तागे तथा वस्त्रों का निर्गमन (१० लाख पा०)		६८.४	६६.४

अब ऊन के व्यवसाय को लीजिये :

८. भारत में ऊनी वस्त्रों के कार्खाने।

	१९०१	१९११
कार्ख़ानों की संख्या	४	४
खड्डियों की संख्या	५९४	... ...
तकलों ,,	२२९००	... ...
उत्पत्ती (१० लाख पाऊण्ड)	३.९	४.७

१९११ में ५१ लाख रुपये का वस्त्र बनाया गया किन्तु विदेश से ३४० लाख रुपये का ऊनी वस्त्र आया! विदेश से आने वाले ऊनी वस्त्रों की मात्रा प्रति वर्ष बढ़ती गई है। ३७ वर्षों में

ही ३ गुना अधिक वस्त्र भारत में आये हैं। फिर शोक जनक घटना यह है कि इन वर्षों में उत्तरोत्तर अधिक ऊन इस देश से बाहिर जाती रही है और ऊनी वस्त्र जो विदेशों में भारत से जाया करते थे वे कम मात्रा में जा रहे हैं। ३७ वर्षों में २२ प्रति शतक कमी हुई है। हमें उचित था कि ऊनी वस्त्रों के कार्खाने यहां बनाते। किन्तु कोई विशेष उन्नति अब तक नहीं की गई यह चार कार्खाने भी अंग्रेज़ों की मल्कीयत हैं—उन की कामयाबी को देख कर भी भारत वासी उत्साहित नहीं हुए।

अब तक देश के बहुत से भागों में ऊनी वस्त्र हाथ से बुने जाते हैं किन्तु वे मोटे २ कम्बल या थोड़ी सी शालें तथा चादरें होती हैं। वे विदेशी माल का सस्तापन तथा सुन्दरता में मुकाबला नहीं कर सकते,इस कारण कलाओं से वस्त्र बनाना यहां भी आरम्भ करना चाहिये। संयुक्त राज में १६०४ में ६६८०००० तकलों और १०४५०० खड्डियां पर काम हो रहा था। १६०७ में ८५० लाख पौण्डज़ का ऊनी सामान बनाया गया था। क्या भारत कभी संयुक्त राज का मुकाबला ऐसी अवस्था में कर सकता है ? हां ! यदि विद्या, उत्साह, उन्नति का प्रेम हम में हो तो शीघ्र हम भी इंगलैंड जैसे बन सकते हैं।

६. पात (Jute) के व्यवसाय की उन्नति।

कार्खानों की सं०	खड्डियों की संख्या(सहस्रोंमें)	तकले (सहस्रोंमें)	पूंजी (करोड़ रुपयोंमें)

१८७६-७	१८	३	२२.६	...
१८८२-३	२०	५.६	६५.७	२.३४
१८९१-२	२७	८.७	१७४	३.१३
१९०१	३६	१६	३३१	६.९६
१९११	६१	३५	६९६	१४.७३

पात के कार्य्य का केन्द्र बंगाल में है और बीसवीं सदी में ही आश्चर्य्य जनक उन्नति इस काम में हुई है क्योंकि १० वर्षों में कार्खानों की संख्या ६६%, खाड्डियों की संख्या ११६%, तकलों की संख्या १०६% और पूंजी की मात्रा ११२% बढ़ जाना कोई साधारण बात नहीं। इस व्यवसाय की वृद्धि से अधिक श्रमियों की आवश्यकता हुई है और मज़दूरों की मज़दूरी भी बढ़ गई है। कच्चा जूट तो देश से लग भग उसी मात्रा में जाता है किन्तु उस की बनी हुई गोनियां ५६% और वस्त्र १२६ % अधिक मात्रा में विदेश जाने लगे हैं। यद्यपि जूट का सारा कार्य्य यहां भी अंग्रेज़ों के हाथ में है तो भी उस की उन्नति भारत के लिये हितकारी है।

---

1 Moral and Material Progress Reports 1872-73, 1882-3, 1891-2, 1911-12.

१०. चाए की पैदावार में उन्नति।

	१८७५-६	१९०१	१९११
चाए वाली भूमि (एकड़)	१२५	५१५	५७४
उत्पन्न चाए (१० लाख पा० में)	२६.५	१९१.३	२६८.८
विदेश में गई (१० लाख पा० में)	२४.५	१७९.६	२६०.७

चाए की उत्पत्ति का काम भी अधिकतर अंग्रेज़ों के हाथ में है, अतः देखिये कि क्या अद्भुत उन्नति उन बुद्धिमान् पुरुषों ने कर दिखाई है! ३५ वर्षों में ही चाए बोने के लिये ४½ भूमि अधिक ली है किन्तु १०गुना अधिक उत्पत्ति कर ली है और१० गुना से भी अधिक चाए विदेश भेज रहे हैं। भारत वर्ष में भी चाय की मांग बढ़ रही है और विदेश में अधिक २ चाए भेजी जा रही है। चीन को इन्हों ने पछाड़ डाला है क्योंकि भिन्न वर्षों में निर्यात चाए की मात्रा यह थीः—

देश	१८८४-५	१९०६
चीन	२१०	१८७.२
भारत	६०	२३६.७
लंका	८	१६२.२

इस प्रकार भारत तथा लंका ने चीन से चाए का व्यवसाय तथा विदेशी व्यापार छीन लिया है,अब तो भारत और लंका को एक दूसरे से भय है,नहीं तो अन्य देश अंग्रेज़ों के पुरुषार्थ के सामने झुक चुके हैं।

११. नील के व्यवसाय की अवनति ।

अति प्राचीन काल से भारत वर्ष नील की उत्पत्ति के लिये प्रसिद्ध रहा है । योरुपी भाषाओं में अब तक इस का स्वनाम नहीं—योरुपीलोग इसे 'भारती' के नाम से पुकारते हैं (cf. Indigo, Indicus, Indikon) । सहस्त्रों वर्षों से इस देश के निवासी नील की पैदावार से माला माल हो रहे थे, किन्तु जर्मनी ने अपनी विद्या के विस्तार से नील की पैदावार भारत से छीन ली है—अब उलटी गंगा बहने लगी है । दिन प्रति यहां नील की उत्पत्ति कम हो रही है और विदेशी नील अधिक २ आ रहा है जैसे

I

वर्ष	नील की भूमि-एकड़	निर्गत नील पा.	इंगलैंड में गया १० लाख पा.	जर्मनी में आगत नील १० लाख पा.	जर्मनी से निर्गत नील १० लाख पा.
१८९४-५	१७०५९७७	३१६३९६३	१.४	१.१	.४
१९०९	२९५७०६	२३४५४४	.१४	.०३	२.०

II

नील के व्यवसाय की अवनति की दूसरी साक्षि लीजियेः—

	१९०३	१९१०
नील के कारखानों की संख्या ...	३९४	११३

उन में काम करने वाले श्रमी ...७४१६१ ३६५०९

III

पंजाब में नील की उत्पत्ति ख़ास तौर पर कम हो गयी है क्योंकि १९०१ में जहां १०० मनुष्य उस की उत्पत्ति में लगे थे, वहां १९११ में केवल ११.३ आदमी थे।

IV

क्या ही विचित्र अवनति है कि विदेशों में १८७३-४ में ३५५५३०० पाउण्ड्ज़ नील जाता था किन्तु ३७ वर्षों में कम होतेर २२३५२६ पाउण्ड अर्थात् अब ६.३ प्रति शतक नील जाता है, इस प्रकार नील का व्यवसाय हमारे हाथों से खोया गया है-क्या इस में जर्मनी वालों का दोष है? कदापि नहीं, वे अपने विद्या-बल से काले कोयले में से नील पैदा करते हैं किन्तु हम विद्या तथा साहस के अभाव से उन का अनुकरण भी नहीं कर सकते, अतः हमें बुरे दिन देखने ही चाहियें।

१२. खाण्ड के व्यवसाय की अवनति।

जर्मनी ने अपनी रसायन विद्या द्वारा भारत को खांड के व्यवसाय में भी नीचा दिखाया है,वहां बीट Beet नामी पदार्थ से कम कीमत पर खांड बना कर भारतादि देशों में भेजी जाती है।

I

जर्मनी में खांड का व्यवसाय।

	बीट से उत्पन्न खांड की प्रति शतक मात्रा	जर्मनी में खांड की उत्पत्ति की मात्रा (टन्ज़)
१८७५-६	८.६०%	३५८०४८
१९०८-९	१७.६०%	२०३७३६७

II

खांड का विदेशी व्यापार।

	निर्गत खांड	आगत खांड
१८८२-३	६८६०६६	१०८६९६१
१९१०-११	१०४२४३	८७७७३१०

अर्थात् २९ वर्षों में यह घोर अन्तर आ गया है कि हम विदेश में पूर्व की अपेक्षा दसवां भाग भेज रहे हैं किन्तु स्वयं लग भग नौ गुना अधिक खांड मंगा रहे हैं।

III

इस अंश में हमें जर्मनी ने ही नहीं पछाड़ा बल्कि गन्ने की खांड बनाने वाले जावा तथा मारीशसद्वीपों ने भी विज्ञान की सहायता से सस्ती खांड पैदा कर के इस देश में भेजी है और प्रति वर्ष अधिक २ भेज रहे हैं:-

मारीशस खांड की कीमत

१८७१-८०	१८८१-९०	१८९१-१९००	१९०१-३
९८	८०	७०	५९

जावा, मारीशस आदि देशों में खूब मोटे रस भरे गन्ने बोये जाते हैं, उन से पूरी २ रस निकाली जाती है, रस को उबालने तथा साफ़ करने की विधियां उत्तम हैं और खर्च भी कम होता है, किन्तु हमारे किसान पुरानी विधियां प्रयुक्त करते हैं–पतले गन्ने रस निकालने के लिये बोते हैं, ¼ से ½ रस गन्ने में रह जाता है, खांड का रंग सफ़ेद नहीं होता, बस इन बातों से यहां मंहगी खांड बनती है। खाण्ड के व्यवसाय में जब तक बड़ी मात्रा में कलाओं के द्वारा उत्पत्ति नहीं की जावेगी तब तक विदेशी खांड का प्रयोग बढ़ता जावेगा और यहां खांड का व्यवसाय नष्ट होता जावेगा। इस ओर थोड़ा ध्यान आकर्षित हुआ है, धन कमाने का यह सुवर्णमय अवसर है, इसे हाथ से व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये।

भारत वर्ष में खांड के कारखाने

	१६०३	१६१०
संख्या	२०	२५
उन के श्रमी	४०१८	५४२४

१३. रेशम के व्यवसाय की अवनति।

कच्चे रेशम का विदेशी व्यापार ही इस की अवनति का प्रधान साक्षि है। आयात तथा निर्यात की वार्षिक मात्रा (पाउ० तोल में) भिन्न वर्षों में निम्न थी :—

(१० लाखों में)

		आयात	निर्यात	अधिकता
१८६७-७०	...	१.८	२.३	+.५
१८७१-७५	...	२.१	२.२	+.१
१८८१-८८	...	२.१	१.६	–.५
१९११	...	२.१	१.८	–.३

(१० लाख पाउण्डज़=१५ रु०)

१८७३-७४	...	.६	२.४
१९१०-११	...	१.८	.५

अर्थात् हमारे पास विदेशी वस्त्र पूर्व से तीन गुना अधिक आ रहे हैं और हम अब उनका केवल पांचवां भाग भेज रहे हैं। स्पष्ट है कि विदेशी लोग हमारे रेशमी वस्त्र को पसन्द नहीं करते और हम विदेशी वस्त्र अधिक पसन्द करते हैं। परिणाम तो विस्पष्ट है कि हाथ से काम करने वाले जुलाहों के बुरे दिन आये हैं। हमारे लोग कला से बने हुए सुन्दर और सस्ते वस्त्रों का मुकाबला नहीं कर सकते, इस लिये हमें शीघ्र कलाओं का प्रयोग करना चाहिये और जुलाहों की खड्डियों को उत्तम करने का भी साथ ही यत्न करना चाहिये।

१४. शीशे के व्यवसाय का बन्द हो जाना

भारत वर्ष में शीशे का व्यवसाय अति प्राचीन काल से

चला आता है। वैदिक काल, याज्ञिक काल और महाभारत के कालों में शीशे की विद्यमानता की साक्षियां हैं। युधिष्ठर के मय भवन में शीशे के काम की विचित्रता हैरान करनेवाली थी। शीशे की खिड़कियां और दरवाज़े बनाये जाते थे, उसे छतों के सजाने में लगाया जाता था—इन बातों को देख कर विल्सन साहब ने कहा है कि भारत की सभ्यता की उच्चता का यह ऐसा प्रमाण है जो यूनानी और रोमन सभ्यताओं में कदापि नहीं पाया जाता। आज कल भी जैपुर में आम्बीर के सुहाग महल और देहली में दीवाने ख़ास के रंग महल की छतों को देख कर शीशे के व्यवसाय की उन्नति प्रकट होती है किन्तु आज शीशे का सब सामान विदेश से मंगाया जाता है। १८७३-८ में तो ३३३३३४ पाउण्ड्ज़ का सामान मंगाया गया था किन्तु १९११ में तीन गुना अधिक सामान मंगाया गया। इस व्यवसाय को पश्चिमी विधियों के प्रयोग करने से पुनर्जीवित करने की बड़ी ज़रूरत है। कई कारख़ाने बनाये गये हैं किन्तु वे कामयाब नहीं हुए क्योंकि उचित प्रबन्ध नहीं होता और श्रमी शीशे के काम में कुशल नहीं मिलते।

लेखक का 'भारत का संक्षिप्त इतिहास,' भाग १, पृष्ट १०१।

१५–प्रधान २ व्यवसायों के मालिक कौन हैं ?

व्यवसाय	भारतीय लोगों के	योरुपीय लोगों के
अजमेर मेरवाड़ा	स्वत्व में	स्वत्व में
कपास	२	७
आसाम		
चाए	६०	५४६
बंगाल		
चाए के खेत	३६	२०४
सन के कारख़ाने	०	५०
सन के दबाने वाले कारख़ाने	४२	५७
कला के वर्कशाप	७	३०
कोयले की खानें	४६	६०
बिहार तथा उड़ीसा		
नील के खेत Plantations	१४	१०५
कोयले की खानें	११०	८६
लाख के कारख़ाने	४६	२
बम्बई		
रेलवे वर्कशाप	०	१३
कला के वर्कशाप	२	६

छापेख़ाने	४४	१७
कपासी कारख़ाने	३९६	७९
बर्मा		
चावल के कारख़ाने	१०५	४७
मध्य प्रदेश		
मांगल की खानें	२४	१६
मद्रास		
कहवे के खेत	१७	८६
चावल के कारख़ाने	८०	२
रेलवे वर्कशाप	०	२३
छापेख़ाने	३६	१५
पंजाब		
कपासी कारख़ाने	३२	०
ईंटों के कारख़ाने	८६	०
रेलवे वर्कशाप	०	१९
छापेख़ाने	२२	६
चाय के कारख़ाने	३२	८
मैसूर		
कहवा के खेत	१०६	१३६
सोने की खानें	०	६

ट्रावंकोर

चाए के खेत	१	३६
रब्बर	०	१०

सारांश यह है कि रेलें, ट्रैम्वे, शराबख़ानें, सोने की खानें, सन, ऊनी वस्त्र, कागज़ और मट्टी के तेल के कार्ख़ाने भारत में सर्वतः अंग्रेजों के हाथों में हैं, कोयले की खानें, चाए और कहवे के खेत, आटे पीसने की कलाएं, नील, खाण्ड, लोह, पीतल, चावल, लकड़ी के कार्ख़ाने तथा वृहत् बंक भी अधिकतर अंग्रेज़ों के हाथों में हैं, किन्तु भारती लोग अधिकतर कपासी कार्ख़ानों छापेख़ानों, बर्फ़ के कार्ख़ानों के मालिक हैं। इस ब्यौरे को देख कर निराश नहीं होना चाहिये, भारतीय नरनारी यदि अपने आप को विद्वान्, साहसी, सुप्रबन्धकर्ता, सत्यवादी और आत्म त्यागी बनावें तो वे सब काम कर सकते हैं। अंग्रेज़ों ने इन गुणों के कारण सब देशों में काम खोले हुए हैं, यदि हम गुणी बनें तो हम भी धनी हो सकते हैं।

अन्त में प्रधान २ देशों के धन तथा वार्षिक आयों का ब्यौरा देकर इस अध्याय का हम अन्त करते हैं।

१९. देशों का संचित धन तथा वार्षिक आय[1]।

देश	जातीय धन (१० लाख पा०)	प्रति पुरुष धन पाउण्ड	जातीय आय (१० लाख पा०)	प्रति पुरुष आय पाउण्ड
इंगलैण्ड	१३७१६	३८०	१७४०	४८
स्काटलैंड	१४५१	३०५	१७३	३६
आयरलैंड	७१४	१६३	१०३	२३
संयुक्तराज	१५८८२	३५१	२०१६	४४
कनाडा	२०७२	२८८	२५६	३६
आस्ट्रेलिया	१३१२	२८७	१६४	३६
दक्षिण अफ्रीका ...	६००	१००	७५	१२
न्यूज़ीलैंड	३२०	३२०	४०	४०
जर्मनी (१९०८) ...	१६०००	२५०	१७५०	२७
स० पू० अमेरीका ...	१८०००	...	३०००	...
भारत	३६००	१०	६०८	२

भारतीयों को अपनी दशा पर दया करके सदाचार, विद्या और साहस का संचय करना चाहिये। हमारे ऊपर एक सभ्य शान्तिप्रिय, प्रजातन्त्र राज की प्रेमी, व्यवसाय व्यापार में उन्नत,

1. The Britannica year Book 1913, P. 577. Webb-New Dictionary of Statistics-Wealth.

विज्ञान की सेवक जाति शासन कर रही है। हमारे पास सुवर्णमय अवसर है कि सामूहिक बल लगा कर अपनी आर्थिक दशा को सुधारें। अब तो सुवर्णमय अवसर है-इसे हाथ से नहीं गंवाना चाहिये। आशा से परिपूरित होकर उन्नति की धुन में लगना चाहिये। पाठकों को सैकड़ों सुगम मार्ग बताए गये हैं-अतः अब बिलम्ब नहीं होना चाहिये।

सारांश

१. कृषि करने वाली जातियों को १२ प्रधान हानियां होती हैं।

२. भारत कृषि प्रधान देश है किन्तु अन्य देश ऐसे नहीं।

३. सम्पूर्ण भारत में किसान बढ़ रहे हैं।

४. भारत में कार्खाने कई प्रकार के बन गये हैं और वे दिन प्रति बढ़ रहे हैं।

५. विदेशी व्यापार में विचित्र उन्नति हुई है किन्तु उस से ज्ञात होता है कि भारत में शिल्प का अभाव होना चाहिये और कृषि की वृद्धि।

६. भारत में कपास के व्यवसाय में उन्नति हुई है किन्तु अभी बहुत उन्नति हो सकती है।

७. ऊनी वस्त्रों के बुनने में कमी हुई है किन्तु उन्नति हो सकती है।

८. जूट के व्यवसाय में अंग्रेजों ने अद्भुत् उन्नति की है।

९- चाए की पैदावार भी खूब बढ़ी है—चीन को नीचा दिखाया है।

१०. नील, खाण्ड, रेशम और शीशे के कामों में हम बहुत गिर गये हैं। इन में धन कमाने के अवसर हैं।

११. लाभदायक कामों के मालिक अंग्रेज हैं किन्तु ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। सद्भावों से अनुकरण करना चाहिये।

१२. हम सब से अधिक निर्धन हैं—धनी होने के बहुत मार्ग बताये गये हैं। साहसी होकर यत्न करना चाहिये।

निर्देश

Census Reports of India, all Volumes. Decennial Reports on the Moral and Material Progress of India.

Reports of the Indian Industrial Conference—Industries.

Webb.—New Dictionary of Statistics—PP. 31.-330.
Sarkar.—Economics of British India.—Chap. V.
Statistical Abstract for British India, 1911—12.

Imperial Gazetteer of India Vol. III, Chap. IV.

V. G. Kale–Indian Industrial and Economic Problems, Chapter V.

Bannerjea—A study of Indian Economics, Chapters. V.-VII.

Latifi—Industrial Punjab.

Ghosh—Advancement of Industry.

Mukerjea—History of Indian Shipping.

F. List—The National System of Political Economy, Chapts. XVII—XXV.

अध्याय १७

बड़ी मात्रा की उत्पत्ति।

आज कल के व्यवसायिक जगत् में उत्पत्ति का केन्द्र घर या छोटी सी दुकान नहीं रही कि जिस में सीधे सादे औज़ारों के साथ थोड़े पदार्थ पैदा किये जाते हों बल्कि बड़े २ कार्ख़ाने केन्द्र हो गये हैं—उन में सैंकड़ों और सहस्रों नरनारी कीमती कलाओं पर सहस्रों मन पदार्थ एक मास में पैदा करते हैं प्रत्येक व्यवसाय में यही दृश्य दीखता है। क्या शिल्प और व्यवसाय, क्या बंक और बीमे की कम्पनियां, क्या यान, क्या थोक और फुटकर व्यापार—सब बड़ी मात्रा में चलाये जाते हैं। और तो और—अब ऐसी फुटकर बिकरी की दुकानें हैं कि जिन पर पिन से लेकर मोटर कार तक के सहस्रों पदार्थ बिकते हैं। छोटी दुकानों और कार्ख़ानों का समय नहीं रहा-इसलिये व्यापारी, दुकान्दार और व्यवसायी के लिये अकेला काम करना दूभर हो गया है—या तो उन्हें अपनी बृहत् पूंजी लगानी पड़ती है या मिश्रित पूंजीवाली कम्पनियों के द्वारा काम करना पड़ता है। हां! कृषि छोटी मात्रा में होती है और शायद भावि में अधिक २ छोटी मात्रा में होवे। प्रश्न यह है कि छोटी और बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के अर्थ क्या हैं?

छोटी मात्रा की उत्पत्ति में सारा प्रबन्ध और उत्पत्ति का काम एक परिवार या व्यक्ति करता है किन्तु जिस व्यवसाय का प्रबन्ध एक उच्च दिमाग़ वाला पुरुष करे और उस के आधीन बहुत श्रमी काम करते हों जैसे बंकों, कार्ख़ानों, रेलों, जहाज़ों, वर्कशापों में किया जाता है-तो उसे बड़ी मात्रा का व्यवसाय कहते हैं-छोटे बड़े होने के कई दर्जे हैं। जहां भारत में एक ओर एक लोहार अपने पेशे का सारा काम करता है वहां साथ ही ऐसे वर्कशाप हैं जहां दस हज़ार आदमी काम करते हैं-इसी प्रकार अन्य कार्ख़ानों में सैंकड़ों और लाखों मज़दूर भी एक उच्च दिमाग़ वाले प्रबन्धकर्ता का काम करते हैं, यद्यपि उसकी सहायतार्थ अन्य बहुत से अध्यक्ष होते हैं।

भारत में छोटी मात्रा की खेती और व्यापार व्यवसाय पाया जाता है। दुकान्दारी और कोठीदारी में पिता पुत्र मिलकर काम करते हैं-अतः पारिवारिक व्यापार हो रहा है, हां! अंग्रेज़ों ने बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की प्रथा यहां चलाई है-उन की देखा देखी हम भी यत्न कर रहे हैं-किन्तु हमारे मार्ग में विशेष रुकावटें हैं।

२. सभ्य देशों में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के उदाहरण रोचक होंगे:—

कम्पनी का नाम	पूंजी
जे० एंड पी० कोट्स (१८६० सन)	५७५०००० पा०

इंगलिश सोइंग काटन कम्पनी (१८९६)	३००००००	पा०
यूनाईटिड अल्कली ,, ...	६००००००	पा०
ब्रुनर माल एंड कम्पनी (१९०६)	२७८६५५०	पाउ०
ब्रिटिश अमैरीकन टोबैको कम्प०	६१०००००	पा०
इम्पीरियल टोबैको कम्प०	१५४९६१५४	पा०
अमैरीकन ,, ,,	१८०००००००	डा०
,, फौलाद ट्रस्ट	१५००००००००	डा०

१८९९ में संयुक्त प्रान्त अमैरीका में ३५३ वृहत् कम्पनियां (Trusts) थीं जिनकी पूंजी ५८३२८८२८४२ डालर्ज़ थी, अर्थात् प्रति कम्पनी १७० लाख डालर्ज़ पूंजी थी। किन्तु १९०२ तक ८२ और ऐसी कम्पनियां बनायी गयीं—इन का कुल पूंजी ४३१८००५६४६ डालर्ज़ था—उसी वर्ष सब बड़े ट्रस्टों (Trusts) की गिनती की गयी तो वे ८५० थे और उन का पूंजी ६ अरब डालर्ज़ था।

(ख) कई कम्पनियों में श्रमियों की संख्या भी देखिये:—

बालविन लोको वर्क्स फिलेडैलफिया	१३५०००
क्रुप जर्मनी में	२००००
फोलाद कार्पोरेशन अमैरीका	१५८०००
कई रेलें ,,	३००००

क्या यह हैरानी नहीं कि बालविन लोको वर्क्स में चार घन्टों में ही एक रेल-एंजिन पूरे तौर पर शुरु से अन्त

तक बन जाता है। यदि एकेला आदमी बनावे तो कितने वर्ष उसे श्रम करना पड़ेगा? इस प्रकार की चकित करने वाली बड़ी मात्रा की उत्पत्ति हो रही है क्योंकि इस के बहुत से लाभ हैं।

३. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की प्रवृत्ति दो ओर है:—

(क) समान व्यवसायों को मिलाने में—(Horizontal Combination)

(ख) भिन्न व्यवसायों के मिलाने में (Vertical Combination)।

(क) पहिली प्रवृत्ति का प्रसिद्ध स्वरूप Trust ट्रस्ट है:—

एक ही पदार्थ उत्पन्न करने वाले-बहुत से कारख़ानों की यह एक समिति होती है, प्रत्येक कारख़ाना अपना प्रबन्ध करने में स्वतन्त्र होता है किन्तु पदार्थों के बेचने, कच्चे माल के ख़रीदने, मज़दूरों को भृतिआदि देने और राज से व्यवहार करने में हर एक कारख़ाना ट्रस्ट की समिति के आधीन होता है-वही समिति सब कारख़ानों के लिये यह बातें कर देती है। इस मेल से उत्पत्ति में ख़ासी बचत हो जाती है-इस कारण यदि यह समितियां स्वार्थ वश पदार्थों की कीमत बढ़ाकर जाति के लिये हानिकारक न हों तो यह अतीव लाभ दायक हैं।

VERTICAL COMBINATION.

भिन्न व्यवसायों को मिला कर बड़ी मात्रा में उत्पत्ति करना बड़ा विचित्र है:—यु॰ प्र॰ फ़ौलाद कम्पनी का उदा-

हरण लीजियेः लोहे की कानें, कोयले की कानें, कोक आर गैस के कारख़ाने, रेलें, जहाज़, बन्दरगाह, लोहे को फ़ौलाद बनाने के कार्ख़ाने और फ़ौलाद से लोह का सर्व प्रकार का सामान बनाने के लिये सैंकड़ों प्रकार की कलाएं हैं-यथा उस कम्पनी के पास १९०५ में १२५ जहाज़ थे, १२७२४०० टन्ज़ लोह निकाला गया ७०८३० एकड़ कोयले की कानें थीं, १३६ फ़ौलाद के कार्ख़ाने थे और ६००००००टन्ज़ नाना प्रकार का लोह सामान बनाया गया ।

ii यही हाल हार्वेस्टर लोह कम्पनी का है । iii अन्तर जातीय कागज़ कम्पनी के पास अपने बन हैं जिन से लकड़ी आदि कटवा कर वह अपने कारख़ानों में भिजवाती है ताकि उन से कागज़ बने । खाण्ड की कम्पनियों को भी यही करना पड़ता है । iv लार्ड नार्थक्लिफ़ जो सब से बड़ा समाचार पत्राधिपति इंगलैंण्ड में है उस की कम्पनी ने न्यू फ़ाउण्डलैण्ड में बन लिये हुए हैं, वहां कागज़ बनाने के कार्ख़ाने अपनी ओर से खोले हुए हैं क्योंकि १९०७ में उस ने कहा था कि 'यदि एक पाउण्ड कागज का भाव कागज़ के बनाने वाले एक पैसा बढ़ा दें तो मेरी कम्पनी को २०००००० रुपये वार्षिक ज़्यादा खर्च करना पड़ेगा ! इस कारण आवश्यक है कि अपने लिये कागज़ भी हम खुद पैदा करें' ।

v. कई कम्पनियों में दोनों रूप मिल गये हैं । अमैरीका की तेल तथा तम्बाकू की कम्पनियां अपने उत्पन्न पदार्थों के

थोक तथा फुटकर बेचने का प्रबन्ध भी खुद करती हैं—इस प्रकार सब तरह से अपने मुकाबला करने वालों को यह कम्पनियां दबा सकती हैं।

४. हरएक सभ्य देश में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की ओर अब तक प्रवृत्ति रही है, इस घटना से देशों की सामाजिक तथा आर्थिक दशाएं बहुत बदल गयी हैं और भावि में उन के अधिक तर बदलने की सम्भावना है।

इस प्रवृत्ति का प्रधान चिन्ह यह है कि हर एक कार्खाना क़दो कामत में बढ़ता जाता है और अतीव उन्नति कारी जाति में इन बढ़ते हुए कार्खानों की संख्या भी बढ़ जाती है नहीं तो साधारण उन्नति में इन कार्खानों की संख्या कम होती है। पूर्व की अपेक्षा हर एक कारखाने में अधिक उत्पत्ति होती है इस कारण कारखानों की संख्या थोड़े होते हुए भी देश में पदार्थ अधिक उत्पन्न होते हैं। भारत वर्ष में यही प्रवृति है, इस की साक्षि पूर्व अध्याय के ७, ८, ६ प्रकरणों के व्यौरों में देखिये। सं० प्रं० अमेरीका की साक्षि सविस्तर नीचे के व्यौरों में दी जाती है :—

कृषि के औज़ारों की उत्पत्ति।

वर्ष	कार्ख़ानों की संख्या	श्रमी	पूंजी १० लाखडालर्ज़	उत्पत्ति १० लाखडालर्ज़
१८५०	१३३३	७२२०	३.६	६.८
१८६०	२११६	१७०६३	१३.६	२०.८
१८८०	१९४३	३६५८०	२.१	६८.६
१९०५	६४८	४७३६४	१९६.७	११२.०

१८६० की अपेक्षा १९०५ में कम्पनियां तो ३०% रह गयी हैं किन्तु उनकी उत्पत्ति ५३४ गुणा हो गयी है।

लोह और फ़ौलाद की उत्पत्ति

वर्ष	कार्ख़ानों की संख्या	श्रमी	पूंजी १० लाखडा०	उत्पत्ति १०लाख डा०
१८५०	४६८	२४८७४	२१.६	२०.४
१८६०	५४२	३५१८६	४४.६	५२.८
१८८०	७९२	१३३०२३	२०९.९	२९६.६
१९०५	६०५	२४२७५०	९४८.७	९०५.९

कपासी सामान की उत्पत्ति ।

वर्ष	कारख़ानोंकी संख्या	श्रमी	पूंजी १० लाख डा०	उत्पत्ति १० लाख डा०
१८५०	१०९४	९२२८६	७४.५	६१.९
१८६०	१०९१	१२२०२८	९८.६	११५.७
१८९०	९०५	२१८८७६	३५४.०	२६७.९
१९०५	११५४	३१५८१५	६१३.१	४५०.५

उक्त तीन ब्यौरों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट पता लगता है कि गत ५५ वर्षों में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में विचित्र उन्नति हुई है। इसी प्रकार की प्रबल साक्षि इंगलैण्ड और जर्मनी में मिलती हैं, यथा—

इंगलैंड में काग़ज़ के कारख़ाने

१८०१	...	४१३	१८७६–८०	...	३९२
१८११	...	५२७	१८९६–१९००	...	२९२
१८२१	...	५६४	१९०४	...	२७९
१८४१	...	४९७			

पहिले २० वर्षों तक कारख़ानों की संख्या बढ़ती गयी किन्तु इसी काल में काग़ज़ की उत्पत्ति दुगनी हो गयी। १८४१ से बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में विशेष प्रवृत्ति है कि कारख़ाने तो ५०० से २७९ रह गये किन्तु इसी काल में ४३३५० के स्थान पर

७७३५५० टन्ज़ कागज़ पैदा होने लगा । यही वृतान्त अन्य व्यवसायों का है जैसे :—

		लोहे की भट्टियां	लोहे की उत्पत्ति टन्ज़ में
१८६५	...	६२६	६३६५०००
१९०७	...	३६६	१०११४०००

इसी प्रकार टीन के कार्खाने १८८५ में ६६ थे किन्तु १९०६ में ७४ हो गये, यद्यपि उत्पत्ति बहुत बढ़ गयी है ।

जर्मनी में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति

		१८८२	१८९५	१९०७
अकेले काम करने वाले जनों की %संख्या		२५.२%	१६.४%	१०.१
२ से ५ तक के जनों वाले कार्खानों	,,	२६.६	२३.५	१६.४
६ से १० ,,	,,	६.०	७.२	६.६
११ से ५० ,,	,,	१२.६	१६.६	१८.४
५१ से २०० ,,	,,	११.६	१७.०	२०.१
२०१ से १००० ,,	,,	१०.६	१३.६	१७.३
१००० से अधिक ,,	,,	३.५	५.४	८.१

उक्त व्यौरे से ज्ञात होता है कि अकेले काम करने वालों वा २ से ५ तक मिल कर भी काम करने वालों की बहुत कमी हुई । हां, ६ से १० तक मिल कर काम करने वालों ने अपनी स्थिति स्थिर रखी है । बड़ी मात्रा में उत्पन्न करने वाले कार्खानों ने उन्नति की है । इस घटना के कारण बड़े सरल हैं ।

५. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के कारण।

i श्रम विभाग की उत्तरोत्तर वृद्धि।

ii उत्तरोत्तर उत्तम कलाओं का अधिक २ प्रयोग।

iii धन तथा जन संख्या के बढ़ने से पदार्थों की मांग की वृद्धि।

iv यानों के सस्ते होने के कारण भिन्न देशों का परस्पर एकीभूत हो जाने से कच्चा माल दूर दूर से आ सकता है और बने हुए पदार्थ वहां बिक सकते हैं।

v विद्या तथा साहस की वृद्धि से सुप्रबन्ध कर्ताओं की वृद्धि--यह भी आवश्यक कारण है क्योंकि जिस देश में सुयोग्य व्यवसाय पति, साहसिक, प्रबन्धकर्ता न हों, वहां बड़ी मात्रा की उत्पत्ति असम्भव है। यदि दस बारह हज़ार आदमियों से काम लेने और उन के उत्पन्न पदार्थों को बेचने की विधियां एक कारख़ाने के स्वामी को नहीं आतीं तो वह इतना बड़ा कारख़ाना भी नहीं बनायेगा। भारत में ऐसे सज्जनों की कमी है, इस कारण अभी बड़ी मात्रा की उत्पत्ति का भी अभाव है।

vi मिश्रित पूंजी की अधिकता--भारत में यह कारण भी उपस्थित नहीं। कम्पनियों के चलाने वालों ने कई वार विश्वास भंग किया है, इस कारण लोग उन्हें अपना धन नहीं देते, छोटी कम्पनियां भी कम बनती हैं तो बड़ी कम्पनियां कैसे बन सकती हैं?

vii परस्पर स्पर्द्धा बहुत सख्त है, केवल योग्यतम पुरुष ही कामयाब हो सकते हैं, अयोग्य व्यवसायपत्तियों को काम छोड़ना पड़ता है और साथ ही नये आदमियों के लिये काम करना कठिन होता है क्योंकि जब तक वे बहुत अधिक मात्रा में उत्पत्ति न करें तब तक वे पूर्व बने हुए कारखानों का मुकाबला नहीं कर सकते, अतः मांग के बढ़ने से पूर्व स्थित कारखानों का काम बढ़ाना पड़ता है। दूसरे देशों में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति होने से बहुत सस्ता सामान पैदा होता है--भारत में पदार्थ छोटी मात्रा में पैदा होने से मंहगे बनते हैं, इस कारण हम विदेशी माल का मुकाबला नहीं कर सकते-बड़ी मात्रा में ही उत्पत्ति करने से हम मुकाबला कर सकेंगे नहीं तो दिन प्रति हमारा व्यवसाय नष्ट होता जावेगा और हम कृषि में उत्तरोत्तर लगते जावेंगे।

६. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के लाभ

i कीमत का कम हो जाना--यह साधारण नियम है कि किसी पदार्थ की जितनी अधिक राशी खरीदी जावे वह उतनी कम कीमत से मिलती है-फुटकर क्रय की उच्च कीमतों का अनुभव सब पाठकों को है-बड़ी मात्रा में उत्पत्ति करने वालों को छोटी मात्रा में उत्पत्ति करने वालों की अपेक्षा पदार्थ सस्ते मिलते हैं।

ii एकाधिकारी बन सकना--बड़ी मात्रा वाले व्यवसाय-पत्ति का बहुत सामान रेलों पर लद कर आता और जाता है-

रेलों के मालिकों को इस व्यवसायपति से विशेष लाभ होने के कारण वे भी उस के सामान को अपेक्षया कम दाम पर ले आते और ले जाते हैं--आज कल केवल इसी लाभ से ही कई व्यवसायपति एकाधिकारी बन गये हैं क्योंकि वे वस्तुएं सस्ती कर के छोटे २ दुकानदारों को बाज़ार से निकाल सकते हैं। अमेरीका में यह दृश्य खूब दिखाई देता है।

iii मकानादि अधिक न बनाने पड़ेंगे--बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में सब कर्म्मचारियों, प्रबन्धकर्त्ताओं, मिस्त्रियों, एंजिनियरों मकानों और कलाओं से पूरा २ काम लिया जा सकता है-यह स्थिर व्यय उस अनुपात से नहीं बढ़ता जिस अनुपात से कि काम की वृद्धि की जाती है। यही सब से अधिकतम लाभ समझना चाहिये। भारत में अल्प पूंजिवाली कम्पनियां होने से वे विदेशी कम्पनियों का मुकाबला नहीं कर सकतीं। बृहत कम्पनियां अपने पास परीक्षण तथा अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिक लोगों को रख सकती हैं और उन के आविष्कारों से विशेष लाभ उठा सकती हैं किन्तु छोटी कम्पनियों को स्वप्न में भी यह लाभ प्राप्त नहीं।

iv बृहत् कम्पनी के पास अपनी पूंजी होती है-इस कारण उसे ऋण ले कर व्याज नहीं देना पड़ता और यदि ऋण लेना भी पड़े तो उसे सूद उस मात्रा में नहीं देना पड़ता जिस

मात्रा में एक छोटी कम्पनी को देना पड़ता है। व्यापारिक दुर्घटना के समय छोटी कम्पनियों को रुपया ऋण पर लेने के कारण वस्तुओं के क्रय विक्रय में बड़ी आपत्तियां होती हैं, वे सब विपत्तियां बृहत् कम्पनियों के लिये नाम मात्र भी नहीं होतीं।

v बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में सब कर्मचारी विशेष योग्यता के रखे जा सकते हैं और उन में से प्रत्येक को उस के योग्य काम दिया जा सकता है--अर्थात् यहां श्रम विभाग का पूर्ण लाभ हो सकता है किन्तु छोटी मात्रा की उत्पत्ति में यह दोनों बातें नहीं हो सकतीं।

vi बड़ी मात्रा की उत्पत्ति वाले प्रायः संसार की एक २ वस्तु का एकाधिकार ले लेते हैं और फिर अधिकतम लाभ उठाते हैं।

(क) स्पर्द्धा जन्य आर्थिक और आत्मक हानियां नहीं होतीं, (ख) कलाओं तथा अन्य सामान बेचने वाली दुकानों को दुगना तिगना नहीं करना होता, परञ्च जो पूर्व विद्यमान हैं उन्हीं से बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में काम चल सकता है। (ग) वस्तुओं के बेचने के लिये एजन्टस वा दलाल, अधिक इश्तिहार बाज़ी, लोगों को उपहार और नमूने देने का व्यय बच जाता है। अमेरीका की तम्बाकू की कम्पनी ने केवल सिगारों की

तस्वीर न देने से २ लाख ५० सहस्र डालरज़ वार्षिक बचा लिये हैं (घ) प्रायः कम्पनियां स्पर्द्धा के जाल में फंस कर उन मनुष्यों पर विश्वास करके वस्तुएं उधार पर बेच देती हैं जिन पर विश्वास नहीं करना चाहिये–बड़ी मात्रा की उत्पत्ति करते हुए जब कि स्पर्द्धा बहुत थोड़ी होगी, तो वस्तुवें उधार पर किसी को शीघ्र नहीं दी जावेंगी।

vii यदि बड़ी मात्रा की उत्पत्ति वाला एक कच्चा माल जैसे लोहा अधिकतर ख़रीदता है, तो उस के मूल्य पर उस का बड़ा प्रभाव है – वह अपनी बुद्धिमत्ता से उसके मूल्य को कम कर सकता है, अर्थात् सस्ता पदार्थ पैदा कर सकता है।

viii बड़ी मात्रा की उत्पत्ति से यदि एकाधिकार हो जावे तो स्पर्द्धा न होने से–उस चीज़ के बनाने में अन्यों का अभाव होने से—व्यवसायपति उपलब्धी को मांग के अनुसार कर सकता है–उस से उत्पत्ति के नाश का भय और भी कम हो जाता है–अर्थात् लाभ अधिक होते हैं।

ix. Money breeds money–धन से धन पैदा होता है। बृहत् मात्रा की उत्पत्ति से पूंजी खूब बढ़ती है. पूंजी की बृद्धि होते हुए जब उपर्युक्त आठ शक्तियां भी साहसी मनुष्यों को बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में प्रेरित कर रही हों तो बड़ी मात्रा की उत्पत्ति उत्तरोत्तर क्यों न बढ़े ? इन बातों को देख कर कईयों का विचार है कि आधुनिक व्यवसाय में यह स्वाभाविक स्थिर शक्ति

उपस्थित है जो उसे प्रति दिन बड़ी २ मात्रा की उत्पत्ति की ओर ले जा रही है। किन्तु कतिपय घटनाएं बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के विरुद्ध जा रही हैं।

जातीय लाभ।

कुछ जातीय लाभ भी बड़ी मात्रा की उत्पत्ति से होते हैं उन्हें संक्षेप से यूं कह सकते हैं:--

ज्यूं २ उत्पत्ति की मात्रा बढ़ती है त्यूं २ सुप्रबन्ध की आवश्यकता बढ़ती है, जिस का मोटा उदाहरण रेल की कम्पनियों का प्रबन्ध है-इस से जो जातीय तथा शिक्षा वर्धक लाभ यथा मानव परीक्षण, अनुभव, सहानुभूति के-होते हैं उन की भारत को तो अत्यन्त आवश्यकता है। क्या रेलों का समय विभाग बनाना, उन का निर्माण, तथा व्यवसायपत्ति के अन्य कार्य्य करना कोई साधारण काम है? किन्तु शोक है कि भारतियों के हाथ में यह रेलें नहीं।

श्रमियों की वास्तविक श्रम की मात्रा कई प्रकार से कम हो जाती है-सुभवन, ऊंची छतें, तेज,प्रकाश,वायु, जल की प्राप्ति का सुप्रबन्ध होता है। श्रमियों को हानि पहुंचने के साधन कम होते हैं। प्रायः यह कारखाने ग्रामों में होते हैं जिस से सब कर्म्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा रह सकता है-स्त्रियों के बैठने और सोने के भवन पृथक होते हैं-स्नानागार-पुस्तकालय-सभा भवन-पाकशालायें-इत्यादि मकानात भी श्रमियों के लिये बने होते हैं-

उन के पुत्रों को पढ़ाने के लिये पाठशालायें भी होती हैं। ऐसे २ सब उत्तम कर्म्म हो सकते हैं और होते भी हैं। चूंकि राज्य-निरीक्षण बृहत् कारखानों में खूब हो सकता है, उन में बुराइयां कम रहती हैं। परन्तु बहु संख्याओं में होने वाले छोटे २ कारखानों की बुराईयों को कहां तक दूर किया जावे उन्हें तो कोई देख भी नहीं सकता। इन्हीं छोटे कारखानों में Sweating system=अधिकतम श्रम करा के न्यूनतम भृति देने की रीति-अब तक उपस्थित है और इस को रोकने का यही साधन समझा जाता है कि बड़ी मात्रा की उत्पत्ति हो।

७. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की निरोधक घटनाएं:—

(i) आज कल ऐश्वर्य्य तथा भोग पदार्थ संख्या में बढ़ रहे हैं परन्तु धनी लोग ही उन विशेष वस्तुओं का व्यय कर सकते हैं और धनियों की संख्या कम होने से यह पदार्थ भी कम मात्रा में बनेंगे। अर्थात् उन की अल्प मात्रा में उत्पत्ति होगी।

(ii) आज कल वस्तुएं वैयक्तिक रुचि के अनुसार बनती हैं और बनाने वाला स्वशिल्प को दिखाने के लिये थोड़ी मात्रा में ही वस्तु बना सकता है। अतः दोनो ओर से अल्प मात्रा की उत्पत्ति की ओर प्रवृत्ति हुई।

(iii) अब विद्युत् का प्रयोग बढ़ रहा है इस से प्रत्येक

शिल्पी स्व २ गृह में बैठा हुआ छोटी वा बड़ी मात्रा में वस्तुएं बना सकेगा। पूंजी के अनुसार स्वतंत्रता पूर्वक पदार्थ बन सकने पर क्यों कोई नौकरी करेगा ? इस कारण प्रधानतया बड़ी मात्रा की उत्पत्ति कम होगी।

(IV) कुछ न कुछ गौण पदार्थ प्रत्येक पदार्थ के बनाने में निकलते हैं। आज कल उन में से कईयों का प्रयोग किया जा रहा है, शेष पदार्थों का प्रयोग रसायन शास्त्र निकाल रहा है। उन में उपयोगिता लाना प्रायः बड़ी मात्रा की उत्पत्ति से नहीं होता परञ्च छोटी से होता है। अतः इस अंश में अल्प मात्रा की उत्पत्ति नहीं हट सकती।

(V) कलाओं द्वारा बड़ी मात्रा की उत्पत्ति बढ़ती जाती है परन्तु कलाओं आदि की मरम्मत के लिये तो छोटे २ व्यवसाय चाहियें—इस प्रकार की दुकानें प्रत्येक योरूपीय बड़े नगर में प्रायः मिलती हैं।

(VI) जो वस्तुएं बड़ी मात्रा में ही बन रही हैं, उन में भी विशेषताएं होने से छोटी मात्रा में उत्पत्ति होगी यथा पुस्तकें छापने तथा उन की जिल्दें बान्धने के काम अब (Fine arts) उत्तम २ कला के तौर पर हो रहे हैं—अतः उन की उत्पत्ति छोटी मात्रा में होती है।

(VII) इंगलैण्ड की House Arts and Industries Association—इस बात पर बल देती है कि कलाएं हितकारी

नहीं—मनुष्य को चाहिये कि अयोग्य कामों के करने में ही कलाएं उपयुक्त करे। परन्तु मानुषीय हाथ तथा आंख के हुनर के वास्ते वे सब काम होने चाहियें जो आनन्द दायक तथा शिक्षा-प्रद हैं वा जिन से मनुष्य को अन्य प्रकार के लाभ हो सकते हैं। इस सभा के द्वारा इंगलैण्ड में छोटी मात्रा की उत्पत्ति की ओर ध्यान हुआ है-ऐसा ही अन्य देशों में करना चाहिये।

(VIII) शिल्पीय विद्यालयों और साधारण विद्या के देने वाले शिक्षणालयों से जो विद्यार्थी निकलते हैं वे साहसी तथा स्वतन्त्र कार्य्य करने वाले होते हैं। इस कारण भी छोटी मात्रा की उत्पत्ति बढ़ेगी।

(IX) विशेष बुद्धि वाले मनुष्य व्यापार और व्यवसाय छोटी मात्रा से आरम्भ करते हैं और अपनी धीरता, बुद्धि तथा सौभाग्य से बढ़ते जाते हैं। ऐसे कई महाशयों को प्रत्येक ने देखा होगा। आज कल के उन्नत समय में अल्प मात्रा में काम करने वाले उत्तरोत्तर छोटे २ आविष्कारों से अपना काम खूब चलाने वाले होते हैं। और कईयों का काम में वैयक्तिक मान (Personal business pride) उन को पृथक रखता है।

उपर्युक्त युक्तियां केवल काल्पनिक नहीं, आज कल के ट्रस्ट्स (Trusts) के काल में छोटी मात्रा की उत्पत्ति की केवल निरन्तर सत्ता ही नहीं परञ्च वृद्धि भी हो रही है। जर्मनी का उदाहरण लीजियेः—

	१८८२	१८९५	वृद्धि प्र० शतक
छोटे कारखानों में १ से ५ पुरुषों तक	२४५७९५०	३०५६३१८	२४.३
मध्यम कारखानों में १ से १० पुरुषों तक	५०००७९	८३३४०९	६६.६
बड़े कारखानों में १० से ५० पुरुषों तक	८९१६२३	१६२०८४८	८१.८

उपर्युक्त समय में जन संख्या १३.५% बढ़ी-इस काल में अल्प मात्रा की उत्पत्ति के कारख़ाने भी २४-३% बढ़े हैं और कोई कारण नहीं कि भविष्यत में उपर्युक्त युक्ति के अनुसार छोटी मात्रा की उत्पत्ति क्यों क्रमशः न बढ़ती जावे ?

८. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की हानियां

बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के बहुत लाभ हैं किन्तु इस की सामाजिक और आर्थिक हानियों पर भी दृष्टि डालनी चाहिये।

सामाजिक दोषः—

(क) बड़ी मात्रा की उत्पत्ति का परिणाम ट्रस्ट हुए हैं और ट्रस्टों का परिणाम ठेका वा एकाधिकार हुआ है। अर्थात् यदि एक पदार्थ जैसे तम्बाकू की मांग एक कम्पनी पूरा करने लगे,और बाकी व्यवसायपतियों को पराजित कर के उनका काम छीन लेवे तो वे एका-

धिकारी होकर (I) कीमतें बढ़ा देते हैं (II) पदार्थों की श्रेष्ठता कम कर देते हैं (III) अपने देश में पदार्थ महंगे बेच कर दूसरे देशों में सस्ते बेचते हैं ताकि उन देशों के कार्खाने वालों को पराजित कर के वहां भी अपना ठेका स्थिर करें (IV) इन एकाधिकारों से बेकारी बढ़ती है क्योंकि मुकाबला करने वालों के कार्खाने बन्द हो जाते हैं।

(ख) कई लोगों के पास पर्वताकार धन हो जाता है। जिन के पास बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की योग्यता न थी—वे निर्धन हो जाते हैं—धन के असमान विभाग से देश में बहुत उपद्रव होते हैं।

(ग) कच्चे माल के पैदा करने वालों को स्ववश करना इन के बाएं हाथ का खेल है।

(घ) देश में उत्कोच और उपहारों से राजकर्मचारी स्वकर्तव्यों से गिर जाते हैं—जाति का आचार गिर जाता है।

आर्थिक हानियां

(क) वृहत् कार्खाना होने के कारण व्यवसायपति स्वयं सारे काम का निरीक्षण नहीं कर सकता और यह बात किसी से अनवगत नहीं कि स्वामी के देखते हुए ही नौकर काम करते हैं। अतः काम पूरी मात्रा में नहीं हो सकता। किन्तु लाभ-विभाग, बोनस, बीमे आदि की रीतियों से यह हानि दूर की जा रही है।

(ख) आर्थिक तौर पर उत्पत्ति कम होनी चाहिये क्योंकि

व्यवसायपति की जो आज्ञाएं अपने छोटे और बड़े नौकरों को होती हैं उन पर पूरे तौर पर अमल नहीं किया जाता। प्रायः आज्ञा को न समझ कर कर्मचारी वर्ग कोई अन्य काम कर बैठते हैं जिस से लाभ के स्थान पर हानि होती है। फिर आज्ञाएं देने तथा उन पर काम करवाने में जो समय लगता है उस से भी हानि होती है। परन्तु आज कल टैलीफ़ोन द्वारा यह हानि दूर की जा रही है।

(ग) बहु मात्रा में उत्पन्न करने से हिसाब किताब के बहुत से रजिस्टर रखे जाते हैं और हिसाब को ठीक रखने के लिये तथा उत्कोच, उपहार और चोरी को रोकने के लिये कई प्रकार के साधन करने पड़ते हैं जिन से व्यय बढ़ जाता है, किन्तु इन सब विरोधनी बातों के होते हुए भी बड़ी मात्रा में उत्पत्ति करने से योग्य प्रबन्धकर्ता को अकथनीय लाभ होते हैं। यदि यह हानियां कुछ प्रभाव रखतीं तो सभ्य जगत् में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति न होती। व्यवसायिक संसार में भारत की उन्नति यदि उस के साहसी व्यवसायपति योग्यता से बड़ी मात्रा की उत्पत्ति नहीं करेंगे तो नहीं हो सकती।

९. छोटी मात्रा की उत्पत्ति के लाभः—

(क) उपर्युक्त तीन हानियां जो बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में बताई गई हैं, उन का उलट होने से छोटी मात्रा की उत्पत्ति में अपेक्षया कम व्यय होता है। वहां कर्मचारी वर्ग कम काम नहीं

कर सकते, आज्ञाओं को समझने के लिये देरी नहीं लगाते, बहुत बड़े हिसाब नहीं रखे जाते, नौकरों की चोरी को रोकने के लिये कोई बहुत बड़ा व्यय नहीं करना पड़ता और प्रत्येक प्रकार के काम को व्यवसायपति स्वयं देखता हुआ नौकरों को उत्साहित करता रहता है जिस से बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की जो बचतें हैं वे अन्य प्रकार से प्राप्त हो सकती हैं। उपर्युक्त आर्थिक लाभों के अतिरिक्त अन्य भी कई एक मानसिक तथा जातीय लाभ होते हैं जो संक्षेप से यह हैं:—

(ख) अल्प मात्रा में उत्पन्न करने वाले बहुत से व्यवसाय पतियों के होने के कारण धन का विभाग सम हो सकता है— कतिपय धनाढ्यों के पास ही धन के पर्वत नहीं बनते जाते जैसा कि युक्त प्रान्त अमेरिका में २५ आदमियों के पास देश का आधे से अधिक धन है शेष सारे मनुष्यों के पास आधे से भी थोड़ा। बल्कि सामाजिक उत्पत्ति बहुत कुछ समता से बढ़ जाती है।

(ग) छोटी मात्रा की उत्पत्ति करने में बहुत से व्यवसाय-पति स्वतन्त्र होते हैं। और प्रत्येक आदमी स्वतन्त्रता से मानसिक तथा आत्मिक उन्नति खूब कर सकता है। अन्यों की सेवा न करने वालों को जाति भी सम्मान की दृष्टि से देखती है। इस प्रकार आज कल के सभ्य देशों में जहां बड़ी मात्रा की उत्पत्ति

का प्रचार है—वहां यद्यपि राष्ट्रिक स्वतन्त्रता है तथापि सामाजिक स्वतन्त्रता का अभाव है।

(घ) छोटी मात्रा की उत्पत्ति करने से हड़तालों की भी कमी होती है क्योंकि व्यवसायपति के साथ प्रत्येक श्रमी गाढ़ वैयक्तिक सम्बन्ध रखता है—उस के प्रेम से प्रेरित हुए कर्मचारी हड़ताल करने तक नहीं बढ़ते। परन्तु बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में व्यवसायपति श्रमियों से बहुत दूर रहता है—कोई वैयक्तिक सम्बन्ध न होने व लेश मात्र प्रेम होने से श्रमी लोग थोड़ी सी ग़लत फ़हमी पर हड़ताल कर देते हैं।

(ङ) छोटी मात्रा की उत्पत्ति में हथियारों तथा चीज़ों का नाश थोड़ा होता है—'माल पराया दिल बे रहम'—एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है।

१०. छोटी मात्रा की उत्पत्ति की हानियां।

(i) बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के लाभ इस की हानियां हो जाती हैं परन्तु इन के अतिरिक्त निम्न लिखित दो बातें भी हानियों में गिननी चाहियें।

(ii) व्यवसाय पति यदि योग्य हो तो उत्पत्ति में आर्थिक हानि होती है—यदि व्यवसाय पति प्रबन्धादिक में अति निपुण हो तो अपनी योग्यता से निचले दर्जे का काम करने के कारण वह कम उत्पत्ति करेगा। फिर श्रम विभाग, उत्तम विधि, विशेष योग्यता और आविष्कारों के लाभ सर्वथा

हीं इस विधि में नहीं होते, इस कारण उत्पत्ति कम होती है। छोटी मात्रा की उत्पत्ति करने वाले पुरुष सदैव बहुत कठिन परिश्रम करते हैं, विशेष तौर पर इस बात की सत्यता कृषि में दीख पड़ती है।

(iii) छोटी मात्रा की उत्पत्ति में बहुत आदमियों के लग जाने से लाभ तो बहुत है, पर उत्पत्ति मंहगी होती है। यदि विविध प्रकार की उत्पत्ति होने से किसी जाति के सब लोग बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में लग सकें तो बहुत आर्थिक लाभ हो। यदि बड़ी मात्रा के कारण ही अकार्यता हो तो छोटी मात्रा की उत्पत्ति करना उत्तम है।

(iv) नहरें, रेलें और जहाज़ बनाने के कारखाने, तीन२ बार दैनिक समाचार पत्रों के छापने के यन्त्रालयों—के काम जो आज कल के संसार की परमावश्यकताएं हैं—छोटी मात्रा में हो ही नहीं सकते।

१२. भारतीयों से अपील।

इस अध्याय में निरन्तर इसी बात पर बल दिया गया है कि पश्चिम में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति बढ़ रही है—इस के कारण वे लोग अतीव सस्ती वस्तुएं बना कर हमारे देश में भेजते हैं जिस से हमारा व्यवसाय मर रहा है। हमें उचित है कि यदि हम अपनी हस्ती स्थिर रखना चाहें तो सस्ते माल के इस आक्रमण से अपने तई बचावें—यह तत्व हृदय पर

अङ्कित कर लीजिये कि आज कल तलवार के बल से किसी जाति का नामो निशान नहीं मिटाया जा सकता और ३१ करोड़ भारत वासियों को आङ्गलों के सभ्य राज के आधीन होते हुए इस का भय भी नहीं। किन्तु धन, धर्म, साहस, व्यवसाय की कमी से जातियां मर सकती हैं-भारत को ऐसी मृत्यु का ही भय है प्रति वर्ष विदेशी सामान अधिक २ मात्रा में इसी देश पर धावा कर रहा है, अपने व्यवसाय की मृत्यु से लोग किसान बन रहे हैं। अपने तईं बचाने का एक ही साधन है-वह कलाओं से उत्पत्ति करना और वह भी बड़ी मात्रा में। तोपों, बन्दूकों, विमानों के रखने वाली सेना के साथ चाकुओं से मुकाबला नहीं हो सकता-व्यापार और व्यवसाय की वृद्धि के लिये हमें योरुप के सामान बर्तने चाहियें। हर एक नव युवक के दिल में यही उमंग होनी चाहिये कि वह इस देश की आर्थिक अवस्था सुधारे-इस के लिये—

(i) कुशल प्रबन्ध कर्ताओं, अध्यक्षों और व्यापारिक ज्ञान में निपुण कर्मचारीयों की परमावश्यकता है।

(ii) कुशल मज़दूर चाहियें।

(iii) नित्य प्रति जो नयी कलाएं निकल रही हैं-उन का प्रयोग किया जावे।

(iv) पूंजी की अधिकता होनी चाहिये।

(v) प्रत्येक काम के ही विशेष ज्ञान के लिये रसायनिशाला आदि भारत में होने चाहियें ।

(vi) हाथ से काम करना बुरा न समझा जावे ।

(vii) माता पिता अपनी सन्तानों में शुरू से ही इस प्रकार से धन कमाने के भाव डालें ।

(viii) राज भी यथा शक्ति खुले दिल से सहायता देवे ।

सारांश ।

१. व्यवसाय में छोटी मात्रा की उत्पत्ति का समय नहीं रहा ।

२. बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के दो रूप हैं किन्तु कई व्यवसायों में उन दोनों को मिला कर काम करने वाली कम्पनियां मिलती हैं ।

३. पश्चिम में हैरान करने वाली बड़ी २ कम्पनियां हैं जिन का भारत में नामो निशान नहीं ।

४. अमेरीका, जर्मनी, इंगलैंड आदि देशों में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के बढ़ने की कई साक्षियां हैं ।

५. ऐसी वृद्धि के ७ प्रधान कारण हैं ।

६. ऐसी उत्पत्ति के बहुत से आर्थिक तथा जातीय लाभ हैं ।

७. किन्तु दोनों प्रकार की हानियां भी हैं ।

८. छोटी मात्रा की उत्पत्ति का व्यवसाय में भी सर्वथा अभाव नहीं होगा—इस की कई प्रबल युक्तियां हैं ।

९. छोटी मात्रा के हानि लाभ साधारण हैं किन्तु बड़ी मात्रा की उत्पत्ति निस्सन्देह जाति के लिये लाभकारी है ।

१०. भारत के लिये जीवन और मृत्यु का प्रश्न है—उसे जीवन स्थिर रखने के लिये पश्चिम के हथयार इस्तेमाल करने पड़ेंगे। अतः उस के पुत्रों को बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के सामान पैदा करने चाहियें और साथ ही छोटी मात्रा की उत्पत्ति को लाभदायक बनाने के लिये नये नये आविष्कारों से लाभ उठाना चाहिये।

निर्देश

R. Ely—Monopolies and Trusts, Chapters IV.-VI.

H. Levy—Monopoloy and Competition.

Taussig—Principles of Economics, Chapter IV.

Hobson—The Industrial System, Chapter XII.

Gide—Principles of Political Economy, Book II Chapter II.

Penson—Economics of Every day Life, Chap. VII.

Marshall—Principles of Economics, Book. IV Chapter, VII.

अध्याय १८

मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियां

JOINT STOCK COMPANIES.

१. आरम्भिक विचार।

२. कम्पनियों के रूप।

३. भारत वर्ष में इन कम्पनियों का ब्यौरा।

४ भारत में कम्पनियां क्यों नहीं बनतीं ?

५. इन कम्पनियों की कठिनाईयां।

६. कम्पनियों के लाभ।

आरम्भिक विचार--इन के नाम से ही पता लगता है कि ये मण्डलियां सब हिस्सेदारों की मिश्रित पूंजी से व्यापार व्यवसाय करती हैं। यदि कोई सभासद् अपना सम्बन्ध कम्पनी से तोड़ना चाहे तो वह अपने हिस्सों को बाज़ार म बेच कर धन प्राप्त कर सकता है। हिस्सों के बेचने का कारण उसे स्वयं धन की आवश्यकता हो सकती है, वा कम्पनी को कई कारणों से घाटा हुआ हो वा कम्पनी का दिवाला निकलने वाला हो वा अधिक लाभ देने वाली किसी दूसरी कम्पनी के हिस्से ख़रीदने हों, तो हिस्से दलालों के द्वारा बेचने का यत्न किया जाता है। प्राचीन काल में इस प्रकार की मण्डलियां नहीं

थीं-कइयों का ख्याल है कि पुरातन रोम में उन की सत्ता थी किन्तु लग भग सर्व सभ्य देशों में सम्भूय समुत्थान (Partnership) अति प्राचीन काल में मिलता है। शुक्रनीति में इस प्रकार लिखा है :

मेलयित्वा स्वधनांशान् व्यवहाराय साधकाः ।
कुर्वन्ति लेख्यपत्रं यत् तच्च सामयिकं स्मृतम् ॥

'सामयिक पत्र' वह लेख्यपत्र है जो अपनी २ धन-राशियों को व्यवहार के लिये मिला कर सम्भूय समुत्थान करने वाले लिखते हैं। इस प्रकार मिल कर काम करने से सभ्यों को जहां लाभ है वहां हानियां बहुत हैं। उन का दूरी करण आज कल की राज में रजिस्टर्ड मण्डलियों से हुआ है।

२. ये कम्पनियां दो प्रकार की होती हैं:—

i परिमित उत्तरदातृत्व (Limited Liability) कम्पनियां।

ii अपरिमित उत्तरदातृत्व (Unlimited Liability) कम्पनियां।

परिमित उत्तरदातृत्व की कम्पनियों से यह अभिप्राय है कि कम्पनी के बन्द होने पर कम्पनी ने जो रुपया अपने लेनदारों को देना हो, उस सारे रुपये के देने की ज़िम्मेदारी हिस्सेदारों पर नहीं होती परञ्च उन की ज़िम्मेवारी केवल अपने हिस्से के अदा करने की ही होती है। यथा १०० रु० का एक हिस्सा पीपल्ज़ बैंक नामी कम्पनी का हो और किसी हिस्सेदार ने अपने भाग का ५० रुपया अदा कर दिया हो-शेष ५० रु०

उस ने कम्पनी का देना हो और इतने में कम्पनी का दिवाला निकल जावे तो उसे शेष ५० रुपये ही देने पड़ेंगे। इस से अधिक एक पाई न देनी होगी। इस प्रकार दिवाला निकालने वाली कम्पनी के पास जितना धन हो जावेगा उस में से उचित धन कम्पनी के सेवकों, लिकुईडेटर (Liquidator) और लेनदारों को दिया जावेगा। यदि कुछ धन राशि शेष रह जावेगी तो वह हिस्सेदारों को वापिस दी जावेगी क्योंकि वही मिल कर कम्पनी थे–उन्हों ने उस से लाभ प्राप्त किया या प्राप्त करने की आशा की। यदि घाटा हो तो उन्हें ही पूरा करना चाहिये। किन्तु अपरिमित उत्तरदातृत्व में कम्पनी का ऋण उतारने के लिये सब हिस्सेदारों की पूरी ज़िम्मेवारी होती है, अतः उन की सारी जायदादों की कुड़की गवर्नमैन्ट करा सकती है ताकि लेनदारों को पूरा रुपया अदा किया जावे। अतः प्रकट है कि ऐसी कम्पनियों में हिस्सेदारों को बहुत हानि होने की सम्भावना है। इस लिये प्रायः आजकल परिमित उत्तरदातृत्व की कम्पनियां खुलती हैं।

३. आंगल-भारत में इन कम्पनियों का ब्योरा

व्यवसाय	१९०० सन्	१९०९ सन्	१९१०-११
बंक की कम्पनियां	४०७	५०७	४५४
बीमे की ,,	४३	६२	८०
जहाज़ वाली ,,	६	१७	२२
रेल और ट्राम चलानेवाली	१८	२६	३१
अन्य व्यापारिक कम्प०	२५२	६०८	७०७
चाए की कम्पनियां	१२६	१३७	१४७
अन्य खेती करने के व्यवसाय कम्प०	१६	२७	२७
कोयला खोदने वाली व्यवसाय कम्प०	३४	१२२	१२३
सोना खोदने वाली	७	६	१०
अन्य धातु तथा पत्थर निकालने की कम्प०	१३	४७	५७
रुईसम्बन्धी कारखाने	१५२	२१८	२१२
जूट सम्बन्धी कारखाने	२१	३४	३३
ऊन, रेशम तथा सन्न सम्बन्धी कारखाने	२५	१४	१४

रूई तथा सन के लिये ग्रामा प्रेस	११३	१४३	१४५
आटे की मशीनें	१८	२८	२८
ज़मीनों, मकानों, सम्बन्धी कम्प०	४	२६	२६
खाण्ड सम्बन्धी कम्प०	११	२१	२३
अन्य सब प्रकार के कारखाने	६५	१०७	१०६
	१३४०	२०५६	२२५१

भारत में कुल कम्पानियां २२५१ थीं और उन का वसूल शुदा (दत्त) सरमाया ४२४८८११६ पाउण्ड था किन्तु उसी वर्ष संयुक्त राज में ५३७०७ कम्पानियां थीं और उन के पास २२२२२९३६७४ पाउण्ड सरमाया था, अर्थात् वहां २४ गुणा अधिक कम्पानियां हैं किन्तु उन का सरमाया हम से ५३ गुणा अधिक है। अतः वहां बड़ी मात्रा की उत्पत्ति है किन्तु यहां पूंजी के अभाव और कम्पनियों की नयी संस्था के कारण बड़ी मात्रा की उत्पत्ति का अभाव है।

४. भारत में कम्पनियां क्यों नहीं बनतीं ?

(क) भारतीयों का धन व्यापार में नहीं लगता—

इस सुवर्ण भूमि भारत पर सब बलवान् बादशाहों की निगाह रही है-महमूद, महमद गौरी, तीमूर, नादर और अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण कर के इस देश को दिल खोल कर लूटा, केवल एक नगर कोट की लूट का सामान देखियेः सात लाख मोहरें, सात सौ मन सोना चान्दी के बर्तन, दो सौ मन शुद्ध सोने की ईंटें, दो हज़ार मन चान्दी की शिलाखा और २० मन मोती, नीलम, हीरे, लालादि रत्न-महमूद गज़नवी ले गया। इस प्रकार की लूटों के दृश्य वारंवार हुए। (ख) साथ ही मुसलमान बादशाहों और उन के सरदारों ने प्रजा को पीड़ित करने पर कमर बान्धी हुई थी, इस कारण कोई नर नारी अपने आप को धनाढ्य प्रकट नहीं करता था-सब लोग नक़दी या सोना चान्दी के गहने ज़मीन में दबा कर रखते थे।

(ग) कई लोग ज़मीनें ख़रीद लेते थे क्योंकि यह एक ऐसा धन है जिसे कोई चोर नहीं चुरा सकता और नाहीं बादशाह ज़बरदस्ती छीन सकता है।

स्पष्ट है कि मुसलमानी राज में अराजकता, अत्याचार, अरक्षा के कारण व्यापार व्यवसाय न हो सकता था। (घ) साथ ही सड़कों पर डाकू रहज़न व्यापारियों का माल लूटते थे (ङ)

या देश में सैंकड़ों रजवाड़े होने से हर एक रजवाड़े में व्यापारी से महसूल लिया जाता था—इस कारण भी व्यापार कम था।

अब समय पलट गया है--(I) देश में विदेशी लुटेरों का डर नहीं, (II) राज और उस के कर्मचारी प्रजा को नहीं लूट सकते (III) पक्की सड़कों, नहरों, रेलों, जहाज़ों से शीघ्र माल आ जा सकता है। (IV) अंग्रेज़ स्वयम् सभ्य, व्यापार व्यवसाय प्रधान, शिल्प वर्धक, विज्ञान प्रेमी हैं--इस कारण इन कामों में प्रजा को कुछ उत्साहित करते हैं। (V) मुसलमानी काल में भारत का मुकाबला दूसरे देश नहीं कर सकते थे--जहाज़ों और रेलों के अभाव से भारत में बहुत सामान नहीं आ सकता था किन्तु अब विदेशी सामान बराबर आ रहा है--इस कारण या तो हम उन्नति करें, नहीं तो इस सभ्य राज के होते हुए भी हम दूसरी जातियों के शिकार बन जावेंगे। इस लिये गहनों के बनवाने वा भूमि में धन गाड़ रखने की अपेक्षा हमें मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों में अपनी बचतें लगानी चाहियें।

(ख) भारत में जिस किसी के पास धन है वह घर में बंक बनाये हुए है—दूसरों के ज़ेवर और मकान गिरवी रख

कर रुपया उधार पर देता है और प्रायः ग्रामों म १५ से ३० फी सदी सूद लेता है, ऐसे बृहत् सूद के मिलने पर व्यापार व्यवसाय जिस में सर्व प्रकार के भय उठाने पड़ते हैं और सहस्त्र प्रकार के कष्ट तथा चिन्ताएं होती हैं-कौन करे ? किन्तु सूद से वस्तुतः बहुत आमदनी नहीं होती कई कम्पनियों में बड़ा मुनाफा होता है और साथ ही मूल पूंजी भी बढ़ जाती है। मान लीजिये कि आप ने किसी कम्पनी का १०० रुपये का हिस्सा खरीदा, यदि वह कम्पनी ठीक तौर पर चल रही है और आप को अच्छा लाभ देती है तो आप के हिस्से की क़ीमत बढ़ती जावेगी-जब चाहे आप उस हिस्से को बाज़ार में बेच सकते हैं और १०० के स्थान पर चार पांच सौ रुपया ले सकते हैं-यहां दो दो और चोपड़ियां मिलती हैं। कैपिटल नामी समाचार पत्र (९ अपरैल १९१४) से कई कम्पनियों के हिस्सों का मूल्य दिया जाता है-उस से मूल धन की वृद्धि का ठीक ज्ञान हो जावेगा:—

कम्पनी का नाम	हिस्से की असली कीमत	हिस्से का अब मूल्य	फ़ीसदी लाभ
बंगाल बंक	५००	१६७०	१४
बम्बै बंक	५००	१५७७½	१४
मद्रास बंक	५००	१४६०	१२
तिन्नेवली काटन मिल	२५०	५५०	६½

बंगाल कोल कम्पनी	१००	७६०	५०
कत्रसम्भोरियाकोलकम्प.	१०	८४½	६५
न्यू बीरभूम कोल कम्प०	१०	४५½	४५
रिलाएन्स कोल कम्प०	१०	३५¾	४५
हुगली डाकिंग कम्पनी	१००	२३०	२०
सुतनार टोन एंड लाइम कम्प.	१००	३१०	२५

अब विस्पष्ट हो गया होगा कि कम्पनियों के चलाने में बहुत लाभ हो सकते हैं। किन्तु पाठकों को सब्ज़बाग़ दिखाना हमारा उद्देश नहीं, याद रहे कि सैंकड़ों ऐसी कम्पनियां हैं जो घाटे पर चलाई जा रही हैं क्योंकि उन में प्रबन्ध ठीक नहीं। हमें ज़रूर अपना धन कम्पनियों में लगाना चाहिये लेकिन आंखें खोल कर देख लेना चाहिये कि कम्पनी का काम कैसा चल रहा है, आगे क्या आशा है और उस के संचालक दयानतदार सज्जन हैं या नहीं—नहीं तो ठगों के जाल में फंसने की सम्भावना है।

अभी इस सभ्यता में भी ठगों का अभाव नहीं हुआ—बल्कि जैन्टलमैन ठगों की वृद्धि प्रतीत होती है—यह जैन्टलमैनी से ही सीधे सादे आदमियों को ठग कर रफू चक्कर हो जाते हैं—इस लिये कम्पनियों में धन लगाने में अतीव सावधान होना चाहिये। इंगलैण्ड का १७२० सन् का उपद्रव संसार प्रसिद्ध

है–वहां कई विचित्र कम्पनियां बनाई गयीं जैसे स्पेन से गधों के लाने की कम्पनी, सीसे से चान्दी बनाने की कम्पनी, समुद्र के नमकीन जल को मीठा जल बनाने की कम्पनी और 'एक ऐसे कार्य्य के लिये जिस का नाम उचित समय पर बताया जावेगा, की कम्पनी–इस में २ मोहरों के रखने वालों को १०० मोहरें वार्षिक दी जानी थीं! ऐसी कम्पनी में भी ५ घन्टों में २००० मोहरें कम्पनी के ठग संचालक के पास आ गईं और वह इन को ले कर काफ़ूर हो गया !! १७२० में ऐसी बहुत सी कम्पनियां यकायक टूट गयीं और देश पर अकथनीय विपत्ति लाईं।

भारत में भी कम्पनियों का नया काम है–इस लिये अधिक सावधानी चाहिये। हमारे लिये यह काम बहुत सुगम भी है क्योंकि हम अन्य देशों के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं–अतः ईमानतदार, अनुभवी संचालकों के होते हुए कम्पनियां बढ़ानी चाहियें।

(ग) कपट और अविश्वास–कम्पनियों में धन न लगाने का तीसरा कारण आज कल यह भी है कि बहुत कम्पनी वालों ने हिस्सेदारों को धोखे दिये हैं–कम्पनियों के संचालकों, डाईरेक्टरों, अध्यक्षों के कपट, छल वा लोभ के कारण कम्पनियों का शीघ्र दिवाला निकल गया है और हिस्सेदारों को बहुत हानियां उठानी पड़ी हैं–गत वर्ष ही भारत में एक घोर उपद्रव हुआ कि बंकों पर बंक टूटते गये–पीपल्ज़, हिन्दुस्तान, अमृतसर,

पेशावर, लाहौर, क्रेडित, स्पीशी, इंडास्ट्रियल, माड़वाड़ आदि कई बैंक टूट गये। इन में से कइयों के संचालकों के कपट विस्मित करने वाले प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार कई फंडों में छल किया गया। कांच, दियासलाई और कागज़ की बहुत सी कम्पनियां भी टूट गयी हैं—ऐसी अवस्था में कम्पनियों पर लोगों का विश्वास नहीं रहा। जैसे दूध का जला छांछ भी फूंक फूंक कर पीता है वैसे ही कम्पनियों के हिस्से खरीदने में लोग डरते हैं। किन्तु जब देश की भलाई कम्पनियों की वृद्धि में हो तो क्या कम्पनियों के संचालक बनने के लिये दयानतदार आदमी जिन्हें व्यापार व्यवसाय में खास रुचि हो—आगे नहीं आवेंगे? यदि न भी आवें तो हिस्सेदार लोग कम्पनी के प्रबन्ध में पूरा ध्यान देवें तो छल कपट बहुत कम हो और कम्पनी का काम भी ठीक चलता रहे।

५. कम्पनियों की कठिनाईयां

१. प्रत्येक हिस्सेदार यह समझता है कि मैं तो एक वा दो हिस्सों का मालिक हूं इस कारण कम्पनी के इन्तज़ाम में मुझे ध्यान देने की ज़रुरत नहीं, जिन के अधिक हिस्से हैं वे स्वयं कम्पनी का निरीक्षण करते होंगे। परिणाम यह होता है कि कोई भी कम्पनी की तरफ़ ध्यान नहीं देता। अतः साझे की हंडिया चौराहे में फूटती है। भारत में यह अवगुण विशेष तौर पर पाया जाता है कि कोई हिस्सेदार कम्पनी के काम में ध्यान

नहीं देते, किन्तु कम्पनी के सम्बन्ध में बहुत सी किम्बदन्तियें उड़ाते रहते हैं जिन से पता लगता है कि यह तो कम्पनी के हिस्सेदार, चलाने वाले वा हितवर्धक नहीं हैं बल्कि उस के शत्रु हैं, क्या कोई अपनी दुकान या अपने घर के दोष तथा घाटे आदि लोगों को बताता है? क्या जिस हंडिया में खाना हो उसे छेद किया करते हैं या छेद हो जाने पर चुपके से मुरम्मत करा लेते हैं? अतः हिस्सेदार जिस कम्पनी को चलाते हों, चुपके से उस का सुधार और सुप्रबन्ध कर लेवें न कि वे उस के विरुद्ध सूचनाएं फैलावें। प्रत्येक पाठक जानता है कि नई दुकानें झट से नहीं चलतीं, पहिले कई वर्षों तक लाभ की बहुत आशा नहीं रखी जाती. परन्तु भारतीय हिस्सेदार निस्सेन्देह शीघ्र असन्तुष्ट हो जाने वाले होते हैं, अतः बहुत सी कम्पनियां बाल्यावस्था में ही मर जाती हैं। सत्य तो यह है कि पहिले दो तीन वर्षों में लाभ की आशा नहीं करनी चाहिये, कम्पनी का हित यत्न पूर्वक बढ़ाना चाहिये और उस के प्रबन्ध में भाग लेना चाहिये, नहीं तो जैसे सात मामूं का भांजा भूखा ही रहता है वैसे कम्पनी भी प्रफुल्लित नहीं होती।

२. अनेक हिस्सेदार जानते ही नहीं कि कम्पनी क्या प्रबन्ध करती है और प्रबन्ध कैसे होना चाहिये क्योंकि उन में व्यापारिक कार्यक्षमता ही नहीं होती। अतः हर एक हिस्सेदार को कम्पनियों के प्रबन्ध का ज्ञान थोड़ा बहुत होना चाहिये।

३. चूंकि प्रबन्ध कर्ताओं का अपना काम नहीं होता अतः

(क) कम्पनी के नौकर होने से वे पूर्ण ध्यान नहीं देते और यदि काम बिगड़ने लगे तो चुपके २ अपने हिस्से भी बेच देते हैं। सारे संसार में कम्पनियों के संचालक इस सिद्धान्त को खूब समझते हैं कि पंच मिल कीजे काज, जीते हारे न आवे लाज। भारतकी कम्पनियों में इसी विषय की विशेष कठिनाइयां हैं। यहां कम्पनियां नये मनुष्यों द्वारा चलाई जाती हैं। प्रायः नाम के इच्छुक, लोभी या नाकामयाब वकील बैरिस्टर इन कम्पनियों को चला देते हैं, उन में व्यवसायपति के कोई गुण न होने से कम्पनियां नहीं चल सकतीं, क्योंकि कम्पनी की कामयाबी का आधार अधिकतम व्यवसायपति, प्रबन्धकर्ता-डाईरैक्टर की योग्यता पर होता है। भारत वर्ष में उन का भी अभाव है।

(ख) कम्पनी को आरम्भ में आमदनी थोड़ी होती व नहीं होती है, इस कारण प्रबन्धकर्ताओं (Directors) को बहुत ही थोड़ी भृति व फीस लेनी चाहिये। किन्तु भारत में इस बात को लोग नहीं समझते। आरम्भ में ही कम्पनी घाटे से शुरू होती है जिस का पूरा करना भावि में कठिन हो जाता है। यदि सिर मुण्डाते ही ओले पड़े ता आगे क्या होगा?

(ग) भारत में ईर्षा द्वेष अधिक होने के कारण प्रबन्धकर्ता सहमत नहीं हो सकते। छोटी २ बातों पर स्वार्थ से प्रेरित होते

हैं। उन के लिये अन्य कार्यों की अपेक्षा चपरासी का नियत करना अधिक ध्यान देने योग्य होता है, इस से कम्पनी के हित की बातों का निश्चय नहीं होता। सच्च तो यह है कि अपनी २ डम्पड़ी अपना २ राग' के सिद्धान्त ने भारत को ग़ारत किया है।

४. उत्साही, धीर, बुद्धिमान्, दयानतदार और कुशल कर्मचारी भारत में बहुत थोड़े मिलते हैं और जो मिलते भी हैं वे तनख्वाहें खूब मांगते हैं। विशेष करके अमेरिकादि से जो लौटते हैं वे अङ्गरेज़ों के बराबर ही तनख्वाहें मांगते हैं, परिणाम यह होता है कि व्यवसायपति उन्हें नहीं रख सकते। प्रायः यह भी देखा जाता है कि देशी कारखानों में जो सेवा धारण की जाती है वह सदा वहां ही रहने के लिये नहीं की जाती किन्तु अन्य कम्पनियों में वहां से जाने के लिये। इस असन्तोष के कारण कर्म्मचारी वर्ग ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकते।

५. भारत में कम्पनियां पहिले पहिल थोड़ी पूंजी से चलाई जाती हैं। विचार यह होता है कि यदि बहुत पूंजी की उद्घोषणा दी गई तो लोग हिस्से नहीं ख़रीदेंगे। परन्तु थोड़ी पूंजी से कम्पनियों के लाभ पूर्णतया नहीं हो सकते। अतः भारत में इन कम्पनियों की उन्नति में बाधा आ रही है।

६. भारत में हिस्सेदारों से सारा रुपया शीघ्र नहीं

लिया जाता, इस से कई प्रकार की हानियां होती हैं—जैसे किसी हिस्सेदार पर जब आपत्ति आ जाय जिस से वह रुपया न दे सके या वह मर जाए तो उस की सन्तान हिस्सा लेने को तय्यार न हो। योरुप में हिस्सेदारों से बहुत सा रुपया पहिले ही ले लिया जाता है। कम्पनी को धन चाहिये वह धन पहिले पहिल बंकों से सूद पर लेना ठीक नहीं, हिस्सेदारों से धन वसूल करके काम चलाना चाहिये।

७. चूंकि हिस्सेदार कम्पनी के काम में ठीक तौर पर रुचि नहीं दिखाते इस से जाली (Bogus) कम्पनियां बहुत सी बन जाती हैं। प्रत्येक देश में इस के विरुद्ध नियम बने हैं, ऐसा होने पर भी कभी न कभी ऐसी कम्पनियां बन जाती हैं। कम्पनियां बनाने के नियम यदि सरल होंगे तो लोगों को लूटनेवाली कम्पनियां अधिक हो जावेंगी। जैसे भारत में—मौत फन्ड—शादी फन्ड—यात्रा फन्ड—संस्कार फन्ड—शिक्षा फन्ड आदि नाम वाली बहुत सी कम्पनियां खोली गयी थीं परन्तु वे केवल धोखा बाज़ी के सिवाय और कुछ नहीं करती थीं, सौभाग्य से गवर्नमैन्ट ने इन के दबाने के लिये अब यत्न किया है। अभिप्राय यह है कि यदि काम को जानने वाले, अपने कर्त्तव्य को पालन करने वाले, कम्पनी की हानि को अपनी हानि समझने वाले, कम्पनियों को देश के लिये हितकारी समझने वाले प्रबन्धकर्ता (Directors)

और उन के बड़े बड़े कर्म्मचारी हों और हिस्सेदार कम्पनी की अवस्था को समय २ पर देखते रहें और राज नियम भी कुछ कड़े हों तो प्रत्येक देश को इन कम्पनियों से अनिर्व- चनीय लाभ हो सकता है। योरुप, अमेरीका आदि में बहुत से कोटयधिपति हैं वे स्वयं पृथक २ कारखाने खोल सकते हैं ऐसा होने पर भी वहां प्रति वर्ष कम्पनियां बढ़ रही हैं क्योंकि वे व्यवसायपति जिनके पास धन नहीं और वे आदमी जिनके पास कम धन है और वे धनी भी जो स्वयं काम नहीं कर सकते—इन के द्वारा इकट्ठे हो सकते हैं। भारत में ऐसी कंम्पनियों का बढ़ना अति लाभदायक है। भारत वर्ष की दुर्दशा कम्पानियां बनाने के सम्बन्ध में निम्न ब्यौरे से सिद्ध होगी:—

मिश्रित पूंजि वाली कम्पानियों की संख्या तथा पूंजि भिन्न देशों में यूं थी:—

देश	कम्पनीयों की संख्या	दत्त पूंजि पाउ०
यूनाइटिड किंगडम		
(१९०६) (क) ...	४०,९९५ ...	२,०००,०००,०००

जर्मनी (१९०६) (ख) ...	५,०६१ ...	६८५,०००,००० (ग)
फ्रांस (१८९८)	६,३२५ ...	५४०,०००,००० (ग)
रूस (१९०५) (च)	१,५७७ ...	२६०,०००,०००
बेलजियम (१९००) ...	१,३५८ ...	११५,०००,००० (ग)
नेदरलैन्डस (१९०५–६)	४,७३५ ...	११०,०००,०००
आस्ट्रीया (१९०५) (क)	५८७ ...	१००,०००,०००
जापान (१९०५)	४,२१६ ...	८७,०००,०००
स्विटज़र लैन्ड (१९०५)	२,७५४ ...	८०,०००,००० (ग)
इटली (१८९७) (घ) ...	४५० ...	५०,०००,०००
हंगरी (१९०५) (ङ) ...	१,८९६ ...	४४,०००,०००
डेनमार्क (१९०५) ...	१,८२३ ...	३३.०००,०००
आंगल भारत (१९०५–	१,७२८	२८,०००,०००

उक्त ब्यौरे में

(क) के अर्थ रेलवे कम्पनियों के शामिल न होने के हैं।

(ख) सरकारी बंक शामिल है।

(ग) दत्त पूंजि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उद्घोषित पूंजि है।

(घ) बंक और बीमे की कम्पनियां शामिल नहीं हैं।

(ङ) व्यवसायक कम्पनियों और बंकों की यह सूची है।

अब स्पष्ट है कि भारतवर्ष कम्पनियों के लिहाज़ से लगभग सब देशों से बहुत पीछे है। अति अल्प देश भी जैसे बेलजियम, नेदरलैन्ड्स, स्विटज़रलैण्ड, डनमार्क, इटली और यहां तक कि नये जापान में भी भारतवर्ष से अधिक पूंजी मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों में लगी हुई है। प्रत्येक भारत वासी को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। सम्भवतः इन कम्पनियों के लाभ भारतीयों को ज्ञात नहीं—इस कारण इन के लाभ लिखे जाते हैं॥

६. कम्पनियों के लाभ।

१. जो कार्य्य व्यक्तियों से नहीं हो सकते उन्हें कम्पनियां सामूहिक शक्ति द्वारा कर सकती हैं जैसे—जहाज़ों, रेलों, स्वेज़ नहर और पनामा नहर, आदि का बनाना।

• २. कम्पनियां जिन वस्तुओं को बनाएंगी यदि उन का मुकाबला व्यक्तियों से बनाई हुई वस्तुओं के साथ हो तो ख़रीदने वालों को वस्तुएं सस्ती मिलेंगी क्योंकि यदि कम्पनियों से मुकाबिला न होता तो व्यक्तियां अधिक लाभ लेती हुई वस्तुओं को मंहगा देतीं-अब हर एक वस्तु के बहु मात्रा में बनने से कम्पनियां उसे सस्ती दे सकती हैं—अतः वैयक्तिक व्यवसायपति भी सस्ती वस्तु देने पर मजबूर होंगे—इस प्रकार सारी जाति को वस्तुओं के सस्ता होने से लाभ होगा।

३. जाति में धन बचाने का स्वभाव बढ़ता है, कम्पनियों के होने से छोटी २ पूंजी वाले अपनी पूंजी को हिस्सों के खरीदने में लगा देते हैं, कम्पनियों के हिस्से प्रायः ५,१०,५०,१०० १००० रुपये के होते हैं, १०० और १००० रुपये के हिस्सों का सारा धन एक बार नहीं बल्कि किस्तों में देना पड़ता है- अतः मामूली मज़दूर और कलार्क भी इन्हें खरीद सकते हैं, एवं मध्यम श्रेणी के वे लोग भी अपनी पूंजी लगा सकते हैं जिनके पास धन तो है पर व्यवसाय करने की योग्यता नहीं। पूंजी सुरक्षित रखने और सूद द्वारा बृद्धि होने के कारण जाति में धन के बचाने की प्रवृत्ति बढ़ती है और यह कम्पनियों का अत्युत्तम लाभ है। भारत निर्धन देश है—इन कम्पनियों के द्वारा धन बढ़ेगा- बिन्दु बिन्दु से तालाब भरने का दृश्य यहीं दीख पड़ता है।

४. वैयक्तिक व्यवसायपति वस्तु की कीमत बढ़ा सकते हैं वा वस्तु की श्रेष्ठता (quality) को कम करके जाति को धोखा दे सकते हैं। साथ ही वैयक्तिक व्यवसायपति अपने ऋण-दाताओं को धोखा देकर दिवाले निकाल सकते हैं परन्तु कम्पनियां धोखा नहीं दे सकतीं क्योंकि उनके आय व्यय का ब्यौरा और उनके लाभों की मात्रा छपति रहती है।

५. वैयक्तिक व्यवसायपति का काम उसी के जीवन पर ही निर्भर है, उसके देहान्त पर संभव हो सकता है और

प्रायः यही देखा जाता है कि उसकी सन्तान व्यवसाय चलाने के अयोग्य होती है। ऐसी सूरत में चलाये हुये काम का नाश हो जाता है। किन्तु कंपनी के मैनेजर प्रबन्धकर्ता बदलते रहते हैं, कंपनी के कार्य्य में कभी हानि नहीं आती-अर्थात् वैयक्तिक तौर पर चलाये हुए काम जातीय धन के हरणकर्ता हो सकते हैं परन्तु कम्पनियों में लगा हुआ धन सदा के लिये रह सकता है यदि उन के संचालक दयानतदार, श्रमी, उत्साही और निपुण हों।

६. कम्पनी के व्यौरे के छपते रहने से व्यापार की दशा का ज्ञान होता रहता है। यदि लाभ थोड़े हो रहे हैं तो ज्ञात होगा कि देशी व्यापार तथा व्यवसाय शिथिल हो रहे हैं और यदि लाभ अधिक हो रहे हों तो पता लगेगा कि व्यवसाय की उन्नति हो रही है-इस तरह सारे देश के व्यापार में स्थिरता आती है। व्यापार व्यवसाय के सागर में कम्पनियां दिग्दर्शनयंत्र (compass) का काम करती हैं।

७. पारस्परिक विश्वास, सामूहिक भावों और प्रबन्ध करने की शक्तियां बढती हैं।

८. पाठक से यह बात छिपी नहीं कि सभ्यता की वृद्धि के साथ मनुष्यों, श्रेणियों और जातियों का एक दूसरे पर आश्रय बढ़ता जाता है। मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियां इसी आश्रय का

एक परिणाम हैं-इन के द्वारा देश देशान्तरों के निवासी परस्पर मिल कर अपने में एक महती शक्ति पैदा कर लेते हैं, जिस के द्वारा सब मुष्कलें हल हो सकती हैं और बड़े सुभीता से मानवी इच्छाएं पूर्ण होजाती हैं। इस मिल जुल कर काम करने के बिना बड़े २ कामों का करना असम्भव होता। इन कामों में सब स्थितियों, वर्णों और रंगों के आदमी मिल सकते हैं- इन के कारण जातियों का पारस्परिक राग द्वेष और अविश्वास दूर होता है-विश्वास और प्रेम की लहरें उठती हैं और नर नारी के उत्तम स्वभावों की वृद्धि होती है। सभ्य जातियों में ही कम्पनियां बढ़ती हैं-असभ्यों में परस्पर विश्वास कहां होता है? वे तो एक दूसरे के शत्रु हैं। क्या भारतवासी इन कम्पनियों को भली भान्ति चलाकर अपनी सभ्यता का परिचय देंगे ?

९. इन कम्पनियों से व्यापार, व्यवसाय, धन, साहस विश्वास की वृद्धि होती है। यह बातें अपनी बारी में जाति को उत्तरोत्तर ऊपर उठाती हैं।

१०. पूर्व अध्याय में दिखाया गया है कि सभ्य जगत् में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति हो रही है-इस कारण शिल्प पदार्थ वहां सस्ते बनते हैं-सस्ते पदार्थों के आक्रमण से भारत का शिल्प नष्ट हो रहा है-उस के पुनर्जीवित करने का एक साधन बड़ी मात्रा की उत्पाति कही गयी है-बड़ी मात्रा की

उत्पत्ति कम्पनियों के द्वारा हो सकती है, अतः इन की वृद्धि में भारतीयों को तन--मन--धन से तत्पर होना चाहिये।

निर्देश

G. Barlow—Industrial India.

R. Palit—Indian Economics, Chap. IV.

H. Lowenfeld—All about Investment.

Statistical Abstracts for B. India and U. Kingdom, 1911.

Wealth of India (Madras) Back Vols.

अध्याय १९

पूंजी की वृद्धि।

प्रथम पूंजी की असलीयत को समझने की ज़रूरत है। कल्पना करो कि दो आदमियों के पास ५०००० रुपये हैं, उन में से एक आदमी ३०००० रुपये मकान और उस का सामान, घोड़ों और मोटर गाड़ियों के खरीदने में और २०००० रुपये भूमि और कम्पनी के हिस्सों को खरीदने में लगाता है-तब इस आदमी के पास ५०००० की सम्पत्ति है जिस में से २०००० पूंजी है और ५% के हिसाब से १००० रुपये वार्षिक आय होती है। दूसरा पुरुष ५००० रुपये का मकान खरीदता है, २५००० की दुकान और उस पर बिकरी का समान लेता है, १५००० रुपये की भूमि खरीदता है और ५००० रुपये नकद रख छोड़ता है-तब इस पुरुष के पास ४०००० रुपये पूंजी हुआ और ५००० नकदी। यदि उसे १० प्रति शतक लाभ भूमि और व्यापार से हो तो ४००० वार्षिक आय का भोग वह आदमी करेगा। यद्यपि दोनों की जायदाद समान है तथापि एक की आय १००० है और दूसरे की ४०००। बस इसी प्रकार जितना रुपया गहनों के बनवाने में लगाया जाता है उस से कोई आमदनी नहीं होती बल्कि घिसावट और मिलावट से उन की

कीमत कम हो जाती है, जो रुपया घोड़ों या मोटर गाड़ियों पर लगाया जाता है वह आय-वर्धक होने के स्थान पर आय को कम करता है क्योंकि दोनों को रखने के लिये खर्च करना पड़ता है, इसी प्रकार ज़मीन में गाड़े धन से भी कुछ आमदनी नहीं, किन्तु जो रुपया व्यापार, व्यवसाय, खेती बाड़ी या कम्पनियों के हिस्सों में लगा हो या उधार पर किसी को दिया हो-वही रुपया पूंजी कहना चाहिये।

अतः स्पष्ट है कि जो पुरुष अपनी जायदाद से अधिकतम आमदनी कमाना चाहे वह आराम के मकानों, बागों, घोड़ों, किशतियों, मोटर गाड़ियों, गहनों आदिकों को जितना थोड़ा रखे उतना अच्छा है और निम्न पदार्थों की जितना अधिकता हो उतनी आमदनी बढ़ेगी-दूसरों को किराये पर दिये हुए मकान और भूमियां, कम्पनियों के हिस्से; गिरवी; व्यापार व्यवसाय, खेती। अतः पूंजी, एक मनुष्य व जाति की सम्पत्ति का वह भाग है जो आगे सम्पत्ति की उत्पत्ति में लगाया जावे। **स्वदेश की पूंजी की वृद्धि के लिये भारत वासियों को उक्त चीज़ों का भोग कुछ काल के लिये अवश्य छोड़ देना चाहिये और धन संचय करके व्यापार व्यवसाय की वृद्धि में लगाना चाहिये-नहीं तो शुभ दिनों का देखना कठिन होगा।**

२. वृद्धि के कारण-जातियों का सरमाया दो प्रकार के

उपायों से बढ़ सकता है:—

i जो उपाय जातीय धन की मात्रा को घटाते बढ़ाते हैं-इन्हीं से धन संचय की शक्ति प्रकट होती है।

ii जो उपाय धनियों को अपना धन व्यय न करने बल्कि बचाने पर उद्यत करते हैं--इन से धन संचय की इच्छा जाति में प्रकट होती है।

अधिकतम बचत--किसी वर्ष एक जाति जो धन अधिक से अधिक बढ़ा सकती है वह उस की सारी उत्पत्ति है किन्तु उस में से भोजन, आच्छादन के पदार्थ, कलों, मकानों, तथा अन्य पदार्थों की मुरम्मत का धन, नए वर्ष उत्पत्ति करने के लिये सब प्रकार की सामग्री-उत्पत्ति में से निकालनी पड़ेगी तो शेष धन बचाया जा सकता है। किन्तु उस का कुछ भाग भोग पदार्थों के लेने में खर्च किया जावेगा और यदि व्यक्तियों की इच्छा होगी तो कुछ भावि में उत्पत्ति करने के लिये बचाया जावेगा। अब भारत को मुख्य रखते हुए सरमाये की वृद्धि के साधनों का हम अध्ययन करते हैं॥

३—धन—संचय की शक्ति

I. साधनों की उत्तमता--उत्पत्ति के मुख्य साधनों-प्रकृति, श्रम, पूंजी, साहस, व्यवस्था और राज की योग्यता पर उत्पत्ति की मात्रा का आधार है। इन के उचित सम्मेल से अधिकतम

सम्पत्ति, पैदा होती है-यदि इच्छा समूह के कारण बलवान् हों तो इस में से अधिक भाग बचाया जा सकता है। किन्तु यदि छै साधनों की अयोग्यता के कारण वा प्रकृति के उदार होते हुए मनुष्य और उस की संस्थाएं अयोग्य हों, तो उत्पत्ति कम होगी-तब पूंजी भी न्यून होगी-भारत में यही अवस्था है—यहां मनुष्य और उस की संस्थाओं को उत्तम करने का सिर तोड़ यत्न करना चाहिये। यदि एक नदी में जल थोड़ा हो तो खेतों को थोड़ा जल दिया जा सकता है-एवं भारत में उत्पत्ति की नदी कुछ सूखी हुई है-इस कारण यहां पूंजी भी कम है। जहां इंगलैंड में एक पुरुष के प्रति ३८० पाउण्ड पूंजी है वहां भारत में १० पाउण्ड है। हम देख चुके हैं कि इस घोर अन्तर का कारण मनुष्यों की अयोग्यता है, नहीं तो भारत की सुवर्ण भूमि मनुष्यों के योग्य होने पर स्वर्गमय बन सकती थी !!

II. विदेशी व्यापार-हालैंड, स्पेन, इटली, इंगलैंड आदि देश अपने २ समय में विदेशी व्यापार की वृद्धि के कारण ही शक्ति शाली और धनी थे। १६७० के समीप हालैंड $\frac{१}{२}$ भोजन सामग्री खुद पैदा करता था नहीं तो $\frac{१}{२}$ सामग्री विदेशों से व्यापार द्वारा लाता था। आज कल इंगलैंड $\frac{३}{४}$ भोजन-सामग्री बाहिर से लाता है। भारत के भी दिन थे जब इस का शिल्प-सामान रोम, यूनान, मिश्र, ईरान, अरब, जापान, चीन और

इंगलिस्तान में धड़ाधड़ जाया करता था, तब इस में भी अकालों का अभाव था, शतशः कोटयाधीशों का भाव था, किन्तु मुसलमानी काल के अन्त में इस के विदेशी व्यापार का नाश हो गया, अब व्यापार फिर चमकने लगा है, किन्तु अन्य देशों के मुकाबले में न होने के बराबर है:—

भारत और संयुक्त राज का व्यापार । १९११

भारत	....	२६०५१५८४२ पाउण्ड्ज़
सं० राज	....	११३४२६८२५ ,,

अर्थात् ४½ करोड़ की आबादी रखते हुए सं० राज का व्यापार ४½ गुणा भारत से बढ़ा हुआ था। नीचे के व्यौरे में ठीक तुलना हो सकेगी:—

देश	प्रति मनुष्य व्यापार की मात्रा	देश	प्रति मनुष्य व्यापार की मात्रा
	पाण्उड शि० पैन्स		पा. शि. पै.
आयरलैण्ड	२६–१५–२	जर्मनी	१२–६–१
सं० राज	२२–४—५	सं.प्र.अमेरीका	७–१८–६
फ्रांस	१२–०—६	भारत	९¾ रुपये

अर्थात् सं० राज का प्रत्येक निवासी ३६ गुणा अधिक वस्तुएं हर साल भेजता और मंगाता है। इसी व्यापार के कारण इंगलैण्ड ने सम्पत्ति में अद्भुत् उन्नति की है, यद्यपि उस की जन संख्या बढ़ती गयी है फिर भी हर एक निवासी के हिस्से में निम्न तौर पर धन राशि बढ़ती गयी है।

इंगलैण्ड में धन की वृद्धि।

१६७९ इस्वी में....४२ पा०	१८८५....३१५ पा०
१६९० ,, ...५८ पा०	१९१०....३८० पा०
१८१२ ,, ...१८० पा०	

जहां भारत में व्यापार की कमी है वहां साथ ही विदेशों से माल ले आने और ले जाने वाले जहाज़ भी हमारे नहीं-किन्तु यह विदेशी व्यापार भी विदेशियों के हाथ में है, वही सामान का सामुद्रिक बीमा करते हैं, यदि ५% कमाई इन सब कामों से होती हो तो १९½ करोड़ रुपया विदेशियों को लाभ होता है। इस लिये अन्य जातियों को करोड़ों रुपये हम हर साल जहाज़ों का किराया देते हैं–मनुष्य की अयोग्यता के कारण हमारी उत्पत्ति बहुत कम है। इंगलैण्ड के मुकाबले में प्रति मनुष्य हम १/२४ भाग सम्पत्ति उत्पन्न करते हैं! क्या यह लज्जास्पद बात नहीं?

iii. साख की वृद्धि से दोनों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर जाति का धन बढ़ता है। (क) धातुओं के सिक्कों के स्थान पर जब हुंडी पर्चों का प्रयोग बढ़ता है तो पदार्थों के क्रयविक्रय (ख़रीदो फ़रोख़्त) में श्रम, पूंजी और समय की बचत होती है। (ख) बंकों और बीमे की कम्पनियों की वृद्धि इस साख की वृद्धि का उत्तम प्रमाण है-इन के द्वारा प्रजा की छोटी २ रकमों का भी संचय हो जाता है और फिर उस संचित धन को यह कम्पानियां खेती, व्यवसाय, व्यापार की वृद्धि में लगाती हैं, अतः वृद्धि का चक्र उत्तरोत्तर तेज़ी से चलता है। (ग) इस साख पर सूक्ष्म श्रम-विभाग की नाज़ुक संस्था का आधार है किन्तु पाठक जानते हैं कि धन की वृद्धि का एक अत्युत्तम साधन श्रम-विभाग है-अतः कई प्रकार से साख उत्पत्ति को बढ़ाती और पूंजी का संचय कराती है।

iv. यानों की उत्तमता से धन की वृद्धि होती है-रेलों और वाष्पी जहाज़ों के द्वारा संसार की चारों दिशाएं मिल गयी हैं-व्यापार की वृद्धि हुई है और उत्पत्ति के साधनों के उतम होने के उपाय बढ़ गये हैं, पूंजी और श्रम देश देशान्तरों में शीघ्र जा सकता है। रेलों की वृद्धि का ब्यौरा मीलों में—

देश	१८५०	१८६०	१६०८
स० राज	६६२१	२००७३	२३२०५
जर्मनी	३६३७	२५४११	३५४७५

फ्रांस	१११४	२२६११	३००४६
रूस	३१०	१८०५९	३४७००
आस्ट्रिया हंगरी	६५४	१६४६०	२५१६३
स. प्र० अमैरीका	६०२१	१६६६५४	२३२०४६
भारत वर्ष	....	१६३४५	३०५७६
जापान	....	११३६	५१५६
चीन	....	८०	२६२३

परिणाम—अतः स्पष्ट है कि उत्पात्ति के छै साधनों की उत्तमता से प्रत्यक्ष तौर पर उत्पात्ति बढ़ती है किन्तु इस वृद्धि की मात्रा को विद्युत् की भान्ति शीघ्र २ चलाने वाले कारण व्यापार, साख और यानों की वृद्धि है। जिस देश में यह चारों बढ़े हुए हों, जैसे इंगलैण्ड में--तो उस में उत्पात्ति अपरमित मात्रा में हो सकती है। तब अधिक सम्भावना है-कि उस का अधिक भाग पूंजी रूप में बचाया जावे! किन्तु भारत के निर्धन वासी दरिद्रता के घोर दलदल में पड़े हुए संचय ही क्या कर सकते हैं? धन संचय की इच्छा तो बहुत हो किन्तु शक्ति न हो तो इच्छा क्या करेगी? अतः शक्ति साधनों की वृद्धि भारत में करनी चाहिये।

४. धन संचय की इच्छा—का आधार कई कारणों पर है जिन का संक्षित वर्णन यहां पर दिया जाता है :—

(क) रक्षा—यह रक्षा दो प्रकार की है: (i) विदेशी आक्रमण देश पर न हों, और (ii) राज अत्याचारी न हो। जब जब और जिस जिस देश में बार बार हमले होते रहे हैं—उस देश के निवासी धन संचय कम करते हैं क्योंकि उन को सदैव यह भय रहता है कि बड़ी मेहनत से बचाए हुए धन को लुटेरे न ले जावें। इस कारण वे धनोत्पत्ति कम करते हैं और यदि अपने देश का राजा तथा उसके कर्मचारी भी लूट मार पर तुले हुए हों तो धन संचय हो नहीं सकता। भारत वर्ष में मुसलमानी काल में दोनों प्रकार की अरक्षा थी—इस कारण बहुत धन नहीं बचाया जाता था जो थोड़ा सा धन बचाया जाता था वह गहनों और नक़दी के रूप में भूमि के नीचे छिपता फिरता था—सूर्य्य का प्रकाश उसे नहीं लग सकता था। अतः सत्य जानिये कि अच्छे राज के बिना रक्षा नहीं होती, इस लिए देश में समृद्धि नहीं होती बल्कि निश्चित जीवन निर्वाह भी नहीं होता। यदि पदार्थ श्रम से पैदा किये जाते हैं तो राज नियमों द्वारा वे रक्षित रहते हैं, यदि पहिले क्षण पदार्थ का भाव श्रम के द्वारा होता है तो दूसरे क्षण में राज नियमों के द्वारा ही वह हमारे स्वत्व में रहता है। राज के अत्याचारों से प्रजा पीड़ित हो कर मूढ़, असभ्य, भीरु, निरुत्साही निर्धनी, अधर्मी, दुराचारी हो सकती है और राज की रक्षा

तथा उत्साह से समृद्धि के शिखर पर पहुंच सकती है। अतः राज इस पूंजी की वृद्धि में एक महान् उपाय है। भारत वर्ष में अब सर्व प्रकार की रक्षा है और चिर काल तक ऐसी रक्षा के होने का निश्चय है तो अब देश निवासियों को धन बचाते हुए व्यापार व्यवसाय में अवश्य लगना चाहिए।

(ख) प्राकृतिक शक्तियों से अरक्षा—जिस देश में भूकम्प, प्लेग, हैज़ा, ऋतु ज्वर तथा अन्य शारीरिक रोग, नदियों के बाढ़, अग्नि का भड़कना, भूमि पर सामुद्रिक तूफ़ान, अति वृष्टि, अनावृष्टि, ओलों का पड़ना और टिड्डी दल अधिक हों—उस में जीवन अनिश्चित रहता है-उत्पत्ति कम होती है और उस कम उत्पत्ति में से और भी कम बचाया जाता है क्योंकि यह भाव दृढ़ होता है कि 'खाओ, पीओ और आनन्द करो क्योंकि कल काल का नाम है'।

(ग) दूरदर्शिता की मात्रा पर धन संचय का आधार है। हबशियों में दूरदर्शिता का अभाव है-इस कारण वे, जब उन की भूख मिट जाती है-शेष भोजन का नाश कर देते हैं। भारत में मुसलमानों में भविष्य का ख़याल कम है-सारी आय वर्तमान में ख़र्च कर देते हैं-अपनी रुग्न तथा वृद्धावस्था का उन्हें कोई विचार

नहीं होता। किन्तु हिन्दुओं में बचाने की आदत हद्द से भी अधिक है-वे शरीर को अति कष्ट दे कर धन संचय करते हैं किन्तु फिर उसे संस्कारों में व्यर्थ खो देते हैं और साथ ही भूमि में गाढ़ कर रखने से देश के व्यापार की सहायता नहीं करते।

(घ) पारिवारिक स्नेह और बीमा—माता पिता, पुत्र कलत्र के प्रेम के कारण, सन्तान को उच्च शिक्षा देने के विचार से और अपनी अकाल मृत्यु पर परिवार के निर्वाहार्थ—बाकी धन वही पुरुष छोड़ जाते हैं जिन्हें परिवार के साथ प्रेम होता है, आज कल के सभ्य जगत् में नर नारी अपने जीवन का बीमा, मकानों, दुकानों, कारखानों, गौ बैलादि पशुओं, कलाओं, जहाज़ों का बीमा करा सकते हैं—एवम् सन्तान की शिक्षा, विदेश यात्रा के धन के लिये और दानार्थ भी बीमा करा सकते हैं—इन भिन्न प्रकार के बीमों से साधारण आमदनी वाले नर नारियों को बहुत लाभ होता है। भारत में बीमे की प्रथा का प्रचार बहुत थोड़ा है क्योंकि साख—परस्पर विश्वास की कमी है किन्तु आशा है कि कम्पनियों की स्थिरता को देख कर सब नर नारी बीमे की ओर झुकेंगे।

(ङ) सामाजिक मान की प्राप्ति—सारे संसार में देखा जाता है कि धनाढ्यों का सन्मान होता है, उन्हें ही कुलीन, पण्डित, बहु श्रुत, गुणज्ञ, दर्शनीय समझा जाता है, वही शील, शौच, शान्ति चातुर्य, मधुरता, विद्या, धर्म के निवासस्थान समझे जाते हैं।

निस्सन्देह धन के कारण बुद्धि, आरोग्यता, दूरदर्शिता, स्वतन्त्रता, जातीयमान, राज में उच्च स्थिति प्राप्त होती है-इस लिये धन की प्राप्ति में लोग लट्टू हो रहे हैं और कइयों का धन से ऐसा प्रेम हो जाता है कि कमाई का खर्च करना वे जानते ही नहीं बल्कि कंजूसों मक्खीचूसों की तरह धन को धन की खातिर ही जमा करते हैं और धन के ढेरों को देख २ कर आनान्दित होते हैं-संसार में धन की महती महिमा होने से स्त्री पुरुष अर्थ के दास हो रहे हैं:-

टका हर्ता टका कर्ता टका मोक्ष प्रदायका ।
टका सर्वत्र पूज्यते बिन टका टक टकायते ॥

यह बहुत बुरी बात है कि केवल धन के कारण किसी को मान किया जावे किन्तु जब तक जातियों में यह भाव पाया जाता है-लोग इस भाव से प्रेरित हो कर और कई लोग लोभ के कारण ही धन संचय करते हैं।

(च) जाति में धन का विभाग—जिस जाति में बड़े२ भूमिपति, सेठ साहूकार और व्यापारी व्यवसायी, साहसिक होते हैं-- उन के पास अधिक धन होने से वे उस का दुरुपयोग करते हैं- उन का धन पूंजी नहीं बनता-वह अनुत्पादक कामों में व्यय होता है। किन्तु जिस जाति में धन का कुछ समान विभाग हो- उस में सम्पत्ति का अधिक भाग पूंजी बन सकता है।

(छ) धन-संचय के साधनों की सुगमता--आधुनिक सभ्यता से पूर्व हर एक धनी नर नारी घरों में धन छिपा कर रखता था और कभी २ चुपके से दूसरों को सूद पर देता था, किन्तु आज कल रक्षा की वृद्धि के साथ २ धन-संचय कराने वाले बहुत उत्तम साधन निकल आये हैं-बंक, सेविंग्ज़ बंक. बीमे की कम्पनियां, मित्र सभाएं, सहकारी बंक, पारिवारिक सहायता के फंड, बालकों की बचतों के फंड, मिश्रित पूंजी वाली सहस्रों प्रकार की कम्पनियां और राज की ओर से भी उधार लेने की संस्थाएं खुल गयी हैं-इन के द्वारा कोई निर्धनी चार आने तक भी बचा कर बंक में रख सकता है-यदि यह साधन न हों तो छोटी २ रकमों को बचाने की प्रेरणा नहीं रहती। भारत में यह साधन नये हैं-इन को यथाशक्ति बढ़ाना चाहिये और इन में अपना धन देख भाल कर रखना चाहिये।

(ज) सूद की मात्रा पर संचय का आधार है-पूंजी का संचय करने में प्रायः हर एक पुरुष को भोगों का त्याग करना पड़ता है (१ प्रकरण), इस में कष्ट होता है-अतः यदि कोई और पुरुष उस पूंजी का प्रयोग करना चाहे तो उसे कष्ट का बदला देना चाहिये। असली सूद इसी कष्ट का बदला होता है। यदि सूद की मात्रा कम हो जावे जैसे १० से ६ फ़ी सदी, तो कई मनुष्य ऐसे होंगे जो ६% अपने कष्ट का बदला काफ़ी नहीं समझते-यदि अन्य प्रेरक साधन काम न करते हों तो ऐसे

लोग धन संचय नहीं करेगे–या कम करेंगे किन्तु यदि १० से १५% सूद की मात्रा हो जावे तो ऐसे बहुत से पुरुष जो पहिले धन संचय नहीं करते थे क्योंकि वे अपने कष्ट का बदला १० से अधिक और १५ से कम समझते थे–वे भी अब धन संचय करेंगे और जो पहिले कुछ बचाते थे वे अब अधिक बचाएंगे। बहुत सूद का काफ़ी आकर्षण होता है–सिद्धान्त यह है कि अन्य कारणों के समान रहते हुए सूद की मात्रा के बढ़ने से धन संचय की ओर अधिक प्रवृत्ति और सूद की मात्रा की कमी से धन-संचय की ओर कम प्रवृत्ति होती है। आज कल संसार में सूद की मात्रा कम हो रही है तो क्या इस से धन संचय कम हो रहा है? नहीं। क्योंकि संचय के अन्य सब कारण, उपाय वा साधन प्रबल हो रहे हैं–अतः इस कारण का प्रभाव छिपा हुआ है। भारत में भी आज कल यही अवस्था है।

सारांश

पूंजी की वृद्धि

शक्ति–समूह	इच्छा समूह
साधनों की उत्तमता	रक्षा. दूरदर्शिता
विदेशी व्यापार	पारिवारिक स्नेह
साख	मान की प्राप्ति
यानों की उत्तमता	धन विभाग
	धन संचय के साधनों की सुगमता
	सूद की मात्रा

अध्याय १०

व्यवस्था

(Organization)

व्यवस्थापक उत्पत्ति बढ़ाते हैं—एक समूह के यत्नों का मुख्य चिन्ह हम व्यवस्था कह सकते हैं क्योंकि जब बहुत से आदमियों ने मिल कर काम करना हो, तो उन को अपने २ काम में लगाने की कोई व्यवस्था होनी चाहिये-जो मनुष्य व्यवस्था वा प्रबन्ध का काम करता है उसे व्यवसायपति (Entrepreneur) या व्यवसाय का कप्तान (Captain of Industry) कहते हैं। प्रत्येक कार्ख़ाने में कोई न कोई व्यवस्थापक होता है-उस के योग्य और अयोग्य होने पर काम की कामयाबी व नाकामयाबी का आधार होता है। सभ्य देशों के व्यवसायों का उद्भव व्यवसायपत्तियों के द्वारा हुआ है और इन्हीं के द्वारा व्यवसायों की सत्ता है-वही व्यवसायों की जान-आत्मा हैं। जिस कार्ख़ाने में व्यवसाय-पति न हो उस में खिलबिली होने से सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाता है-वही व्यवसाय का राजा है। जैसे राजा के अयोग्य होने पर देश की सम्पत्ति कम होती है वैसे व्यवसायपतियों के

अयोग्य होने पर सम्पत्ति पैदा नहीं हो सकती। सूत्रवत यह सिद्धान्त याद रखना चाहिये:—

व्यवसाय की सेनाओं का भर्ती करना, अस्त्रों शस्त्रों से सुसज्जित करना, नियन्त्रणा सिखानी, हर एक यूथ को स्व स्थान पर लगाना, उन से पूरा काम लेना और दूसरी सेनाओं के मुकाबले में उन का विजय कराना—व्यवसाय के कप्तानों के विना नहीं हो सकता। अतः जिस जाति में सुयोग्य व्यवसायपति अधिक हों उस में अधिकतम सम्पत्ति बढ़ेगी, उस के श्रमियों से ठीक वे काम कराये जावेंगे जिन में वे अधिकतम निपुण हैं, उस की पूंजी उन कामों में लगायी जावेगी जिन में अधिकतम लाभ हो सकता है, नये २ आविष्कार सदैव बढ़ते जावेंगे और उत्पत्ति की विधियों को सुगम तथा धन-उत्पादक करने का निरन्तर यत्न होगा। किन्तु जिस जाति के व्यवसायपति निपुण नहीं, उस की उत्पत्ति न्यूनतम होती है।

इस अंश में भारत का मुकाबला अमेरीका, जर्मनी और इंगलैंड से करिये, तब आप को अपने बड़ी मात्रा के व्यवसायों की न्यूनता का प्रधान कारण ज्ञात हो जावेगा। जिस जाति

में कलाओं से बड़ी मात्रा में उत्पत्ति होती हो, उस में सुयोग्य व्यवसायपति अवश्य चाहियें ताकि वे निम्न काम करें:—

२. व्यवसायपतियों के काम ।

(i) एक कारख़ाने में नाना प्रकार के हुनरों वाले आदमियों को इकट्ठा करें। (ii) उन को श्रमविभाग के नियमों के अनुकूल उचित काम देवें। (iii) उन से अधिकतम काम लेवें (iv) उन की योग्यता को बढ़ाने का यत्न करें (v) कारख़ाने की सारी जायदाद का निरीक्षण करें (vi) उत्तम कलाओं और औज़ारों का अपने कारख़ाने में प्रयोग करें (VII) किस किसम का पदार्थ पैदा किया जावे, कितनी मात्रा में बनाया जावे और कब बनाया जावे-इन बातों का निश्चय करें। (VIII) पदार्थ के बनाने के लिये जो २ कच्चा माल चाहिये उसे किस मात्रा में और कब ख़रीदा जावे-यह भली प्रकार जानें (IX) बने हुए पदार्थ को कहां बेचा जावे, कब २ बेचा जावे और कितनी मात्रा में बेचा जावे और उस की मांग किन विधियों से बढ़ायी जावे-इन बातों में चतुर हों।

(X) हर एक व्यवसायपति ऐसा विश्वास पात्र, दयानतदार, प्रणों का पालन करने वाला, मानुषी स्वभाव का अनुभव रखने वाला हो कि उसे पूंजी उधार पर शीघ्र मिल सके, कि जिस श्रेष्ठता की चीज़ जिस समय तक बना देने का प्रण दे-उसे पूरा

करे। (XI) व्यापार के उतार चढ़ाव का पूरा ज्ञान रखे। (XII) श्रमियों के साथ व्यवहार करने में निपुण हो ताकि वे हड़ताल कर के उस के काम को हानि न पहुंचावें या कुशल हो कर दूसरे कार्खानों में न चले जावें। (XIII) राष्ट्रिक परिवर्तनों के प्रभावों को समझ सके। (XIV) फ़ैशन के परिवर्तन से उस के व्यवसाय पर जो असर पड़ेंगे-उन का अनुमान कर सके। सारांश यह है कि व्यवसाय में श्रम, पदार्थ, कलाएं सस्ती से सस्ती खरीदे और मांग के अनुसार पदार्थ बना कर मंहगे बेच सके। साथ ही पदार्थ को न्यूनतम ख़र्च से बनावे और बने हुए पदार्थ पर नुक्सान न उठावे-यह बातें व्यवसायपति को करनी पड़ती हैं।

२. निर्बलों की मौत है--इन कामों के करने के लिये बहुत अनुभवी, साहसी, बुद्धिमान्, शासन में निपुण और सत्यवादी महाशय चाहियें। इन गुणों के कारण व्यवसाय में समानता नहीं आ रही, यद्यपि समानता का प्रचार संसार में बहुत किया जा रहा है। सभ्य देशों में सुयोग्यों का बड़ा सख़्त मुकाबला है-इस लिये अपेक्षया अयोग्य पीछे रह जाते हैं-उन का काम बिगड़ जाता है और शीघ्र उन के कार्ख़ाने बन्द हो जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि एक परिवार में तीन सन्ततियों तक कार्ख़ाने नहीं रहते क्योंकि विशेष योग्यता से एक कार्ख़ाने

को एक आदमी सुफल करता है-उस व्यवसायपति के मरने पर उस का पुत्र व्यवसायपति बनता है वह प्रायः पिता जैसा सुयोग्य नहीं होता-इस लिये काम में हानि होने लगती है। यदि वह भी सुयोग्य हो तो उस का पुत्र अयोग्य निकलता है-इस प्रकार ७५ वर्षों में कोई और पुरुष उस कारख़ाने का व्यवसायपति हो जाता है। आज कल के मुकाबले में सुयोग्य ही ज़िन्दा रहते हैं (Survival of the Fittest) और अयोग्य शीघ्र ही सुयोग्यों को अपना स्थान दे जाते हैं।

यह नियम देशों की सीमाओं में ही काम नहीं करता बल्कि आज कल के तारों, रेलों, जहाज़ों के काल में सारे संसार में यही नियम काम करता है। भारत के अयोग्य व्यवसाय-पतियों की मृत्यु है, योरुप के सुयोग्य व्यवसायपति उन के स्थान पर सस्ते पदार्थ बना कर यहां धड़ाधड़ भेजते हैं इस नियम के अनुकूल काम करने से भारत के व्यापार-व्यवसाय की रक्षा हो सकती है अन्यथा नहीं क्योंकि बड़ी मात्रा की उत्पत्ति आज कल की सभ्यता का चिन्ह है-इस से पदार्थ बहुत सस्ते पैदा होते हैं-सर्व देश अपनी २ रक्षा के लिये इसे बढ़ा रहे हैं-भारत का उन देशों के साथ घना सम्बन्ध है बल्कि वे देश तो तट-कर लगा कर विदेशी माल को अपने अन्दर नहीं आने देते-इस कारण योरुपीय देशों में परस्पर ऐसा मुकाबला नहीं जैसा भारत

का अन्य देशों के साथ है क्योंकि यहां सरकार तटकर लगा कर विदेशी माल के आक्रमणों को नहीं रोकती। अतः यदि हम व्यवसाय की वृद्धि करना चाहते हों तो हमें सर्व साधनों से सुयोग्य व्यवसायपतियों, प्रबन्धकर्ताओं की वृद्धि करनी चाहिये।

साहस

भारत में साहस--इसी व्यवस्था के साथ सम्बन्ध रखने वाला साहस नामी साधन भी है- इस का भी भारत में अभाव है। व्यवसायपतियों की सहायता पूंजीपति-धनाढ्य-सेठ साहूकार लोग कर सकते हैं किन्तु यदि वे व्योपार व्यवसाय के भयों से डर कर पूंजी न लगावें तो व्यवसाय कैसे बढ़े ? नवीन कामों के चलाने में साहस, उद्योग, उद्यम, दिलेरी, हिम्मत, उत्साह, हानि लाभ की निर्भयता के गुण आवश्यक हैं किन्तु हम रूखी सूखी पर सन्तोष करने वाले हैं और यह बात हमारे दिलों में घर कर गयी है कि 'सन्तोष मूलं हि सुखं'-सुख का मूल कारण सन्तोष है अर्थात् अपने आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रिक अवस्थाओं के सुधार करने का असन्तोष बुरा है। सर्व प्रकार की उन्नति करने में श्रम, कष्ट मेहनत होती है, तकलीफों का दूरीकरण करना होता है, हज़ार प्रकार के वसीले ढूण्डने पड़ते हैं किन्तु 'सन्तोष सुख का मूल है' ऐसे उपदेशों से भारतवासी आलसी, निरूत्साही, भीरू, कायर, मुसलमानों के

अत्याचार सहते हुए भी उफ़ न करने वाले, कार्य्य शून्य हो गये। दिलेरी और हिम्मत उन से कोसों दूर भाग गयी। अतः अब भी जब सब देशों में आर्थिक उन्नति का चक्र खूब तेज़ी से चल रहा है, तब भी नये २ कारख़ाने खोल कर अपना साहस नहीं दिखाते !

५. साहस की प्रशंसा।

हमारे ऋषियों और कवियों ने साहस, उद्यम की बड़ी प्रशंसा की है—उन के कई वाक्यों में अद्भुद् विद्युत् भरी हुई है जैसेः

सब काम उद्यम से सिद्ध होते हैं न कि सिर्फ़ इच्छा करने से क्योंकि सोए हुए शेर के मुंह में हिरण स्वयम् नहीं पड़ जाते, पुरुषार्थी पुरुष ही वीर, विद्वान् और पण्डित होता है—शेष पुरुष तो मनुष्य रूप में दुम के विना पशु हैं। मनुष्य के शरीर में आलस्य महां शत्रु है किन्तु उद्यम ही सर्वोत्तम मित्र है। आलसी आदमी कब विद्वान् हो सकता है? विद्याहीन के पास धन कहां से आ सकता है? निर्धन का क्या कोई मित्र होता है? जिस का कोई मित्र नहीं, उस को सुख की प्राप्ति कब हो सकती है? जो पुरुष उत्साह से काम का आरम्भ कर देता है और काम की बेहतरी में आलस्य नहीं करता और नये २ कामों का सदैव संयोग करता है, वहां चल श्री-लक्ष्मी भी अचल अव हो जाती है। उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, बल, शक्ति—इन छै गुणों के धारण कर्त्ता को देवता भी सहायता देते हैं। अतः

जो अन्य देशों का भ्रमण नहीं करते और न हो विद्या प्राप्त करते हैं उन की बुद्धि ऐसी संकुचित होती है जैसे जल में घी की बिन्दु इकट्ठी हो जाती है। किन्तु जो विदेशयात्रा करते हैं उन की बुद्धि का ऐसा विस्तार होता है जैसा जल में तेल के बिन्दु का। आलस्य, स्त्री की सेवा, जन्म भूमि के साथ ऐसा प्रेम कि विदेश यात्रा और जीविका के लिये भी उसे न छोड़ना, सन्तोष, कायरपन-यह छै दोष बड़े पुरुषों को भी मार देते हैं। जो व्यवसाय में निरन्तर उद्यम पूर्वक नहीं लगता, आलसी है, दैव पर आश्रय रखता है, साहस हीन है-उसे लक्ष्मी का मुखड़ा नहीं दीख पड़ता, और जो इस भूमि पर देश देशान्तर में भ्रमण नहीं करता, उसे विद्या, धन, शिल्प की पूरी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः साहसी, उद्यमी, धीर पुरुषों के घरों में अर्थ, लक्ष्मी, सुख, कीर्ति स्वयम् बास करने के लिये जाते हैं-सर्व प्रकार की सम्पत्तियां विवश हो कर उनके चरण कमलों में पड़ती हैं किन्तु वेदान्तवादी, दैव प्रायण 'आलसी' निरुत्साही, भीरु, विदेश यात्रा से डरने वाले अविद्वान् भारतीयों के घरों, को धर्म, अर्थ, काम, सुख, लक्ष्मी कीर्ति, सरस्वती-सब त्याग कर पखेरू बन चुकी हैं, अतः हमें उचित है-कि हम साहसी हो कर भय की परवाह न करते हुए व्यापार व्यवसाय करें परीक्षणों और नये आविष्कारों में अपने जीवन देदें, साहसी हो कर कम्पनियां चलाएं, अपनी सन्तानों को यही उच्च विद्या पढ़ावें और विदेश में भी भेजें।

राज्य ।

६. प्रजा का राज्य उत्तम है ।

राज्य को भी हम ने उत्पत्ति का एक साधन माना है. ऐसा करने के लिये १३८ पृष्ट पर बलवतीं युक्तियां दी हैं और सारी पुस्तक में स्थान २ पर खेती, शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय, के सम्बन्ध में दिखाया है कि सहानुभूति रखने वाले राज्यों ने अपनी प्रजाओं के लिये उन्नति के क्या २ साधन निकाले हैं, यदि इन साक्षियों से भी राज को उत्पत्ति का एक महान् साधन न माना जावे तो बड़ी विचित्र बात होगी ! किन्तु प्रश्न तो यह है कि कौन्सा राजस्व प्रजा का हित बर्धक होता है। यह अर्थशास्त्र का विषय नहीं नीतिशास्त्र का विषय है । हां इतना समझ में आ सकता है कि जर्मनी, फ्रांस, अमेरीका आदि सभ्य देशों में प्रजा का अपना राज है और राज प्रणाली का निश्चय भी प्रजा राज सभाओं में स्वयम् करती है। भारत में स्वराज नहीं और न ही प्रजा तन्त्र राज है। साथ ही युक्ति पूर्वक भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि एक सत्ता का स्वेच्छाचारी राज निकृष्ट होता है और प्रजा तन्त्र राज जिस में राज करने में सारी प्रजा का थोड़ा बहुत अधिकार हो–सर्वोत्तम होता है।

७. स्वेच्छाचारी राज्य में प्रजा की बहुत दुर्दशा होती है क्योंकि

i. मानसिक शक्तियां मर जाती हैं ।

ii. आत्मा का हनन होता है ।

iii. धर्म का नाश होता है ।

iv. जो समाज उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ हो उस की गिरावट का भी साधन होता है ।

v. एक सत्ता के राज्य का शिक्षा से विरोध होता है, प्रजा को शिक्षित नहीं करना चाहता ताकि वे अपने अधिकार न मांगें ।

vi. एक सत्ता का राज्य क्रिया शून्य मनुष्यों को पैदा करना चाहता है क्योंकि सन्तोषी मनुष्य हमारे भयानक शत्रु नहीं हो सकते ! असन्तोषी मनुष्य ही तीनों प्रकारें की शक्तियों की वृद्धि कर सकते हैं ! उन में ही उत्साह, धीरता, वीरता, निर्भयता, आशा, नवीनता से प्रेम, जातीय प्रेम, देश हितैषिता कूट २ कर पाये जाते हैं किन्तु क्रिया शून्य मनुष्यों में इन के उलट सब आदतें पायी जाती हैं । भारत और अमैरीका के निवासियों की तुलना से यह बातें स्पष्ट हो जावेंगी । भारत में ७०० वर्षों तक स्वेच्छाचारी मुसलमानों का राज रहा है, कई प्रकार से प्रजा पर अत्याचार होते थे इस लिये प्रजा तन्त्र राज के लिये हम लोग योग्य नहीं । हां योग्य बनाने के यत्न होने चाहियें । अब भारत वासियों को राज सभाओं में कुछ भाग मिल रहा है । पुस्तकों, समाचार पत्रों, व्याख्यानों और प्रार्थना पत्रों

के द्वारा भी राज के सामने अपने दुःखड़े रो सकते हैं, नहीं राजसभाओं में सब नियम बना सकते हैं। शान्ति भी है और एक प्रजा तन्त्र राज की प्रेमी जाति हम पर शासन कर रही है, इस लिये प्रजा तन्त्र राज की ओर हम पग रख रहे हैं, साथ ही अधिक विषयों में जाति को अपने पैरों पर भी खड़ा होना सीखना चाहिये। साहसी हो कर आर्थिक उन्नति के साधनों का उपार्जन करते हुए निर्धनता के नर्क से निकल कर-सुख-स्वर्ग में जाने का यत्न करना चाहिये।

८. अन्तिम शब्द।

धन के कमाने के जो भिन्न साधन थे उन्हें उत्तम बनाने के उपाय बता दिये गये हैं और भारत में धनोत्पत्ति करने में जो कठनाइयां पेश हो रही हैं-उन को स्थान २ पर बताया गया है किन्तु यहां पर उन्हें इकट्ठा करके आप के सामने रखा जाता है ताकि महा प्राक्रम से उन का दूरीकरण कर के आप अर्थ की वृद्धि कर सकें।

खेती करने की विधियां निकम्मी हैं-उन में साइन्स और कला से कोई सहायता नहीं ली जाती-इस कारण अन्य देशों की अपेक्षा आधी वा एक तिहाई उत्पत्ति हो रही है, खानों के खोदने में भी भारतीय पूंजी का अभाव है, विदेशियों से हर काम में बहुत कड़ा मुकाबला है, हम

में उन के मुकाबले की शक्ति नहीं, इसलिये हाथ से काम करने वाले अपने पेशों को छोड़ कर खेतो के मज़दूर बन रहे और बिदेशी माल उत्तरोत्तर देश में बढ़ता जाता है। व्यवसाय की उन्नति में कठनाइयां हैं। कारखानों में कलाओं के द्वारा उत्पत्ति करने की विधि हमारे लिये नयी है।

बड़ी मात्रा की उत्पत्ति बंकों और कम्पनियों के बिना नहीं हो सकती—यह भी भारत में नये हैं, व्यापार की अवस्थाएं भी लग भग नयी हैं, पूंजी का सूद भी यहां दूसरे देशों से अधिक हैं, मज़दूर अकुशल हैं, कलाएं विदेशों से मंगानी पड़ती हैं, अभी एक प्रान्त की पूंजी और मज़दूर दूसरे प्रान्त में कार्य करने के लिये नहीं जाते, लोग प्रायः नवीनता के शत्रु हैं, साहस का भी अभाव है, वेदान्त का अधिक प्रचार होने से इस संसार में कर्म करना बुरा समझा जाता है, जात पात के बन्धनों ने भी भारत को जकड़ रखा है, राज भी चिरकाल तक उदासीन रहा है, व्यापारिक और व्यवसायिक शिक्षा का अभाव है, शिल्प शिक्षण की बहुत कमी है, इन कठिनाइयों के होते हुए भारतीय व्यवसायपति सुयोग्य नहीं—तब भारत में धन की उत्पत्ति कैसे बढ़े? यदि यह कठिनाइयां

उपस्थित रहें तो नहीं बन सकती। किन्तु भारत के अन्धकारावृत आकाश पर उन्नति के सूर्य की किरणों का आवेश हो गया है—उक्त कठिनाइयां कुछ २ दूर हो रही हैं इस लिये प्रति वर्ष कारख़ानों की वृद्धि हो रही है। जाति को दोषों का ज्ञान होना चाहिये—हम ने योग्यतानुसार उन का कुछ ज्ञान देने का यत्न किया है। यदि अब बृहत् पुरुषार्थ किया जावे, यदि जाति तथा राज मिल कर तन, मन, धन से इन कठिनाइयों को दूर करें तो दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति इस देश में हो सकती है। किन्तु यदि जाति वा राज अकर्मणता को पसन्द करें—और जाति अपनी दुरवस्था को उदासीनता से देखे तो उन्नति कठिन है—आशा है कि साहसी हो कर भारतीय नर नारी यत्न करेंगे ताकि उन्हें धन की प्राप्ति हो और भारत माता दरिद्रता राक्षसी के पंजे से निकल कर धर्म और धन के स्वर्ग में आनन्द लूटे !

ओ३म्

शुद्धिपत्र

शुद्धि	अशुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
हस्ताक्षेप	अस्ताक्षेप	६	५
जाते हैं	चाते हैं	७०	६
मौलिक	मौलक	७८	४
चौथी और पांचवीं पंक्ति को मिला कर पढ़ो		११०	
बाह्य	बाह्म	१३२	७
साहसिक	साहायिक	१३३	४
काल	कान	१४०	५
संघर्षण	संघर्शण	१३६	३
अध्यायों	अध्याओं	१४२	१
धर्म	धर्म	१४३,११,१४	
छोड़ किया है	छोड दिये हैं	१५१	२
भास्कराचार्य	भास्क्यचार्म	१६९	१५
ढेर	ढेढ़	२११	१७
....	किन्तु	२४०	१२
यानों	धानों	२५४	३
शब्दों	शेब्दा	२६०	१
लिखितों	लिखता	२८४	१०
होते हुए	होता हुआ	२६४	अन्तिम

शुद्धि	अशुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
२०८२ सहस्र एकड़	२०८२ एकड़	२३६	६
दुरवस्था	दूरावस्था	२८७	२
ग्रामीण	ग्रामीन	२९६	९
धोखे	धोके	२९८	३
अनिश्चित	अनिश्चित	३०१	४
विज्ञानानुसार	विज्ञानुसार	३१६	८
उत्पादक	उष्पाद	३२३	७
आदेश	आदर्श	३४१	अन्तिम
शौच	शाच	३४२	६
भगवान्	भगवान	३७१	१८
चमड़े	चमरे	३८७	१४
धड़ाधड़	धराधर	४९१	११

कई शब्दों की मात्राएं टूट गई हैं, उन्हें पाठकवर्ग सावधानी से पढ़ने की कृपा करें।

भारतइन्शोरैन्स कम्पनी लिमिटिड, लाहौर

हिन्दुस्तान भर में सब से पहिली और पुरानी स्वदेशी कम्पनी है।

पूंजी ......१० लाख	जो धन बीमा कराने
दत्त पूंजी......१.६ लाख	वालों में बांटा गया...७ लाख
एक वर्ष की आय ६ लाख	कम्पनी का संचित धन...२० लाख

इस कम्पनी ने बीमे के क़ानून के अनुसार **ज़मानत का पूरा धन**--अर्थात २ लाख रुपया सरकार **को दे दिया है।**

यह कम्पनी **हर प्रकार के जीवन** का बीमा करती है। **स्त्रियों के जीवन** का बीमा भी करती है। **दानार्थ बीमा कराने** के लिये विशेष रिआयत है—दानी महाशयों को जो गुरुकुल, कालिज, यतीमखाना या किसी अन्य दान के काम के लिये-बीमा कराना चाहें—**यह अवसर हाथ से न देना चाहिये, एजन्टों** की हर नगर के लिये ज़रूरत है, काफ़ी कमिशन दिया जावेगा।

कम्पनी के नियमावली आदि के लिये प्रार्थनापत्र निम्न पते पर शीघ्र भेजियेः—

मैनेजर—भारत इन्शोरैन्स कम्पनी, **लाहौर।**

अवध कमर्शल बंक लिमिटिड।

(१८८१ में स्थापित)

मुख्य कार्य्यालयः— **फ़ैज़ाबाद**

ब्रांचिज़ः— लखनऊ और कानपुर,

भारत के सब बड़े नगरों में एजन्सियां हैं।

उक्त बंक ने पिच्छले ३० वर्षों से निरन्तर १० फ़ी सदी लाभ बांटा है और भारत के बहुत पुराने तथा विश्वसनीय बंकों में से यह एक है।

दत्त सरमाया	....	....	५०००००	रुपया
बचत फ़ंड	....	....	३०००००	रुपया
आपत्ति फ़ंड	....	....	१७५०००	रुपया

चलतु खाता का धन बिना उजरत के रखा जाता है।

स्थिर धरोहर—१२ मासों के अन्त पर धन वापिस लेनेवालों को ४½%

६	,,	,,	४%
३	,,	,,	३½%

सेविंग्ज़बंक के धरोहरों पर ३½ फ़ी सदी सूद मिलता है।

उधार पर रुपया मिल सकता है और बंकों के अन्य कार्य्य बड़ी कुशलता से किये जाते हैं।

सूद आदि के नियमों का गुटका, पत्र भेजने पर मिल सकता है।

अलख धारी,

मैनेजर।

श्रीयुत् सन्तराम बी० ए० द्वारा सम्पादित। २०×३० के ८ पेजी बड़े आकार की एक सर्वाङ्ग सुन्दर तथा नयनमनोहर 'उषा' नामक मासिक पत्रिका लाहौर से निकल रही है। इस में बड़े बड़े विद्वान पुरुषों और विदुषी स्त्रियों के साहित्य, इतिहास, विज्ञान, धर्म, समाज, अर्थशास्त्र तथा जीवन विद्या आदि अनेक विषयों पर लेख, मनोहर कविताएं, रोचक तथा शिक्षाप्रद कहानियां प्रकाशित होती रहती हैं। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इस में सात आठ पृष्ठ केवल स्त्रियों के लिये ही दिये जाते हैं। जिन में नारियों के लिये बड़ी २ लाभदायक बातें रहती हैं। नारी उपयोगी पृष्ठों की भाषा ऐसी सरल रक्खी जाती है कि थोड़ी पढ़ी स्त्री भी बड़ी सुगमता से समझ सकती है। सारांश यह कि "उषा" नर नारी दोनों की आवश्यकताओं को पूरा कर देती है फिर दूसरे पत्र मंगाने की आवश्यकता नहीं रहती॥

हिन्दी प्रेमियों और विशेषतः पंजाब निवासियों को शीघ्र ही इस के ग्राहक बनकर मातृ भाषा के प्रचार में सहायता देनी चाहिये। नवीन ग्राहकों को एक ।-) की पुस्तक मुफ्त उपहार में मिलेगी। वार्षिक मूल्य ३), नमूना ।-)

मंगाने का पता ☞ प्रबंधकर्त्ता,

"उषा," लाहौर।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥

चान्द

[स्त्रियों के लिये एक सचित्र मासिक पत्र]

पञ्जाब प्रान्त में अपने ढंग का स्त्रियों के लिये एक ही पत्र है ॥

लेख बड़े ही रोचक

वार्षिक मूल्य दो रुपये

समाचार पत्रों ने बड़ी प्रशंसा की है कहानियां और एतिहासिक लेखों द्वारा स्त्रियों को अपनी पतित दशा के सुधारने के लिये उत्तेजन करना इसका मुख्य उद्देश्य है, स्त्री समाज के प्रेमियो! चान्द के ग्राहक बन कर स्त्री शित्ता की सहायता करो ॥

सम्पादिका—श्रीमती मोहिनी बी०ए०
प्रबन्धकर्त्ता—पं० चरणदास बी०ए०
लाहौर.

Ordering this Magazine quote this Artha Shastra.

he Wealth of India

THLY MAGAZINE OF PRACTICAL INFORMATION AND USEFUL DISCUSS NS.

ges of matter Month.

ED BY G. A. AMAN., B.A, F. R. E. S.

THE object of this Journal publish the views of e on all matters relating to rial progress, especially ture, Commerce, Indus mics, Co-operation, Banking, Insurance, Economic Products, Machinery, Invention and Popular, Scientific and Technical Education.

ion e.

Foreign 2/- per annum.

INDIVIDUAL OPINIONS.

IR S. SUBRAMANIA AIYAR, KT., C. I. E., LL. D.:—Let me opportunity of expressing my appreci-tion of the good work you by your excellent and highly cheap journal

D. E. Wacha, *Bombay*:—It (the *Wealth of India*) is really a nstructor. I wish our India friends would understand the value Journal and appreciate it by giving the Journal substantial enhent.

information given under various heads has been very carefully with a view to practical utility.

TRIBUNE:—A magazine devoted mainly to questions affecting rial well-being of India, is sure to meet with a favourable reception.

MADRAS TIMES:—It is a very well arranged magazine, with hensive out-look.

E INDIAN PATRIOT:—A mine of useful information.

MRADE:—We are sure the monthly will prove of considerable nd play a useful part in the industrial regeneration of the country.

ssrs. G. A. VAIDYARAMAN & Co.,

3 & 4, SUNKURAMA CHETTY STREET, MADRAS.

इस अर्थशास्त्र का हवाला दे कर यह पत्र अवश्य ये ।

भारत लिटरेचर कम्पनी लिमिटिड लाहौर

यह कम्पनी देश भर में उमदा लिटरेचर फैला रही है।

सर्व प्रकार के आर्य्य सामाजिक, वैदक सम्बन्धी साहि‌त्य और स्त्री शिक्षा के ऐतिहासिक उत्तम पुस्तकें हमारे यहां से अधिकांश मिल सकती हैं। दर्शनों या उपनिषदों के आर्य्य भाष्य पण्डित आर्य्य मुनि कृत, महात्मा मुंशीराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, पः तुलसीराम जी, पः शिवशंकर जी, लाला लाजपतराय जी, प्रो० बालकृष्ण जी, महाशय शिवब्रत लाल जी, आदि की रचित पुस्तकों का स्टाक यहीं पर है। सूचीपत्र मंगाने पर मुफ्त भेजा जाता है। पं० आर्य्य मुनि लिखित भाष्यों की कीमतें निम्न लिखित हैं:—

बालमीकी रामायण प्रथम भाग		४)	मिमांसा ,, द्वतीय भाग		३)
" द्वतीय		३)	वेदान्त आर्य्य भाष्य		३)
योग आर्य्यभाष्य	,,	१।)	आर्य्य मंतव्य प्रकाश	१ भाग	१)
सांख्य	,,	१॥-)	,,	२ भाग	॥=)
विशेषक	,,	२॥)	महाभारत आर्य्य भाष्य		३)
न्याय	,,	३॥)	नरेन्द्र जीवन चरित्र		।=)
मिमांसा	,, प्रथम भाग	५)			

मिलने का पता—

लछमण, मैनेजर,
भारत लि० कं० लिमटेड, लाहौर।